NAGRI PATRIKA

1971 1972 G. K. U.

नागरी पत्रिका

दिसंबर ७१, जनवरी ७२

नागरीप्रचारिणी सभा

वाराणसी

नागरी पत्रिका

वर्ष-५ अंक-३-४

दिसंबर, ७१-जनवरी, ७२

वार्षिक दो रुपए

प्रति अंक पचीस पैसे

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

★

संपादकमंडल

करुणापति त्रिपाठी

डा० नागेंद्रनाथ उपाध्याय

मोहकमचंद मेहरा

संपादक—सुधाकर पांडेय

सहसंपादक—श्रीनाथ सिंह

दिल्ली प्रतिनिधि—
डॉ० रत्नाकर पांडेय
४२, अशोक रोड,
नई दिल्ली
फोन—
३८८१७०

लखनऊ प्रतिनिधि
डा० हरेकृष्ण अवस्थी
एम० एल० सी०
४, बादशाह बाग
लखनऊ
फोन—२४५५६

वैचारिकी

माननीया इंदिरा जी को बधाई

सत्य और असत्य में सदा से संघर्ष होता आया है। अंत में सत्य विजयी होता रहा है और असत्य पराजित। ऐसे उदाहरण इतिहास में बराबर मिलते हैं। उसी क्रम में इस मास १६ दिसंबर, १९७१ को दिन में ४ बजकर ३१ मिनट पर भारत के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना घटी। ढाका में भारतीय सेना के समक्ष पाकिस्तान के ९० हजार सैनिकों ने शस्त्र डाल दिया। हमारी पूर्वी कमान के सेनापति श्री जगजीत सिंह अरोड़ा ने पाकिस्तानी पूर्वी कमान के सेनापति जेनरल नियाजी से 'विजय पत्र' लिखवा लिया। आज तक संसार के किसी देश में और कहीं भी इतना बड़ा आत्मसमर्पण नहीं हुआ। 'न भूतो न भविष्यति'। इस महान् विजय का श्रेय है हमारे जवानों को, सेनापतियों को और देश के ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को जो अपने अपने पहरे पर जागते रहे हैं। पर प्रतीक के रूप में इस विजय का सारा श्रेय वर्तमान प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को है।

प्रधान मंत्री इंदिरा जो नागरीप्रचारिणी सभा का संरक्षिका भी हैं। आज वे संसार की सर्वसंमानित महिला के रूप में आदृत हो रही हैं। संपूर्ण संसार के राजनयज्ञ उनके दृढ़ संकल्पों का लोहा मान चुके हैं। २५ मार्च, १९७१ को जब ढाका में बंगबंधु को पाकिस्तानी तानाशाह ने धोखे में डालकर बंदी बनाया और उसी रात से बंगला देश की स्वतंत्रताप्रिय जनता पर कहर ढाना आरंभ किया तभी से वहाँ से पीड़ित, प्रताड़ित तथा उद्वासित जनसमूह भारत में शरण पाने के लिये आने लगे और उसके साथ ही भारत में यह सवाल उठने लगा कि हमारा देश इस संबंध में क्या कर रहा है। प्रधान मंत्री ने उसी समय

देश की जनता से कहा था कि भारत मौन दर्शक के रूप में ताकता नहीं रहेगा अपितु समय समय पर उचित कार्यवाहियाँ होती रहेंगी।

प्रधान मंत्री ने अपने द्वारा दिए आश्वासनों को पूरा किया और भारत ने ही नहीं, सारे संसार ने देखा कि मानवता की रक्षा के लिये हर उपयुक्त समय पर जो कार्य अपेक्षित थे, प्रधान मंत्री ने ऐसे सभी कार्यों को सक्रिय रूप देने में कहीं भी कोई हिचकिचाहट नहीं दिखाई। उनका हर निर्णय समयोचित रहा। हमें ऐसे प्रधान मंत्री पर गर्व है। इंदिरा जी के शासनकाल में भारत का गौरव जिस ऊँचाई पर पहुँचा है, इतिहासकार निस्संदेह युगों तक उसकी सराहना करते रहेंगे। सहस्रों वर्ष बाद भारत ने इस प्रकार की निष्कलंक विजय का दिन देखा है। वे सभा की संरक्षिका हैं, इसलिये सभा परिवार के लोगों में और अधिक प्रसन्नता का होना स्वाभाविक है। हम प्रधान मंत्री को इस महान् विजय के लिये हार्दिक बधाई देते हैं।

—सुधाकर पांडेय

★

उर्दू हिंदी की एक शैली है

ज्ञानपुर (वाराणसी) की साहित्यिक संस्था 'ऊर्जायन' द्वारा आयोजित अपने अभिनंदन समारोह में उपस्थित साहित्यानुरागियों को संबोधित करते हुए सभा के प्रधान मंत्री एवं संसद सदस्य श्री सुधाकर पांडेय ने कहा, 'मैं तो साहित्यकारों का अनुगामी रहा हूँ। मुझसे जो कुछ साहित्यसेवा बन पड़ी है वह काशी की परंपरा एवं संस्कारों से प्रेरित होकर ही। काशी का साहित्यकार विषपान करके अमृत का दान देता है। कबीर, तुलसी, भारतेंदु, प्रसाद और प्रेमचंद का ऐसा ही जीवन रहा है।

समसामयिक भाषा एवं साहित्य पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए आपने कहा, 'भाषाओं में परस्पर कोई वैभिन्य नहीं हैं और न ही उनमें कोई द्वेष है। उर्दू तो हिंदी की ही एक शैली है। भाषा समाज की धमनी है। वह हमारे समाज एवं मर्यादा का न्याय करती है। हमारा पुराना साहित्य अमर है। आज पश्चिम से प्रभावित होकर छने हुए साहित्य को जो लिखते हैं वे हमारी संस्कृति के शत्रु हैं।

★

हिंदी और अंग्रेजी : माध्यम की दृष्टि

डा० मोहनलाल तिवारी

हमें ऐसे प्रश्नों पर कभी भाषावाद की दृष्टि से विचार करना पड़ता है, कभी उपयोगिता की। प्रश्न है कि क्या कोई भाषा छात्रों के व्यक्तित्व की हत्या भी कर सकती है, चाहे वह अंग्रेजी ही क्यों न हो? १९१७ से पूर्व रूस में जारशाही के प्रभाव से नेपोलियन की भाषा फ्रेंच का प्रभुत्व था। फ्रेंच पढ़ना ज्ञान की बात समझी जाती थी। धन और प्रतिभा दोनों से संपन्न लोग फ्रेंच पढ़ने की कोशिश करते थे, फिर भी रूस पूर्व-पश्चिम के मुकाबले पीछे था, जो १९०५ के जापानी और १९१४ के जर्मन युद्धों से स्पष्ट है। क्रांति (१९१७) ने रूसी को आगे बढ़ाया, लेकिन फ्रेंच का पढ़ना रुका नहीं। रूस में आज फ्रेंच पढ़ने बोलनेवालों की संख्या करोड़ों है। यही स्थिति अंग्रेजी की भी है। तुलना की दृष्टि से ५५ करोड़ के भारत की अपेक्षा २५ करोड़ के रूस में अंग्रेजी जाननेवालों की संख्या कहीं अधिक है इसमें स्त्री, पुरुष, युवा, वृद्ध सभी शामिल हैं। रूस में कई लाख लोग चीनी भाषा भी जानते बोलते हैं और अब हिंदी भी पढ़ने लिखने बोलने लगे हैं। शिक्षा में भाषाओं की संख्या तथा विद्यालयों विश्वविद्यालयों में उन्हें पढ़नेवाले छात्रों की संख्या बढ़ती जा रही है और उनका व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय व्यक्तित्व भी बनता एवं ऊँचा होता जा रहा है। यही स्थिति पूर्वी यूरोप, चीन एवं खुद अमेरिका की है। ये सभी भारत की तरह कभी के गुलाम या पिछड़े देश रहे हैं। तो क्या अंग्रेजी या कई अन्य भाषाएँ पढ़ने से व्यक्तित्व की जीवनीशक्ति बढ़ती है? प्रश्न वास्तव में भाषा का नहीं, व्यवस्था का है। शासन और अर्थतंत्र की व्यवस्था का। स्पेनिश एक विश्वभाषा बन गई है। अमेरिका के कई देशों के लोग इसे बोलते हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ की भाषा है। स्पेन में शिक्षा शासन की भाषा है। लेनिन फ्रेंकोशाही की व्याख्या के कारण साधारण जनता एवं छात्रों के व्यक्तित्व की वर्षों से हत्या की जा रही है। वहाँ कोई विदेशी भाषा नहीं है। दूसरी ओर स्पेनिश भाषी क्यूबा में पिछले १० वर्षों में जिस तरह छात्रों एवं जनता का व्यक्तित्व उठा है उसे विश्व का एक शैक्षणिक एवं समाजशास्त्रीय आश्चर्य माना जा सकता है। इसी तरह सउदी अरब के शाह फैजल तथा जार्डन (युर्दान) के शाह हुसन कुरान की भाषा अरबी के माध्यम से अपने अपने देश की जनता के मस्तिष्क को दबा बैठे हैं और दूसरी ओर दक्षिणी यमन के युवक इसी अरबी से प्रेरणा ले रहे हैं तथा पूरी अरब जनता की काया पलट कर देने के लिये उतावले हो रहे हैं। यहाँ भी समस्या भाषा के प्रश्न की नहीं, व्याख्या के प्रश्न की है। यदि भारत सरकार जनवरी, १९७२, से शासन और शिक्षा के माध्यम के रूप में क्षेत्रीय भाषाओं को तथा हिंदीभाषी राज्यों (उ० प्र०, म० प्र०, राज०, हरि०, बिहार आदि) में हिंदी को सौ फीसदी लागू कर दे और साथ ही अंग्रेजी को हटा दे और यहाँ तक हटा दे जैसे पांडिचेरी में फ्रेंच और गोवा में पुर्तगीज हटा दी गई, तो

क्या भारतीय या हिंदीभाषी क्षेत्र के छात्रों के व्यक्तित्व की हत्या रुक जायगी और वह जीवंत बन जायगा ? यह पकड़ न तो शिक्षाशास्त्रीय प्रतीत होती है और न समाजशास्त्रीय।

व्यक्ति और राष्ट्र की अस्मिता, उसकी अपनी पहचान, नाम, रूप, गुण, कर्म, शील और संस्कार अपनी भाषा से बनता है। हमारे पड़ोस में पाकिस्तान एक राष्ट्र है। पश्चिमी खंड में उर्दू न तो सिंध में बोली जाती है और न बिलोचिस्तान, सीमाप्रांत या पंजाब में ही। आजाद कश्मीर में तो बिल्कुल नहीं। लेकिन वहाँ पाँच प्रतिशत से कम लोगों की भाषा 'उर्दू' (खड़ी बोली ही) 'अपनी भाषा' बनी हुई है। संयुक्त राज्य अमेरिका में अनेक बोलियाँ साहित्यिक भाषा का रूप ले रही हैं, जो वहाँ की अपनी मूल भाषाएँ हैं, फिर भी अमेरीकी राष्ट्र की कल्पना इन अपनी भाषाओं से नहीं हो सकती, विदेशी भाषा अंग्रेजी के माध्यम से ही हो सकती है। खुद भारत में क्या राष्ट्र की अस्मिता इत्यादि का निर्माण हिंदी से होगा, और नहीं तो कितनी भाषाओं से ? उत्तर हो सकता है, संविधानगत पंद्रह भाषाओं से। पचीस, पैंतीस या पचास से क्यों नहीं। मैथिली, मुंडा, अंगामी, तुलु, कुई कोंकणी, मेवाड़ी, बांगरू, डोगरी, व्रज, अवधी. भोजपुरी इत्यादि से क्यों नहीं ? 'जैसे माँ के दूध से शिशु की देह बनती है, वैसे ही मातृभाषा से चित्त।' कबीर, तुलसी, बिहारी, भारतेंदु, प्रेमचंद, रामचंद्र शुक्ल, राहुल सांकृत्यायन, दिनकर और नामवरसिंह की मातृभाषा खड़ी बोली नहीं थी। चरणसिंह को भाषा खड़ीबोली हिंदी अवश्य है, कमलापति त्रिपाठी, भोला पासवान, कर्पूरी ठाकुर, श्यामाचरण शुक्ल, भगवतदयाल शर्मा और मोहनलाल सुखाड़िया की नहीं। इनके चित्त के निर्माण के लिये इनकी भाषाएँ जरूरी हैं। इस तरह पूरे भारत में कई सौ भाषाएँ ढाल तलवार या झंडा और नारा लेकर सामने आ जाएंगी

और भोजपुर राज्य के मुख्यमंत्री जगजीवनराम अपने राष्ट्रवीर कुँवरसिंह की प्रतिमा पर भोजपुरी में माल्यार्पण कर उसे अंतरराष्ट्रीय भाषा घोषित करेंगे तथा भारत की सहराष्ट्र भाषा, क्योंकि भोजपुरी मारीशस, जमैका, दक्षिण अफ्रीका, ब्रिटिश, गायना आदि में भी बोली जाती है और तब क्या भोजपुर राज्य के सभी छात्रों का व्यक्तित्व शिक्षा शासन के माध्यम अपनी भाषा से ऊँचे उठ जायगा ? वे मनोवांछित उन्नति प्राप्त कर लेंगे, समाजवाद मिल जायगा ? पूरे इटली में इतालवी और यूनान में यूनानी (ग्रीक) भाषा शिक्षा शासन का माध्यम है ? दोनों देशों की राजनीतिक सामाजिक स्थिति विश्व के सामने है।

चीनी भाषा के माध्यम से 'कम्युनिस्ट चीन ने इस बीच अपने स्व का, चाहे अधम स्व का ही क्यों न हो, इतना विकास किया कि संसार के सबसे शक्तिशाली देश के राष्ट्रपति को पेकिंगयात्रा का न्योता पाकर अपार हर्ष हुआ।' इसका कारण मात्र चीनी भाषा है या वहाँ की शासन-समाज-व्यवस्था ? क्या च्यांग-काई शेक चीनी भाषा के माध्यम से (जो फारमोसा की भी भाषा है) स्व का 'चाहे अधम स्व का ही' इतना विकास कर पाते ?

जहाँ तक अंग्रेजी के माध्यम बने रहने से शासक शासित जाति के बढ़ते अंतर का प्रश्न है, वह भाषा के संदर्भ में बेतुका है। यूरोप के पूँजीवादी देश में अपनी भाषाएँ ही माध्यम हैं, विदेशी भाषाएँ नहीं, पर वहाँ शासक शासित का अंतर कम नहीं है। अरब, जार्डन, ईरान इत्यादि में भी ऐसा ही है। भारत में हरिजन, आदिवासी, शूद्र आदि का पिछड़ापन या अन्य जातियों वर्गों से विषमता का संबंध भाषा से कम, संपत्तितंत्र से अधिक जुड़ा है। श्री जगजीवनराम को ब्राह्मण ठाकुर भी हिंदी में 'बाबू जी' ही कहते हैं। तमिलनाडु का द्रमुक अब्राह्मणों की संस्था

है। तमिलभाषा का झंडाबरदार भी। शासन में भी है। राष्ट्रीय संविधान के कारण संपत्ति संबंधों का परिवर्तन उसके हाथ के बाहर है, फलस्वरूप मनोवांछित दल के सत्तारूढ़ होने पर भी तमिलभाषी हरिजन, आदिवासी, शूद्र आदि जहाँ के तहाँ हैं, शासक शासित का अंतर कम नहीं कर सके, बढ़ाया कितना, यह समाचारपत्रों से मालूम हो सकता है। सन् १९५७ से ५९ के ३० महीने के अपने शासन ने कम्युनिस्ट मुख्यमंत्री श्री नम्बूद्रीपाद ने मलयालम और हिंदी दोनों को बढ़ावा दिया, पर केरल शेष भारत से आगे न जा सका। अंग्रेजी में कमजोर होने से कोई छात्र अन्य विषय में भी कमजोर हो जायगा, यह शिक्षा शास्त्र के सिद्धांतों के विरुद्ध पेशबंदी है। प्रत्येक छात्र की प्रतिभा अलग अलग होती है। यही कारण है कि विश्वविद्यालयों में एम० ए० हिंदी के छात्रों की गति भी अलग अलग होती है। डा० श्यामसुंदरदास अंग्रेजी अधिक जानते थे, किंतु पं० रामचंद्र शुक्ल हिंदी, हजारीप्रसाद द्विवेदी तो अंग्रेजी बोल भी नहीं पाते। कबीरदास न तो हिंदी पढ़ सके थे, न अंग्रेजी। अतः 'अंग्रेजी' के कारण किसी का 'कमतर' या 'ज्यादातर' होना संगत नहीं है।

पड़ोस के स्कूलों एवं स्थानीय माध्यम को कन्वेंट या पब्लिक स्कूलों एवं अंग्रेजी के मुकाबले पसंद किया जा सकता है, किंतु जनतंत्र में जहाँ मंत्रियों को भी खरीदने बेचने की सुविधा उपलब्ध रहती है, वहाँ कन्वेंट या पब्लिक स्कूलों को चलाने की सुविधा कैसे रोकी जा सकती है? पुनः क्या उतनी या उसकी आधी सुविधाएँ पड़ोस के स्कूलों को प्रदान कर पाठ्यक्रम और पाठ्यक्रमेतर कार्यक्रमों की पूर्ति की जा सकती है। भावुकता में

समाजवादी देशों की उदार शिक्षा व्यवस्था पूँजीवादी देशों में नहीं चलाई जा सकती। जहाँ तक भारत में शासन के विभिन्न विभागों के उच्च पदों का प्रश्न है, यह निश्चित है कि ये पद या तो कई भाषाएँ जाननेवालों को ही मिलेंगे या अपनी भाषा से पद प्राप्त कर लेने के बाद कई भाषाएँ जानने की जरूरत पड़ेगी। प्रधान मंत्री की तरह सबको दुभाषिए नहीं मिलेंगे। एक भाषा की जानकारी से व्यक्ति की शिक्षा हो सकती है, किंतु बहुभाषी देश का न तो निर्माण हो सकता है और न शासन-संचालन। अंग्रेजी का विरोधमात्र अपने आप में वैसे ही निरर्थक है जैसे सिर्फ अंग्रेजी की जानकारी या उच्च अध्ययन। देश में अंग्रेजी के छात्रों की संख्या लाखों या करोड़ों में होगी। अंग्रेजी पढ़ानेवाले शिक्षकों, प्राध्यापकों एवं प्रोफेसरों की हजारों में। अंग्रेजी जाननेवाले उच्च जाति के छात्र हरिजनों, आदिवासियों एवं शूद्रों से कहीं आगे हैं। ये अंग्रेजी के भारतीय शिक्षक, प्राध्यापक आदि समाज में कितना आगे हैं? ये शासकवर्ग में हैं? या शासित में? इनको लेकर हम वर्गों के अंतर की दिशा का निर्धारण किस ओर से करें? अंग्रेजी अध्यापकों की समाज और शासन में क्या स्थिति है, यह कोई छिपी बात नहीं है, जब कि वे अंग्रेजी जानते ही नहीं, जाननेवालों को पढ़ाते हैं।

संप्रदायवाद एवं जातिवाद की तरह भाषावाद भी एक राष्ट्रीय बीमारी है, जिसने कुछ दलों एवं व्यक्तियों को पकड़ रखा है। यदि यह बीमारी और पनपी तो प्रांतीय क्षेत्रीय कटुता को जन्म और बढ़ावा दे सकती है। व्यक्ति और राष्ट्र के 'स्व' के निर्माण से निरस्त होकर जनता या युवा-पीढ़ी या नेतृवर्ग अंधराष्ट्रवाद की तरह अंध-भाषावाद का स्वाद चखने में मस्ती का अनुभव कर सकता है। बहुभाषी देश भारत में 'भाषा
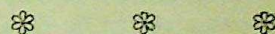
हटाओ' आंदोलन का दौर शुरू हो सकता है क्योंकि भाषावाद के आंदोलन में संप्रदायों की तरह भाषाओं की प्रतिस्पर्धा का संघर्ष शुरू हो जाता है (वैसी स्थिति में एक दिन राजभाषा हिंदी को मेरठ में ही शरण लेनी होगी)। तब भाषावाद के इस विवाद और संघर्ष में 'व्यक्ति और राष्ट्र को संस्कार देनेवाली शिक्षा का और उसके उच्च स्तर का क्या होगा, यह सिर्फ अनुमान का विषय है। उस समय तमिलवाद और हिंदीवाद की वही स्थिति होगी जो हिंदूवाद और मुसलमानवाद की होती है। यह भी सभव है कि राँची, अहमदाबाद और जलगाँव की पुनरावृत्ति हो। उस समय राष्ट्र का 'स्व' कहाँ होगा ?

उपर्युक्त विश्लेषण से हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि माध्यम के रूप में अंग्रेजी का स्थान प्रमुख क्षेत्रीय भाषाएँ ले सकती हैं। इसमें विलंब हानिकर है। विषय के रूप में अंग्रेजी का स्थान सुरक्षित करना होगा। इंगलैंड के नाते नहीं, बल्कि अमेरिकी उन्नत विज्ञान की भाषा के नाते अंग्रेजी हमारे लिये आवश्यक है। हम उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब भारत में अंग्रेजी जाननेवालों की संख्या आज से बीस पचीस गुनी ज्यादा हो जायगी। विदेशी भाषाओं, खासकर रूसी चीनी को, शीघ्र माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रमों में वैकल्पिक विषय के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। रूसी-चीनी उन्नत विज्ञान (अणुशक्ति एवं अंतरिक्ष विज्ञान) की पढ़ाई हिंदी या बँगला में नहीं होती, उन्हें साल छह महीने का समय रूसी सीखने में नष्ट करना पड़ता है। जब आयुर्वेद, रामायण, त्रिपिटक, गीतांजलि एवं गुलेनगमा का अनुवाद हो सकता है, तो विज्ञान की पुस्तकों का क्यों नहीं। हिंदी माध्यम के छात्र डार्विन, मार्क्स, आइंस्टीन और माओ को किस भाषा में पढ़ेंगे। मूल पढ़ने के लिये अंग्रेजी, जर्मन, चीनी की समस्या आगे आ जायगी। हिंदी अन्य प्रांतों में शिक्षा का माध्यम नहीं बन सकती और न बनना चाहिए। वह एक संपर्कभाषा मात्र हो सकती है, जिसकी शिक्षा सभी भारतीयों के लिये अनिवार्य नहीं होगी। बनगाँव, दक्षिणी अर्काट एवं भावनगर के किसानों या गाँव की महिलाओं और दूकानदारों को हिंदी की अनिवार्य शिक्षा देकर हम क्या करेंगे ? अंत में भाषा पर विचार प्रकट करने से पहले पूँजीवादी जनतंत्रों के अंतर्विरोध एवं बहुभाषी भूतपूर्व उपनिवेशों के इतिहास का संक्षिप्त अध्ययन आवश्यक है।

●

समीक्षा

समीक्षा के लिये पुस्तक की दो प्रतियाँ भेजना आवश्यक होगा। समीक्षा यथासंभव शीघ्र प्रकाशित की जायगी। यह आवश्यक नहीं होगा कि प्रत्येक प्राप्त पुस्तक की समीक्षा की जाय। प्रत्येक पुस्तक का प्राप्तिस्वीकार पत्रिका में किया जायगा।

अपभ्रंश और हिंदी में जैन रहस्यवाद

ले० वासुदेव सिंह

समीक्षा ले०—डा० राजेंद्रकुमार (प्रा० हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

हमारे धर्म और साहित्य की रहस्यवादी चेतना को पल्लवित करने में जैन धर्म का महत्वपूर्ण योग रहा है। परिणामत: संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं में प्रभूत जैन साहित्य की रचना हुई है। परंतु मूलत: धार्मिक साहित्य होने के साथ ही शास्त्रीय एवं परंपराविहित साहित्यिक अनुशीलन के कारण प्रारंभ में जैन साहित्य उपेक्षित-सा बना रहा। परिणामस्वरूप बहुत समय तक इस साहित्य का सम्यक् अनुशीलन संभव नहीं हो सका। पं० रामचंद्र शुक्ल जैसे साहित्यमर्मज्ञ भी अपनी दृष्टिविशेष के कारण जैन साहित्य के साथ न्याय नहीं कर सके। लेकिन इस स्थिति का बहुत समय तक बना रह सकना संभव नहीं था। पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'पुरानी हिंदी' शीर्षक लेखमाला के अंतर्गत अज्ञात जैन साहित्य की प्रभूत राशि का दिग्दर्शन कराके उसके साहित्यिक एवं भाषावैज्ञानिक महत्व का प्रतिपादन किया। गुलेरी जी के इस कार्य से जैन साहित्य के अध्ययन को पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त हुई। उसके उपरांत नाथूराम प्रेमी, डा० हीरालाल जैन, डा० कस्तूरचंद कालीवाल, श्री अगरचंद नाहटा, डा० देवेंद्रकुमार जैन, डा० प्रेमसागर जैन आदि विद्वानों ने प्राकृत, अपभ्रंश और हिंदी जैन साहित्य के अध्ययन एवं अनुसंधान को उत्तरोत्तर विकासोन्मुख किया है। अब तक यद्यपि जैन साहित्य की बहुत सी सामग्री ऐसी है, जो ग्रंथभांडारों में सुरक्षित है और उसे प्रकाश में लाने की आवश्यकता है, तथापि यह भी सत्य है कि अब प्राप्त जैन साहित्य की अंतर्वर्ती चेतना के विविध पक्षों के सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक अन्वेषण की भी आवश्यकता है। डा० वासुदेव सिंह ने अपने ग्रंथ "अपभ्रंश और हिंदी में जैन रहस्यवाद" के अंतर्गत आदिकाल से लेकर अठारहवीं शती तक के जैन साहित्य में परिव्याप्त रहस्य चेतना का अध्ययन प्रस्तुत कर इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है।

पाँच खंडों के अंतर्गत बारह अध्यायों में विभक्त इस शोधप्रबंध में तथ्यान्वेषण तथा ज्ञात और शोधित तथ्यों की मौलिक व्याख्या की सफल एवं जिज्ञासापूर्ण चेष्टा की गई है। प्रथम खंड के पहले अध्याय में रहस्यवाद के स्रोतों और भारतीय साहित्य में प्राप्त उसकी अविच्छिन्न परंपरा का अनुशीलन मिलता है। दूसरे अध्याय में जैन दर्शन की भूमिका में रहस्यभावना का तात्विक विवेचन किया गया है। इन अध्यायों के अंतर्गत यद्यपि किसी मौलिक सामग्री का समावेश नहीं मिलता, तथापि दोनों ही अध्याय संपूर्ण अध्ययन के लिये भूमिका का कार्य करते हैं।

दूसरे खंड में जैन मत के प्राकृत, अपभ्रंश और हिंदी के सत्रह रहस्यवादी कवियों तथा उनके

काव्य की शोधपूर्ण विवेचना की गई है। अपने अध्ययन के प्रारंभ में कुंदकुंदाचार्य और स्वामी कार्तिकेय नाम के दो प्राकृत कवियों के समावेश द्वारा लेखक ने अपभ्रंश और हिंदी जैनकाव्यों की रहस्यवादी विचारधारा के सूत्रों को जोड़ने का कार्य किया है। शेष कवियों में ब्रह्मदीप, जैसे कुछ कवियों को छोड़कर प्रायः सभी के संबंध में जैन साहित्य के अध्येताओं को थोड़ी बहुत जानकारी पहले से प्राप्त रही है। लेकिन लेखक ने उनमें से अनेक कवियों के व्यक्तित्व और कृतित्व का विस्तृत विवेचन किया है तथा उसकी तथ्य विषयक अनेक उपलब्धियाँ पर्याप्त महत्वपूर्ण एवं मौलिक कही जाएँगी। लेखक ने अपभ्रंश के योगींद्र मुनि एवं रामसिंह की जीवनी एवं रचनाओं के विषय में अनेक नवीन तथ्यों का उद्घाटन किया है। रचनाकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विवेचन के बीच बीच में उसने प्रमुख कवियों की विचारधारा के अंतर्वर्ती साम्य और वैषम्य का भी निरूपण किया है, जो सर्वथा मौलिक है। तथ्यानुसंधान की दृष्टि से यह अध्याय पर्याप्त महत्वपूर्ण है।

तृतीय खंड को इस प्रबंध का मुख्य भाग कहा जा सकता है, क्योंकि इन्हीं अध्यायों के अंतर्गत जैन रहस्यवाद की तात्विक व्याख्या उपलब्ध होती है। इस खंड के चौथे अध्याय में जैन दर्शन में स्वीकृत 'नयों' का विवेचन हुआ है। जैन दर्शन में 'व्यवहार नयों' और 'निश्चय नय' की स्वीकृति है। व्यवहार नय के माध्यम से जैन साधक सृष्टि की अनेकता का भेदन करता हुआ, 'निश्चय नय' के द्वारा सृष्टिगत तात्विक एकत्व की अनुभूति करता है। 'निश्चय नय' में उसकी आत्मा भेदरहित, प्रबुद्ध और निर्विकल्प हो जाती है। पाँचवें अध्याय के अंतर्गत जैन दर्शन में प्रतिपादित द्रव्य व्यवस्था का विवेचन मिलता है। जैन दर्शन में षट् द्रव्यों का प्रतिपादन हुआ है। इनमें जीव चेतन द्रव्य है तथा पाँच पुद्गल,

धर्म, अधर्म, आकाश और काल अचेतन द्रव्य हैं। ये द्रव्य सृष्टि के नियामक उपकरण हैं। इनकी सत्ता एवं इनके स्वरूप का परिज्ञान जैन साधक की साधना का प्रथम सोपान है। छठे अध्याय में जैन साधकों द्वारा निरूपित आत्मतत्व और परमात्मतत्व की व्याख्या की गई है। सातवें अध्याय में जैनमत में स्वीकृत मोक्षप्राप्ति के साधनों का दिग्दर्शन हुआ है। उपर्युक्त सभी विषयों के प्रतिपादन में लेखक ने जैन रहस्यवाद की संपूर्ण प्रक्रिया का तर्कसंगत एवं सप्रमाण विवेचन प्रस्तुत किया है।

चौथे खंड में तीन अध्यायों के अंतर्गत जैन रहस्यवाद की क्रमशः सिद्ध, नाथ और संत संप्रदायों में स्वीकृत रहस्यवाद से तुलना की गई है। तुलनात्मक अध्ययन के इन अध्यायों में आद्यंत लेखक की मौलिक प्रतिपादनक्षमता का दर्शन होता है। संत मत पर जैन मत की विचारधारा के प्रभाव का विवेचन तो लेखक की अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। जैन और संत साधकों की साधनागत इस तात्विक एकता का निरूपण करते हुए उसने लिखा है, "यदि आनंदघन की रचनाओं में से उनका नाम निकालकर कबीर का नाम जोड़ दिया जाए तो उनमें और कबीर में कोई अंतर नहीं लक्षित होगा। इसी प्रकार बनारसीदास और संत सुंदरदास, जो समकालीन थे, एक ही प्रकार की बातें करते हुए दिखाई पड़ते हैं।" लेखक की इस प्रकार की मान्यताएँ सर्वथा अपनी और मौलिक हैं।

प्रबंध के पाँचवें खंड में मध्यकालीन धर्मसाधना में प्रयुक्त कतिपय शब्दों के स्वरूप और अर्थविकास का अनुशीलन किया गया है। इस संदर्भ में लेखक ने जिन शब्दों का चयन किया है, यद्यपि वे पर्याप्त महत्वपूर्ण और मध्यकाल में बहुप्रचलित रहे हैं तथापि इस विवेचन में कुछ और भी शब्दों को संमिलित कर लिया जाता तो अधिक उपयुक्त होता।

परिशिष्ट में अपभ्रंश और हिंदी की कतिपय अज्ञात जैन रचनाओं के संकलन से प्रबंध की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। इस संकलन के

माध्यम से प्रबंध में विषय प्रतिपादन के निमित्त उद्धृत अंशों के संदर्भज्ञान में पर्याप्त सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त यह संकलन अन्य शोधकर्ताओं के लिये भी पर्याप्त उपयोगी हो सकेगा।

प्रस्तुत प्रबंध में लेखक ने विषयविवेचन में आद्यंत तथ्यों और प्रमाणों को अपेक्षित महत्व दिया है। वह अपनी तत्वाभिनिवेशी प्रतिभा के ही कारण रहस्यवाद जैसे जटिल विषय के व्यावहारिक विवेचन में सफल रहा है। लेखक कहीं भी कल्पना अथवा भावना का संबल लेकर चलता नहीं लक्षित होता। प्रबंध की भाषा भी पूर्णतया सफल कही जाएगी और वह शोध की भाषा का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। भाषा आद्यंत तथ्य-विवेचन में समर्थ होने के साथ ही सर्जनात्मक चेतना से भी अनुप्राणित है। समग्र रूप में डा० सिंह का यह ग्रंथ उच्च कोटि का है तथा उसे शोध का उत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है। एतदर्थ वे बधाई के पात्र हैं।

जूझते हुए—

सुरेंद्र तिवारी

राधाकृष्ण प्रकाशन, १९७१, पृष्ठ-सं० ८०। मूल्य ५-५०

आए दिन बदलती हुई काव्यसंवेदना की जमीन रोजमर्रे के अनुभव से तराशे जाते हुए आदमी की उपलब्धियों का दस्तावेज प्रस्तुत करती है। तथाकथित आधुनिकता बोध के विभिन्न आयाम और उसकी सीमाएँ इधर की रचनाओं में दिखलाई पड़ती हैं। आलोच्य संग्रह 'जूझते हुए' आज की नौकरशाही व्यवस्था में पिसकर तिलमिलाते हुए आदमी के एहसासों की कशमकश है। कविता और रचनाकार दोनों के व्यक्तित्व

प्राप्तिस्थान—चौखंभा संस्कृत सिरीज, वाराणसी मूल्य—रु० १२।

के बीच अगर फर्क न किया जाय और कवि को रचना के परिप्रेक्ष्य में मद्देनजर रखा जाया तो 'जूझते हुए' के कवि सुरेंद्र तिवारी (संग्रह के फ्लैप के मुताबिक) आजकल एम. एम.टी. सी. में हैं। इसलिये कवि के व्यक्तिगत अनुभव की बिना पर भी ये रचनाएँ प्रामाणिक साबित हो सकती हैं।

व्यवस्था के नियमों के शिकंजे में कसे हुए आदमी का व्यक्तित्व लगातार टूटता जा रहा है। वह ईकाइयों में बँटा हुआ है—वह आदमी न होकर ब्राह्मण, कायस्थ या बनिया' है, अपनी शुद्ध महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये -

(विशिष्ट
बनने के लिये
बहुत दिन नचाया
बड़ा बी)

वह सब कुछ कर सकता है। अपना नैतिक साहत खोकर जिजीविषा को आश्वस्त करता है-

'मुझे विश्वास हो गया है
बेईमानी के प्रति
मेरा विद्रोह भूँकते भूँकते
दुम दबाकर सो गया है
झूठ बोलने का
धाराप्रवाह
अभ्यास हो गया है। (धाराप्रवाह)

इस 'आदमी' की आस्था मर चुकी है, तहजीब के कोई मायने नहीं रह गए। बुद्धि विवेक कुंठित हो चुके हैं, क्योंकि उसे 'एटिकेट' निबाहने हैं। उसका स्वतंत्र अस्तित्व खत्म हो चुका है, 'सोचना' गुनाह है—

बुद्धि नहीं, व्यक्ति नहीं
नियमों का शासन है
आज के जमाने में
खैरियत है लीक लीक जाने में, आने में।
(नियमानुसार)

विघटित होते व्यक्तित्व को ढोता हुआ आदमी पनी हालत महसूस भी करता है कि—

इतिहास में
गलतियों की माफी नहीं होती
एक छोटी सी भूल को
सुधारने के लिये
एक शताब्दी काफी नहीं होती
(पश्चात्ताप)

इस तरह व्यवस्था में खपते हुए आदमी का दूसरा पक्ष उसकी महानगर की जिंदगी है। लालफीता-शाही के तौर तरीकों से परिचालित सभ्यता है—जिसका खोखलापन साबित हो चुका है।

दिल्ली
हर डिजाइन के आदमीनुमा जानवरों का एक बहुत बड़ा जू है।
जहाँ ज्यादातर आदमी बिल्कुल गिर-गिट है।
(दिल्ली)

क्योंकि वह समझदार है—
'नासमझ
पार्टी में बने रहे
समझदारों ने पार्टी बदल दी।
(पार्टी)

महानगर के इस दमघोंटू संत्रास में उसे महसूस होता है—

इस बड़े शहर में
सिर्फ
खुले आकाश की है कमी (दिल्ली)

इस तरह समूची सामाजिक और राजनयिक व्यवस्था को अपने खिलाफ—आदमी के खिलाफ पाते हुए भी कवि का स्वर काफी 'फ्रिज' लगता है। वह तथाकथित 'एटीकेट्स' के विरुद्ध जाने का साहस नहीं कर सकता क्योंकि उसके विघटित व्यक्तित्व में सिर्फ महसूस करने की ताकत रह गई है। खिलाफत का जोश ठंडा पड़ चुका है। यही कारण है कि सुरेंद्र तिवारी ने सिर्फ अपने उन्हीं एहसासों को प्रस्तुत किया जो वस्तुतः 'जूझना' नहीं बल्कि 'सहना' हैं। खिलाफत न कर पाने की इस मजबूरी को वे जूझते हुए की संज्ञा देते हैं जो सार्थकता की दृष्टि से गलत लगता है।

शमशेर—

सं० सर्वेश्वर दयाल सक्सेना मलयज
राधाकृष्ण प्रकाशन, १९७१,
पृष्ठ सं० १४४, मूल्य—८ रुपये

माने जाने कवि शमशेर की साठवीं वर्ष गाँठ पर उनके मित्रों सहयोगियों ने इस समर्पण संस्करण का प्रकाशन किया है। शमशेर की प्रतिनिधि रचनाओं के एकत्र संकलन की जरूरत एक लंबे अरसे से साहित्य जगत् में महसूस की जा रही थी, जिस कमी को पूरा करने की कोशिश भी इस संकलन द्वारा की गई है। शमशेर की रचनाओं के अलावा उनके सामयिकों द्वारा की गई समीक्षाएँ भी इसमें संगृहीत हैं। मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, रघुवंश, विजयदेवनारायण साही, मलयज ने अपने तरीकों से शमशेर की रचनाप्रक्रिया को विश्लेषित किया है।

जहाँ तक शमशेर की रचनाओं का सवाल है उनपर साहित्य के तथाकथित वादों का लेबल लगाना बेमानी होगा। वे एक साथ प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, प्रभाववादी आदि सभी कुछ हैं हालाँकि संरचनागत संवेदना के धरातल पर ये रचनाएं युगीन यथार्थबोध के ज्यादा नजदीक हैं और बहुत कुछ मनोवैज्ञानिक यथार्थ के स्तर पर आत्मपरक भावभूमि की ओर बढ़ती हैं। संवेदन की तीव्रता को अभिव्यक्ति देने के लिये शमशेर बिंबों का सहारा लेते हैं जो उनके अवचेतन की उपज होते हैं इसी विंदु पर शिल्प की रचनागत प्रक्रिया शुरू हो जाती है जिसकी वजह कथ्य की नवीनता भी है। वैसे शमशेर काव्य को आंतरिक अनुभूति के समांतर ही लेते हैं।

मैंने कहा
शाम ने मुझ से कहा :
राग अपना है।' (राग)

या कि—समय के
चौराहों के चकित केंद्रों में
उद्भूत होता है कोई : उसे—व्यक्ति—कहो
कि यही काव्य है।
आत्मतम।'
(एक नीला दरिया बरस रहा)

यहाँ 'राग' को 'अपना' कर काव्य के 'आत्मतम' स्तर पर अनुभूति की संवेगात्मक तीव्रता को सहज बनाने की कोशिश है. उसे 'व्यक्ति' या व्यक्तित्व प्रदान करने की चेष्टा है, कथ्य को प्राणवत्ता देने के लिये कवि के पास मनः प्रतिमाओं का इंद्रजाल है, ये मनःप्रतिमाएँ—बिंब कहीं भी रचना के परिवेश में अलग नहीं पड़ते बल्कि वे प्रतिबद्ध हैं वस्तु से।

जैसे—

१—'बहुत काली सिल जरा से लाल केसर से
कि जैसे धुल गई हो।'
(उषा)

२—'सीने में सूराख हड्डी का
आँखों में : धारा—काई की नमी।
(सींग और नाखून)

३—'मुझको प्यास के पहाड़ों पर लिटा दो
जहाँ मैं एक झरने की तरह तड़प रहा हूँ
(टूटी हुई : बिखरी हुई)

४—'उषा के जल में
सूर्य का स्तम्भ हिल रहा है'
(न पलटना उधर)

ये तमाम बिंब कवि की मनश्चेतना को विश्लेषित करते हैं, रचना में ये केंद्रीय स्थिति की ओर अग्रसर दिखाई पड़ते हैं।

जहाँ तक 'चिंतक शमशेर' का सवाल है वह 'मार्क्सवाद' के साथ जुड़ा हो सकता है, 'समानसत्य' या 'इतिहास की धड़कन' की बाबत बात कर सकता है, मगर उसे कठोर वस्तुपरिधि का आभास है—

शिला का खून पीती थी–
वह डाइ
जो कि पत्थर थी स्वयं।
(शिला का खून पीती थी)

बहरहाल, मृत्यु की स्पृहा को महसूस करता हुआ और उससे जूझता हुआ कवि आश्वस्त है अपने बारे में—

आईनो, रोशनाई में घुल जाओ
और आसमान में मुझे लिखो और मुझे पढ़ो।
आईनो, मुस्कराओ और मुझे मार डालो।
आईनो, मैं तुम्हारी जिंदगी हूँ।
(टूटी हुई ; बिखरी हुई)

—श्री राजेंद्र उपाध्याय

तीन अध्याय—

विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला (रूपांतर–फणीश्वर नाथ रेणु)
राधाकृष्ण प्रकाशन, १९७१—पृष्ठ सं० ९८, मूल्य ३.५०

जीवनदर्शन और कथारचना के द्वि-आयामी स्तर पर 'तीन अध्याय' की रचना हुई है। एक विशेष परिवेश की स्थितियों के बीच व्यक्तित्व का समग्र विकास और उसी दायरे में क्षण मात्र के लिये उसका असाधारण और महत्वपूर्ण हो उठना—इतना ही कथ्य है। सामूहिक तौर पर व्यक्ति अपनी अहमियत खो बैठता है। किंतु सीमित और नितांत व्यक्तिगत दायरे में उसके द्वारा लिए गए निर्णय कैसे जीवन की दिशा को बदल देते हैं और तमाम रूढ़िगत मूल्यों को गलत साबित कर देते हैं—यह सब व्यक्तिगत संवेगों के धरातल पर घटित होता है, जो चरित्र की अपनी उपलब्धि है। व्यक्ति जीवन की इसी उपलब्धि को नारीचरित्र के माध्यम से विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला ने अपने उपन्यास 'तीन अध्याय' में प्रस्तुत किया है।

इंद्रमाया एक लंबी उम्र के बाद अपने जीवन का विश्लेषण करने के लिये प्रस्तुत होती है जब उसे लगता है कि जिंदगी की लंबी यात्रा यहीं समाप्त हो गई। ये तीन अध्याय उसके लिए गए तीन फैसले हैं (जिन्होंने उसके जीवन की दिशा बदल दी) जिनका वह हिसाब जाँचती है अपने विशेष दृष्टिकोण से।

पहला निर्णय कैशोर भावुकता में लिया गया विवाह संबंधी निर्णय है जब वह पिता का घर छोड़कर एक साथ तमाम जातीय और सामाजिक मान्यताओं की केंचुल उतार फेंकती है और पीतांबर की हो जाती है। इस दौर के बाद उसके जीवन में रमेश आता है—पीतांबर का साथी, जिसके लिये वह संबंधों का कोई भी कोष्ठ निर्धारित नहीं कर पाती। पीतांबर की गिरफ्तारी के बाद मातृत्व की आकांक्षा उसे पुरुष की ओर प्रेरित करती है यह पुरुष पीतांबर हो सकता है, रमेश हो सकता है, कोई भी हो सकता है। और यहीं वह रमेश से शारीरिक संबंध स्थापित करने के बारे में फैसला करती है—दूसरा निर्णय, परिणाम में गर्भवती होती है।

तीसरा निर्णय पति और पुत्री के बीच चुनाव के समय लेती है, यहाँ समस्या उठती है—उसके नारी अस्तित्व की दो मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति की—नारी के प्रियातत्व और मातृतत्व के एक ही साथ संरक्षण की। बहरहाल वह अपनी संतान को प्राथमिकता देती है और पतिगृह का त्याग करती है।

ये तीन निर्णय—तीन अध्याय—आग की जिंदगी में उभरती हुई पुरानी व खोखली मर्यादाओं के खिलाफ आदमी की चुनौतियाँ हैं। शिल्प की दृष्टि से इस उपन्यास में खामियाँ भी हैं और संभावनाएँ भी। उपन्यास में जहाँ क्रांति संबंधी बातों का जिक्र है वे कोइराला के भोगे हुए यथार्थ को सामने नहीं लातीं बल्कि 'टेबुलराइटिंग जैसी लगती हैं। ले देकर उपन्यास अच्छा बन पड़ा है, रेणु का रूपांतर भी ठीक ही है।

भाषा अपनी भाव पराए

काव्यानुवाद 'बच्चन'

प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली
मूल्य : चार रुपए

डॉ० हरिवंशराय बच्चन हिंदी भाषा के लोकप्रिय कवि हैं। प्रस्तुत कवितासंग्रह उन्हीं की अनूदित कृति है। इस कवितासंग्रह से पूर्व बच्चन जी के 'खैयाम की मधुशाला', 'उमर खैयाम की रुबाइयाँ', 'चौंसठ रूसी कविताएँ', 'मरकत द्वीप का स्वर' आदि बहुचर्चित काव्यानुवाद प्रकाश में आ चुके हैं। लेखक के अनुसार इस कृति की अधिकांश रचनाएँ आल इंडिया रेडियो के सर्वभाषा कविसंमेलन के लिये अनूदित की गई थीं।

यह अनुवाद अधिकांश में मूल भाषाज्ञान के आधार पर नहीं किया गया है। इस संग्रह में ग्यारह कश्मीरी, तीन अंग्रेजी, दो पंजाबी, दो कन्नड़, दो मलयालम, एक मराठी, एक गुजराती एक तेलगु, एक तमिल और एक स्पेनी भाषा की कविता है। अज्ञात भाषाओं के अनुवाद करने की लेखक की अपनी विशिष्ट प्रक्रिया रही है। मूल कविताओं को नागरी लिपि में पढ़कर उनके 'रचनात्मक उद्बोधन', 'भावविचार', 'शब्द' और ध्वनि के आधार पर ये हिंदी कविताएँ रची गई हैं।

प्रस्तुत संग्रह की कविताएँ देशप्रेम, कर्मयोग, मानवता, आशावादिता और करुणा जैसी आदर्श विचारसरणि को अभिव्यक्त करती हैं। इनके पढ़ने पर विविध भाषाओं की साहित्यिक

गतिविधियों को समझने का अवसर मिल जाता है। स्पेनी भाषा की 'अंतिम विदा' शीर्षक कविता टामस ग्रे की 'एलिजी रिगेन इन ए कंट्री चर्चयार्ड' के समान हृदयस्पर्शी रचना है। अमृता प्रीतमा, जी० शंकर कुरुप आदि की रचनाएँ अपना स्वतंत्र प्रभाव छोड़ती हैं। कश्मीरी कवि लल्लदेद की कविता सहसा कबीर का स्मरण करानेवाली है।

बच्चन जी काव्यभाषा के सिद्धहस्त शिल्पी हैं। उनके हाथों तराशी गई भाषा प्रवाह और प्रभाव में अप्रतिम है। कश्मीरी कवि रहमान राही की 'सोता है संसार नहीं' शीर्षक कविता की ओजस्वी भाषा को उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है—

ताकतवाले आज हाथ की
हथकड़ियाँ तड़काते हैं,
कल के निर्बल आज सबल
शाहों के तख्त हिलाते हैं:
किसकी हिम्मत आज पिलाए
जहर पिया जो कल हमने;
हम दीवारें हैं जिनको
सैलाब सलाम बजाते हैं।
छूती हमको धार नहीं।
सोता है संसार नहीं।

मूल भाषाज्ञान के अभाव में यह कहना कठिन है कि इस अनुवाद में कितना अंश मूल कवि का है और कितना बच्चन जी का। इतना अवश्य है कि इसके द्वारा हिंदी जगत् अवश्य ही उपकृत होगा। मुद्रण स्वच्छ और रुचिकर है।

—डॉ० प्रेमीराम मिश्र

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

के

नवप्रकाशित ग्रंथ

हिंदी कारकों का विकास—ले० डा० शिवनाथ मूल्य रु० ७—००
हिंदी के कारकों का पूर्ण, प्रमाणिक एवं विद्वत्तापूर्ण ऐतिहासिक गवेषण।

हितचौरासी और उसकी प्रेमदास कृत व्रजभाषा टीका—
संपादक डा० विजयपाल सिंह : डा० चंद्रभान रावत, मूल्य—रु० १६—००
वैज्ञानिक एवं विद्वत्तापूर्ण संपादन, भूमिका में हितहरिवंश जी की कृति की विस्तृत व्याख्या एवं शब्दार्थ आदि भी।

मधुस्रोत—आचार्य रामचंद्र जी शुक्ल की कविताओं का संकलन, मूल्य—रु० ६—००
आचार्य शुक्ल की काव्यमयी प्रतिभा की मनोरम झाँकियाँ।
"कविता क्या है?" शीर्षक लेख से संवलित।

फ्रेडरिक पिंकाट—ले० पद्मधर पाठक, मूल्य—रु० ६—००
भारतीय भाषाओं और साहित्य के गंभीर चिंतक एवं अध्येता पिंकाट के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सम्यक् दिग्दर्शन।

हिंदी और फारसी सूफी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन—ले०—डा० श्रीनिवास बत्रा, मूल्य—रु० ३०—०
फारसी एवं हिंदी के सूफी काव्यों के तुलनात्मक अध्ययन के साथ ही इसमें सूफी काव्य के विकास एवं प्रगति तथा उसके रहस्यात्मक प्रतीकों की सुंदर व्याख्या।

हिंदी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक—(१८६१—१९६०)
ले० डा० प्र० रा० भुपटकर, मूल्य—रु० ३०—००
हिंदी एवं मराठी के १ शती के भीतर रचित प्रमुख ऐतिहासिक नाटकों की तुलनात्मक व्याख्या।

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास—खंड १०—सं० डा० नगेंद्र, 'अंचल' एवं 'रुद्र' मूल्य—रु० ३०—००
संवत् १९६५—१९९५ वि० तक हिंदी साहित्य की समस्त विधाओं के उत्कर्ष एवं उन्नयन की विस्तृत मीमांसा।

स्वत्वाधिकारी—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के लिये शंभुनाथ वाजपेयी द्वारा नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी से मुद्रित और प्रकाशित।

नागरी पत्रिका

फरवरी मार्च, १९७२

नागरीप्रचारिणी सभा
वाराणसी

नागरी पत्रिका

वर्ष-५ अंक-५-६

फरवरी, मार्च, १९७१

वार्षिक दो रुपए

प्रति अंक पचीस पैसे

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

★

संपादकमंडल
करुणापति त्रिपाठी
डा० नागेंद्रनाथ उपाध्याय
मोहकमचंद मेहरा
संपादक—सुधाकर पांडेय
सहसंपादक—श्रीनाथ सिंह

दिल्ली प्रतिनिधि—
डॉ० रत्नाकर पांडेय,
४२, अशोक रोड,
नई दिल्ली।
फोन—
३८८१७०

लखनऊ प्रतिनिधि
डा० हरेकृष्ण अवस्थी,
एम० एल० सी०,
४, बादशाह बाग,
लखनऊ।
फोन— २४५५६

वैचारिकी

इस महीने १६ मार्च को काशी के वयोवृद्ध पत्रकार, इतिहासज्ञ एवं विद्वान् पं० गंगाशंकर मिश्र का निधन हो गया। उनके निधन से हिंदी पत्रकारिता की अपूरणीय क्षति हुई है। आप उस पुरानी पीढ़ी के पत्रकार थे जिनकी लेखनी ने सदैव जनमानस के उद्गारों को ईमानदारी एवं निर्भीकता के साथ प्रस्तुत किया। इसका परिचय उन अग्रलेखों से मिलेगा जो काशी और कलकत्ता से एक साथ प्रकाशित होनेवाले दैनिक 'सन्मार्ग' में वर्षों तक श्री मिश्र जी द्वारा लिखे जाते रहे।

'एक किताबी कीड़ा' के नाम से आपने अनेक खोजपूर्ण निबंध लिखे जो विभिन्न पत्रपत्रिकाओं में वर्षों तक प्रकाशित होते रहे। इन लेखों का संग्रह कई जिल्दों में प्रकाशित भी हो चुका है। इसमें संदेह नहीं कि ये निबंध अपने ढंग के अनूठे हैं और उनमें ऐसी रोचकता है कि एक बार आरंभ करने पर बिना पूरा निबंध पढ़े चित्त नहीं मानता।

पत्रकारिताजगत् में आने के पूर्व आप कई वर्ष तक काशी हिंदू विश्वविद्यालय के पुस्तकाध्यक्ष पद पर रहे। काशी से जब दैनिक 'सन्मार्ग' का प्रकाशन धर्मसंघ शिक्षा मंडल की ओर से हुआ तो संभवतः उसी समय आप उसके प्रधान संपादक नियुक्त हुए। इसके पश्चात् कलकत्ते से भी 'सन्मार्ग' दैनिक का प्रकाशन आपके ही संपादकत्व में होने लगा। इन दोनों पत्रों के अलावा आपने 'विवेक' पाक्षिक और 'शक्ति' नामक मासिक पत्रिका का भी वर्षों तक संपादन किया। इन पत्रपत्रिकाओं के माध्यम से आपने मुख्य रूप से भारतीयता का प्रचार किया। सनातन धर्म के विरोध में देश में जब भी कोई विचार उठता था, आप अपनी लेखनी द्वारा डटकर उसका उत्तर देते थे।

मिश्र जी के निधन से सनातन धर्म का एक विद्वान् प्रहरी उठ गया है। हम भूतभावन भगवान् शंकर से उनकी आत्मा की सद्गति के लिये प्रार्थना करते हैं।

सुधाकर पांडेय

साठोत्तरी मराठी कथा : दशा और दिशा

चंद्रकांत बांदिवडेकर

आधुनिक मराठी कथा साहित्य में नई चेतना का जोरदार प्रारंभ १९४३-४४ के दरमियान हुआ। फड़के, खांडेकर के प्रभाव से इसके पहले की कथा कलावाद, रंजनवाद और स्थूल बोधवाद के कारण शिल्प और वस्तु दोनों स्तरों पर एक भँवर में फँस गई थी। शिल्पकौशल के नाम पर कथा की रचना को अधिक रोचक, अधिक सुगठित और अधिक कृत्रिमतापूर्ण बनाया जा रहा था। जीवनदर्शन, व्यक्ति के अंतर्मन की टटोल, सामयिक जीवन की जीवंत संवेदना का तीखापन, उर्ध्वस्त होते जानेवाले मूल्यों की पहचान, नए जीवनमूल्यों की उपलब्धि की छटपटाहट, परिवेश के बदलते रूप की वेदना पूर्ण प्रतीति इत्यादि बातों की अपेक्षा कथा के चौखटे को सजाने सँवारने की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। कथा में प्रयोग के नाम पर जो भी कुछ हो रहा था वह कथ्य की अनिवार्य माँग नहीं थी बल्कि एक चमत्कारपूर्ण प्रयत्न था जो कथालेखक की रचनाकुशलता के प्रति विस्मय उत्पन्न करने के उद्देश्य से किया जाता था। शीर्षस्थ कथाकार तक जीवननिष्ठा की बात करते हुए भी कारीगरी में व्यस्त थे और दोयम दर्जे के कथाकार जीवन के आकलन के प्रयास में बोधवादी नीरस कथाएँ लिख रहे थे। ऐसी स्थिति में जाने माने मध्यवर्गीय कठघरे को छोड़कर अधिक व्यापक क्षेत्र में जाने का प्रयास अगर लेखक करते भी थे तो हास्यास्पद हो जाते थे। अधिक से अधिक मध्यवर्ग को छोड़कर अन्य वर्ग की जीवन-व्यथा की छोटी सी झलक दिखाकर भावुक पाठकों की सहानुभूति और करुणा जगाने का कार्य करने में ये लेखक संतोष करते थे। कथ्य के प्रति निर्मम तटस्थता रखकर विभिन्न कोणों से कथाविषय को प्रस्तुत कर सकने की क्षमता का प्रायः अभाव ही था।

वस्तुतः द्वितीय महायुद्ध की गर्म हवाओं के झुलसा देनेवाले झोंके संवेदनशील लेखकों को विचलित करने में तथा उनको अपने सुखमय जीवन के सुरक्षित नीड़ से बाहर निकालने में समर्थ थे। भारतीय स्वातंत्र्य आंदोलन के उतार चढ़ाव जागरूक मन को अनिश्चितता के भँवर-जाल में फँसाने के लिये पर्याप्त थे। आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश किसी भी चिंतनशील व्यक्ति को अनिश्चित, अस्वस्थता, प्रश्नाकुलता की अजीब सी अवस्था में रहने को विवश करनेवाला था। जिस पीढ़ी को इस व्यापक परिवेश ने अनेक स्तरों पर झकझोरा था वह पीढ़ी कथालेखन के लिये १९४२-४३ के आस पास प्रेरित हुई थी। सामयिक स्थितियों की जटिलता और अस्तव्यस्तता ने कुछ सीमा तक मराठी कथाकारों की अंतश्चेतना को बेचैन कर दिया था, ऐसा इन नए कथाकारों के लेखन से अवश्य प्रतिभासित होता है। इन नए कथाकारों में प्रमुख हैं--गंगाधर गाडगील, अरविंद गोखले, पु० मा० भावे और व्यंकटेश माडगूळकर। पूर्ववर्ती मराठी कथा के कतिपय दोष इनको अखर रहे थे। खासकर फड़के प्रणीत तंत्रवाद ने मराठी कथा को बेहद जकड़ दिया था। यह तंत्रवाद निर्जीव था क्योंकि कथा की आंतरिकता एवं कथा के अनुभव की विशिष्टता से इसका

लगाव नहीं था और वह पाठक को केंद्र में रखकर बनाया गया था। मनुष्य के मन का अच्छे या बुरे, सुष्ट या दुष्ट, ध्येयोन्मुख और आदर्शहीन इत्यादि दो वर्गों में विभाजन नए कलाकारों को स्वीकार्य नहीं था। मनुष्य के प्रकट मन की सीमा और शक्ति का इनको अच्छा ज्ञान था और अंतश्चेतना की गहन शक्तियों से भी ये अवगत थे। जीवन की सबलता और सरलता में इनका विश्वास नहीं था क्योंकि दिन-ब-दिन उग्र होते जानेवाले जीवन संघर्ष ने जीवन की जटिलता से इनका परिचय कराया था। जो कथा महज करुणा, सहानुभूति, उदात्तता का भाव उत्पन्न करने के लिये लिखी गई हो, जो अपने कथानिविष्ट उद्देश्य के लिये जीवन की एकांगिता को लेकर समस्याओं का सरलीकरण करती हो, जो शिवत्व और सौंदर्य के लिये 'सत्य' को—खतरनाक और भयावह 'सत्य' को, अनदेखा करती हो, जो अश्लील के नाम पर अपनी मध्यवर्गीय कमजोरी को छिपा रही हो या वास्तविकता का सामना करने से कतराती हो, वह कथा इन नए कथाकारों को सही और सच्ची कथा नहीं लगती थी। स्त्री का पतिव्रता, प्रेयसी, विशुद्ध प्रेम करनेवाली निष्ठावती नारी, व्यभिचारिणी वेश्या, इस प्रकार बंद कठघरों में विभाजन भी नये कथाकारों की दृष्टि से वास्तविकता से काफी दूर था। सबसे अधिक मनुष्य चरित्र का वर्टिकल विभाजन इन्हें अमान्य था। ये कथाकार सिद्धांततः मनुष्य को उसके यथावत् रूप में अंकित करने के पक्ष में थे। जीवन के वैविध्यमय रूप को नैतिक या सौंदर्यवादी दृष्टिकोण के चश्मे से देखकर चित्रित करने की बजाय वे उसको पूरी जटिलता से पकड़ने के प्रयत्न में थे। जीवन के अनुभव को वे अपरिमित महत्व देना चाह रहे थे और यह अनुभव कहाँ तक नैतिक है, कहाँ तक उच्च मूल्यों के संस्कारों के लिये उपयोगी है, उसमें कहाँ तक चिरंतनता या वैश्विकता है, यह उनके लिये महत्वपूर्ण बात नहीं थी। १९४३-४४ के बाद के कथाकारों को मनुष्य के मन ने और उसके अनुभव ने इतना आकर्षित किया है कि वह उनकी सब से बड़ी शक्ति भी रही और कुछ समय के बाद वह सीमा भी हो गई। गोखले, गंगाधर, गाडगिल और पु० भा० भावे ने मनुष्य के मन का, विशेषतः नागर मनुष्य के मन का वैविध्यपूर्ण अंकन अपनी कथाओं में किया। गोखले आज भी लिख रहे हैं और अन्य लेखकों की तुलना में उनकी कहानियाँ आज भी पाठकवर्ग को प्रभावित करती हैं। कभी तो यह भी शंका होती है कि गोखले का अपना खास पाठकवर्ग बन गया है। गोखले की कथा में मध्यम वर्गीय जीवन के अनेक स्तरों के अनेक उद्योग करनेवाले अनेक जातियों के विविध स्वभाव के स्त्री पुरुष हैं। महायुद्ध, गरीबी, राष्ट्रीय आंदोलन, जातीय संघर्ष की पृष्ठभूमि गोखले के कथापात्रों को मिली है परंतु गोखले का कथाकार पकड़ना चाहता है अपने पात्रों के मन को, मन के बेतरतीब प्रवाह को, उनके मूड को, जीवन में आस्थावान् उनके मानसिक केंद्रबीज को, उनके वैविध्यपूर्ण भावपुंज को। गोखले द्वारा चित्रित नारी के मन का कैनवस व्यापक भी है और गहराई से समृद्ध भी। परंतु गोखले की कथा में एक सीमा के बाद ठहराव आ गया। उनके मनोविश्लेषण में सरलीकरण और सामान्यीकरण आ गया। कथाओं के आधार-बिंदु के रूप में चमत्कृतिजन्य घटना की खोज वे करने लगे। निवेदन या निरूपण ने उनकी कथा की जीवंतता को क्षीण कर दिया। गोखले के साथ गंगाधर गाडगिल ने भी अत्यंत सशक्त कहानियाँ देकर मराठी कथासाहित्य को समृद्ध किया है। गोखले में करुणा, सहानुभूति, उदात्तता, मानवीयता और भारतीयता के प्रति गहन आस्था है और उनके कथालेखन में इसके कारण कुछ सीमाएँ भी उत्पन्न हुई हैं। गंगाधर गाडगिल मनुष्य के मन को अपनी पैनी आँखों से बिना किसी आस्था के

तह तक देखते हैं। अपने असली रूप में मनुष्य गंगाधर गाडगिल के सामने आता है, तब बहुत ही हीन, दीन, विपन्न और दयनीय हो जाता है। समाज, राष्ट्र, परिवार, वैवाहिक पवित्रता इत्यादि के पर्दों को फाड़कर गाडगिल मनुष्य को उसके आत्मकेंद्रित, स्वार्थी, भीरु रूप में जब खड़ा कर देते हैं तब पाठकों को वह विकृत लगने लगता है। गाडगिल में मनुष्य के 'मूड' को चित्रित करने की क्षमता भी जबरदस्त रूप में है जो उनकी 'तलावांतील चांदणे' जैसी कथा में परिलक्षित होती है। गाडगील ने व्यंग्य और विनोद की मुद्रा लेकर भी सफलतापूर्वक कहानियाँ लिखी हैं। गाडगील ने अपनी कथाओं में अनेक साहसिक प्रयोग किए हैं—कथा के चौखटे को तोड़ फोड़ दिया है, जीवन और मनुष्य की असंगतियों को आमने सामने रखकर मनुष्य की बेचारगी का मजाक भी उड़ाया है। कहीं चेतना प्रवाह का प्रयोग किया है तो कहीं अति यथार्थवादी शैली का भी प्रयोग किया है। इधर ६०-६२ के बाद गाडगील रुके हुए से प्रतीत होते हैं। क्वचित् प्रसिद्ध होनेवाली आपकी कथा ताजेपन का आभास नहीं देती। गाडगील और गोखले की कथा में महत्वपूर्ण अंतर यह है कि गोखले कथा के लिये अपवादात्मक स्थितियों का चित्रण करते हैं जो रोमांटिक प्रवृत्ति का परिणाम है जब कि गाडगील यथास्थिति से कहानियों के लिये सहज मसाला जुटाते हैं—कभी सामान्य स्थितियों की एक छोर तक ले जाकर असामान्य बना देते हैं। गोखले की भाँति गाडगील भी एक बहुत बड़ी मंजिल तय करने के बाद रुक गए। इसका संभवत: एक कारण यह भी हो सकता है कि ठीक गोखले का विपरीत दिशा में जाकर वे सिनिसिज्म के शिकार हो गए। सिनिसिज्म एक सीमा तक अच्छी रचनाओं का कच्चा माल हो सकता है परंतु स्थायी रूप में सिनिसिज्म लेखक को मानवीय जीवन के प्रति उदासीन और परिणामत: अनुभव विश्व के प्रति उदासीन बना देता है। पु० भा० भावे रग-रग में जोश और आवेग अनुभव करनेवाले कथाकार हैं। उनकी कथा भावों और स्थितियों के उत्कट आवेग की कथा है—प्रांजल, प्रवाही और गतिमान्। प्रेम और वासना के कतिपय वैविध्यपूर्ण रूप भावे ने बिना संकोच और दुराव छिपाव के प्रस्तुत किए हैं। ढोंग, दंभ और झूठ पर मर्मांतक प्रहार करते समय वे निर्भय हो जाते हैं। वे प्रचलित चारित्र्य विषयक संकल्पनाओं की चीरफाड़ करते हैं। भावे के मन में भारतीय समाज और संस्कृति के प्रति गहन आत्मीयता है और बहुत बार उनके आवेश में भड़कीलापन भी आ जाता है। धीरे धीरे भावे की कथा में हिंदू संस्कृति का आग्रह और अभिमान अधिक जाज्वल्य रूप में प्रकट होने लगा और उनकी कथालेखन की क्षमता भी क्षीण पड़ती गई।

नागर कथा के इन तीन शीर्षस्थ कथाकारों के साथ लगभग उसी समय ग्रामीण कथा या आंचलिक कथासाहित्य में नई चेतना उत्पन्न करनेवाले व्यंकटेश माडगुलकर का महत्वपूर्ण स्थान रेखांकित करना होगा। मराठी में आंचलिक कथा १९५५ के आसपास और उसके बाद पूरी उभार पर रही और उसको अपना स्वतंत्र वैशिष्ट्ययुक्त तथा खास स्थान दिला देने में माडगुलकर की कथा ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। माडगुलकर के पूर्ववर्ती कथाकार ग्रामीण जीवन में भूले भटके कभी जाते भी थे तो अपने नागर मन और संस्कारों को लेकर ही जाते थे, जैसे पिकनिक के लिये जा रहे हों। ग्राम्य जीवन के प्रति अधिक से अधिक सहानुभूति, करुणा या दया जगाना ही इनका उद्देश्य रहता था। इसके विपरीत माडगुलकर ने गाँव को निकट से देखा ही नहीं था, ग्रामीण जनता के सुखदु:खों को अत्यंत आत्मीयता के साथ परखा भी था। गाँव के कतिपय व्यक्तियों को चित्रांकित कर

माडगुलकर ने अमर बनाया। आपने ग्रामीण जनता के जीवन के यथार्थ को—अज्ञान, दरिद्रता, जीवनसंघर्ष को कथा का विषय बनाया है। ग्रामीण जनता के चित्रण में कभी गंभीरता या कभी हल्के फुल्के मजाकिए ढंग का प्रयोग किया है। एक बहुत अच्छे निरीक्षक होने के कारण उनकी दृष्टि छोटे बड़े तफसीलों का कलात्मक उपयोग करना जानती है। वर्णन, विवरण देते समय आप पर्याप्त तटस्थता से काम लेते हैं। माडगुलकर की समग्र कथा पर दृष्टि डालने से यह प्रतीत होता है कि आप बाह्य यथार्थ के कलात्मक प्रस्तुतीकरण में जितना अधिक रमते हैं उतना आंतरिकता को व्यक्त करने में नहीं। ऐसा भी लगता है कि माडगूलकर यथार्थ का चित्रण करते समय आंचलिक जीवन के विविध वर्गीय व्यक्तियों के अंतःसंबंधों की ओर ध्यान नहीं देते। लगता है, व्यापक सामाजिक आकलन से परिस्थितियों और व्यक्तियों के परस्पर घातप्रतिघातों का जो महत्वपूर्ण पहलू साहित्यकार के लेखन में प्रविष्ट होना चाहिए वह माडगुलकर के लेखन में नहीं प्रविष्ट हुआ है। इसमें संदेह नहीं कि एक एक कथा में माडगुलकर को अद्भुत सफलता मिली है परंतु समूचे कथाविश्व क अध्ययन से माडगुलकर की समझ की व्यापकता के संबंध में जो आश्वस्ति होनी चाहिए, वह नहीं होती। माडगुलकर की कथा एक प्रकार से उनके अतीत जीवन का कलात्मक तटस्थ योग है। यही कारण है कि उनकी कथा में तीखापन नहीं है, आग नहीं है, उत्तेजना नहीं है—व्यक्ति और समाज के संबंधों का सही आकलन क्षीण है।

१९४५-६० के बीच के इन प्रमुख रचनाकारों की प्रतिभा के संबंध में विवाद हो हा नहीं सकता। फिर भी इन कथाकारों ने जितनी नवचेतना कथा के स्वरूप के संबंध में उत्पन्न की उतना अनुभूति की व्यापकता की ओर ध्यान नहीं दिया। इनके सामने वैचित्र्यपूर्ण मन आते हैं, मांसल व्यक्ति आते हैं परंतु व्यक्तियों के बीच का परस्पर संबंधों का सामाजिक धरातल तथा इनके जटिल व्यवहारों के आधारभूत आर्थिक, सांस्कृतिक परिवेश का सही बोध ये कथाकार नहीं देते। गोखले अपने मानवतावाद के कारण, गाडगील सिनिसिज्म के कारण, भावे पुनरुज्जीवनवादी विचारधारा के प्रति समर्पित होने के कारण और माडगुलकर सामाजिक दृष्टि के सजग विकास में प्रयत्नशील न होने के कारण पुनरावृत्ति करने लगते हैं, रुक जाते हैं या जीवन के साथ प्रगतिशील चरण रखने में असमर्थ होने के कारण निस्तेज होते हैं। माडगुलकर की कथा ने एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी किया कि ग्राम्य जीवन के असंस्कृत, अशिक्षित, गँवार, अनाड़ी, व्यक्तियों का जीवन साहित्य के लिये एक उर्वरा और मूल्यवान् भूमि है, यह स्थापित किया। इसी रास्ते से अन्य आंचलिक कथाकार अपनी शक्तियों के साथ वेहिचक आने लगे।

१९५५ के आस पास मराठी कहानी के क्षेत्र में अनेक प्रतिभाएँ अपनी क्षमता दिखाने लगीं। वैसे कथा का क्षेत्र इतना वैविध्यपूर्ण होता है कि कथाकारों की प्रवृत्तियों के सीमित दायरे में रखकर उनका मूल्यांकन करना और खासकर सामान्य ऐतिहासिक रूप में उनके कृतित्व को प्रस्तुत करना एक तरह से सरलीकरण करना है परंतु सुविधा की दृष्टि से हमें कुछ महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों के आधार पर कथालेखकों का विभाजन करना होगा।

मराठी की आंचलिक कथा

वैसे मराठी आंचलिक कथा के प्रति झुकाव हरिनारायण आपटे के समय से ही था। परंतु इस प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला १९२० के बाद—संभवतः गांधी जी की 'देहात को आर' घोषणा के कारण। फिर भी माडगुलकर के आगमन तक की मराठी आंचलिक कथा रोमांटिक दृष्टिकोण का ही परिणाम है। ठोकल, दिघे, इत्यादि मराठी लेखकों ने ग्राम्य जीवन के संबंध में कथाएँ

लिखी थीं परंतु उसको आंचलिकता का रूप मिला व्यंकटेश माडगुलकर के कारण। इन लेखकों में भाटे की ग्राम्य कथा अपने यथार्थ के प्रति समर्पण के कारण वैशिष्ट्यवादी लगती है। एक प्रकार से यह अच्छा ही रहा कि माडगुलकर पर उच्च शिक्षा और साहित्यिक परंपरा के संस्कार विशेष नहीं थे। इसके कारण मराठी की रोमांटिक और कुतक् परंपरा के शिकार होने से वे बचे। माडगुलकर की कथा में ग्राम्य जीवन का जो गहन निरीक्षण था, कथ्य को उसका खास व्यक्तित्व देने की जो भाषिक सामर्थ्य थी उसके कारण एक महत्वपूर्ण बात यह हुई कि महज रुचि-वैचित्र्य के रूप में अनजाने क्षेत्र में जाने का सिलसिला सदा के लिये टूट गया। ग्राम्य जीवन का उपयोग पलायन या रंजन के लिये करना असंभव नहीं तो मुश्किल अवश्य है, यह प्रमाणित हुआ। अब ग्राम्य कथा या आंचलिक कथा लिखना महज कल्पनाशक्ति या प्रतिभा का ही काम नहीं है बल्कि उसके लिये बाह्य और आंतरिक यथार्थ का भोक्ता होना आवश्यक शर्त है, यह सदा के लिये मान लिया गया। मराठी के आलोचना क्षेत्र में मर्ढेकर ने अनुभूति की ईमानदारी के संबंध में जो तलस्पर्शी विवेचन, विश्लेषण किया था उसका भी प्रभाव यह पड़ा कि साहित्यकार अपने भोगे हुए यथार्थ का क्षेत्र छोड़कर अन्यत्र जाने का साहस करने में संकोच करने लगे। इससे कुछ शक्ति भी उत्पन्न हुई और सीमाएँ भी बन गईं।

ग्राम्य जीवन की कथा को समृद्ध करनेवाले दूसरे महत्वपूर्ण कथाकार हैं द० मा० मिरासदार। मिरासदार की दृष्टि माडगुलकर से बहुत भिन्न है। मिरासदार ने ग्रामीण जीवन को अत्यंत बारीकी से देखा है, ग्रामीण लोगों के मनोविश्व को भलीभाँति परखा है। परंतु उनकी समस्याओं का ठीक तरह से आकलन नहीं किया है। मिरासदार ग्राम्य जीवन का चित्रण करते समय विनोदी या हास्य और व्यंग्य की मुद्रा अपनाते हैं। उनके कथाविषयों को देखने पर प्रतीत होता है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में ग्राम्य जीवन में जो परिवर्तन हो रहा है उसकी ओर उनकी दृष्टि है परंतु इस परिवर्तन को उन्होंने अपनी विनोद-प्रचुर घटनाबहुल कथा लिखने के लिये साधन के रूप में इस्तेमाल किया है। ग्राम्य जीवन की असंगतियों, विचित्रताओं का चित्रण उन्होंने किया है। उनके पात्रों में प्राय: दो प्रकार के व्यक्ति हैं—गाँवों के भोले, निरीह, सामान्य लोग और कुछ धूर्त, अल्पशिक्षित परंतु विलक्षण बुद्धिमान भी। मिरासदार का ध्यान जीवन के यथातथ्य दर्शन के प्रति कम होता है, विनोद, व्यंग्य, उपरोध इत्यादि से पाठकों के मुख पर हँसी की तरल रेखा उत्पन्न करने या कभी उनको ठहाके लगाकर हंसने को मजबूर बनाने की ओर उनका ध्यान अधिक होता है। मिरासदार नाट्यपूर्ण, विचित्र प्रसंगों को चुनते हैं और कथा के अंत तक उनकी नाटकीयता और तीव्रता को बढ़ाते जाते हैं। रंजकता और विनोद पर मिरासदार इतना ध्यान केंद्रित करते हैं कि ग्रामीण जीवन की दरिद्रता, भूख और पीड़ा की ओर उनकी दृष्टि क्वचित् ही कभी पड़ती है परंतु मिरासदार की कथा के प्रसंग और प्रयुक्त भाषा उनके ग्राम्य जीवन की ठोस पहचान का साक्ष्य देती है।

माडगुलकर के बाद मिरासदार के साथ साथ आंचलिक कथा वाङ्मय को समृद्ध करनेवाले महत्वपूर्ण कथाकार हैं शंकर पाटील। शंकर पाटील की दृष्टि मिरासदार के बिलकुल विपरीत है। वे जीवन की ओर बहुत गंभीर दृष्टि से देखते हैं। शंकर पाटील ने ग्राम्य स्त्री पुरुषों की सच्ची मानसिकता का, उनकी व्यथाओं और वेदनाओं का, उनके संस्कारों का जितना प्रमाणिक और व्यापक रूप में चित्रण किया है उतना शायद ही किसी ने

किया होगा। गाँव के पारिवारिक चित्र जितने जीवंत रूप में पाटील की कथा में मूर्त होते हैं उतने शायद किसी भी कथाकार के लेखन में नहीं होते होंगे। पाटील ने भीषण दरिद्रता के बीच भी वात्सल्य, पत्नी धर्म, मानवीय सहज सहानुभूति, धर्म के प्रति आस्था, परंपराओं को जीवित रखने की प्रचंड तड़फड़ाहट, अपार करुणा इत्यादि का अत्यंत सशक्त चित्रण किया है। यह चित्रण किसी आदर्शवादी या मानवतावादी जीवनदृष्टि को अपनाकर आरोपित रूप में नहीं हुआ है बल्कि ग्राम्य जीवन के साक्षात्कार के फलस्वरूप उभरा है। वैसे कुछ कथाओं में शंकर पाटील ग्रामीण जीवन की असंगतियों और विरोधाभासों को रेखांकित करते हुए अपनी विशुद्ध विनोद दृष्टि का परिचय भी देते हैं। परंतु उनका कथाकार अधिक रमता है ग्रामीणों के मन को व्यक्त करने में। पाटील की विशेषता यह है कि ग्रामीण जीवन के भाव-जगत् का चित्रण करते समय उसके भीषण और भयावह यथार्थ के संदर्भ को वे नहीं भूलते। बल्कि आज महाराष्ट्र के ग्राम्य जीवन की सच्चाई के सारे पक्ष और संदर्भ सही रूपों में पाटील की कथा में ही अभिव्यंजित हैं। शंकर पाटील का वैशिष्ट्य यह है कि भाषा का उपयोग करते समय भी वे अपनी संतुलित कलादृष्टि का परिचय देते हैं। ग्राम्य पात्रों की भाषा अपनी खास है परंतु उनकी मनःस्थितियों का बोध पाटील अपनी भाषा से कराते हैं। उनकी कथा में न परिवेश की अतिरंजना मिलेगी न वेदना की। भड़कीलापन तो कहीं भी नहीं है। अनुभव के संप्रेषण के लिये भावपरक कलात्मक तटस्थता उनमें सदैव परिलक्षित होती है।

शंकर पाटील की कथा के बाद आंचलिक कथा को नए मोड़ तक ले जाने का अतिशय जटिल परंतु महत्वपूर्ण कार्य किया है आनंद यादव ने। अन्य कथाकारों से आनंद यादव का वैशिष्ट्य यह है कि ग्रामीण व्यक्तियों की मानसिकता को वे उनकी भाषा, उनके वाक्यप्रयोग और उनकी संवेदना के स्तर का आभास अबाधित रखते हुए व्यक्त करते हैं। अब तक के कथाकारों को परिवेश की स्थूलता को मानसिकता के नेपथ्य के रूप में स्थान देना पड़ा था। आनंद यादव ने ग्राम्य कथा के विकास की नई दिशा पहचानकर लेखनकार्य किया। ग्रामीण जनता की व्यथा, वेदना, उनके शोकपूर्ण अनुभव आनंद यादव का अपना खास क्षेत्र है। ग्राम्य जीवन के ट्रैजिक अनुभवों को पर्याप्त गहराई के साथ यादव व्यक्त करते हैं। अपने पात्रों के मन में प्रवेश कर उनकी आंतरिकता के साथ तन्मयतापूर्ण समाधि स्थिति में वे अंत तक रहते हैं। आनंद यादव की कथा में माडगुलकर का सूक्ष्म और वस्तुन्मुखी निरीक्षण है (परंतु उनके स्थूल रूप या तफसीलों की आवश्यकता उन्हें नहीं पड़ती)। शंकर पाटील की गंभीर करुणार्द्र जीवनदृष्टि है और कथा-विशेष की केंद्रीय अनुभूति के साथ प्रारंभ से अंत तक लयात्मक स्थिति में रहने की कविप्रकृति भी है। जाते जाते यह भी कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि यादव एक अच्छे कवि भी हैं जिसका उनकी कथा के सौष्ठव में उन्हें अच्छा लाभ हुआ है।

मराठी ग्रामीण कथा को म० भा० भोंसले, ग० दि० माडगुलकर, सरोजिनी बाबर अण्णाभाऊ साठे इत्यादि किंचित् पुरानी पीढ़ी के कथाकारों ने तथा शंकर राव, खराल, बाबा पाटील, नामदेव वटकर, हमीद दलवाई, चारुता सागर, सखा कलाल, रा० रं० बोराडे इत्यादि आज की पीढ़ी के कलाकारों ने समृद्ध किया है। रा० रं० बोराडे ने जीवन में ठोकरें खानेवाली, रेंगने, फिसलने-वाली, दुःख का बोझ वहन करनेवाली ग्रामीण जनता की व्यथा का विश्लेषण करने में एक सीमा तक सफलता पाई है।

यद्यपि यह मराठी ग्रामीण कथा अत्यंत समृद्ध है, फिर भी कतिपय ऐसे प्रश्न हैं जो अस्पृष्ट रह गए हैं। गाँव जीवन की विविध जातियाँ और उनके अंतःसंबंध, नए विचारों के आगमन से होनेवाले वैचारिक परिवर्तन के सूक्ष्म आंदोलन, सामंतशाही या जमींदारी के भोथरे होते जानेवाले नाखून और तज्जन्य परिस्थितियाँ, विवाह, जन्म, मृत्यु इत्यादि के अवसर पर होनेवाले कर्मकांड, साहुकारों की क्रमशः अंत होती जाने की स्थिति, शहरों का गाँवों पर होनेवाला विविध प्रकार का प्रभाव इत्यादि ऐसे संदर्भ हैं जिनको कथा का विषय बनाना आवश्यक है। मराठी ग्राम्य जीवन की कथा पर समग्र दृष्टि डालने से यह प्रतीत होता है कि मराठी कथाकार व्यक्ति पर जितना ध्यान केंद्रित करते हैं उतना सामूहिक जीवन पर नहीं।

क्षेत्रीय जीवन के यथार्थ चित्र

साठोत्तरी कथालेखकों में उद्धव शेलके एक प्रमुख कथालेखक हैं जो वैदर्भीय सामान्य जनता के सुख दुःखों के भाष्यकार हैं। उनके पास न कोई विशिष्ट जीवनदृष्टि या राजनीतिक, सामाजिक मतप्रणाली का आग्रह है, न कला के संबंध में विशिष्ट पूर्वनिश्चित धारणा। उनके पास एक जबरदस्त मानवीय सहानुभूति है और इनकी रचनादृष्टि प्रायः दलितों, पीड़ितों और उपेक्षितों की व्यथाओं वेदनाओं को ढूँढ़ती रहती है। उनके पात्रों पर न शिक्षा के संस्कार हैं, न नागर जीवन की आधुनिकता के। इनकी जिंदगियाँ महज शक्ति के आश्रय से फिसलती, फटकार खाती, गिरती पड़ती चल रही हैं। वस्त्र, आवास, अन्न, मामूलीसा वैवाहिक पारिवारिक सुख इत्यादि निम्नतर अपेक्षाओं को लेकर भी यातनामय जीवन व्यतीत करनेवाले मामूली लोगों का लघु मानव उद्धव शेल्के के रचनासंसार के पात्र हैं। इन मामूली लोगों को अपने जीवन-संघर्ष के असली रूप की पहचान नहीं है, चारों ओर की बदलती दुनिया या व्यवस्था के प्रति इनमें कोई सजग चेतना नहीं है, अपनी कथाओं और परेशानियों के कारणों का ज्ञान इनको नहीं है, राजनीतिक हलचलों से इनका संबंध केवल चुनाव के दिन ही होता है, समाजवाद, क्रांति, वैयक्तिक स्वातंत्र्य, नागरिक अधिकार और कर्तव्य इत्यादि तमाम बातें इनके लिये अज्ञेय हैं। इन मामूली लोगों के क्षुद्र जीवन की नाटकीयता को टोहना, सरल रोजमर्रा के जीवनप्रसंगों को कल्पना का हलका सा स्पर्श देकर कथा को जीवंत रूप देना, कृत्रिमता, भड़कीलापन और कृतक् नाट्यात्मकता से बचते हुए कथा के माध्यम से यथार्थ के गहरे मान से पाठकों को एक सीमा तक द्रवित करना उतना सहज और सरल कार्य नहीं है। इसके लिये बड़ी कल्पनाशक्ति आवश्यक है। परंतु इसके बाद कथा के रचाव या बुनावट के लिये शेल्के कल्पना का सहारा नहीं लेते। इनकी कहानियाँ बिना किसी कृत्रिम उपाय के प्रारंभ होती हैं और जिंदगी का एक पहलू सामने रखकर बहुत बार अनपेक्षित या अनिश्चित रूप में खतम होती है। शेल्के ने मामूली लोगों के सैकड़ों रूप पाठकों के सामने रखे हैं और इनमें अनेक पेशों के, अनेक स्तरों के लोग हैं। ये प्रायः ईमानदार, समझौतापरस्त, असीम कष्टों को बिना शिकायत स्वीकार करनेवाले लोग हैं क्योंकि तमाम भौतिक दुःखों और अभावों के बीच इनकी जिजीविषा बड़ी प्रबल है। इनमें एक दूसरे के प्रति अकृत्रिम, सहज परंतु अनुत्कटस्नेह है और वात्सल्य, पारिवारिक स्नेह, पति पत्नी के बीच कर्तव्य और वासना के ताने बाने से बुने संबंध इत्यादि पारिवारिक परिवेश में ही इनके पात्र क्रियाशील हैं। ये किंचित् असंतुष्ट भी हैं परंतु इतने नहीं कि जीवन को खतम करने पर तुल जायँ। इतने जागरूक भी नहीं कि विद्रोह और क्रांति की बात को

शेष पृष्ठ ३१ पर

'आँसू' और 'उदात्त भावना'

श्री गौरीशंकर राय

अनादिकाल से मानव जीवन समय के अनंत प्रवाह में बहुत कुछ देखता और सुनता रहा है। मानव का जीवन जिज्ञासा की वृत्तियों से परिपूर्ण है। शैशव की चपलता से प्रारंभ कर यौवन की खुमारी को लिए हुए वार्धक्य की गंभीरता तक मानव अपनी सारी स्मृतियों में मूर्त चित्रों की सजावट करता रहता है। उन मूर्त रूपों में मानव अपनी निर्माणवृत्ति का भी प्रयोग करता है। परिणामस्वरूप अपनी विधायिनी कल्पना की अमर तूलिका के माध्यम से उन चित्रों में गहरे रंग भरकर उन्हें कालातीत बना देने की चेष्टा करता है। कल्पना कला को रूप प्रदान करती है और इससे उसमें चार चाँद लग जाता है। अनुभूतिरहित कल्पना का कोई अर्थ नहीं होता है। एक अंग्रेजी लेखक ने कहा है कि उचित और सार्थक प्रयोग के लिये हम कल्पना के पंखों को बाँध देते हैं; अगर ऐसा न करें तो वह हमें दूसरी ओर ले जा सकती है। कल्पना के निर्देशन के लिये अनुभूति का सहयोग अपेक्षित है। सहृदय जीवन-धारा अनेक गहन अनुभूतियों की रंगीनी से भरी चित्रशाला का रूप ग्रहण कर लेती है। ये स्वच्छंद अनुभूतियाँ जीवन के रास्ते में लहरों की क्षणिकता का आभास भी दे जाती हैं। लेकिन जिन लहरों के माथे पर सूर्य और निर्मल चंद्र की किरणों की छाया पड़ जाती है वही किरणें उषा रानी का रूप पकड़कर अरुण कपोलों की सुंदरता लिए जलविहार करने के लिये ललक पड़ती हैं और उस ज्योत्स्ना रानी के रुपहले आवरणों में कोई संचित स्मृति लीन हो जाती है। ठीक इसी के समानांतर जिस क्षण किसी सरल जीवन की अनुभूति किसी की मधुर स्मृति से झंकृत हो उठती है और किसी के ओसकण स्वरूप आँसू की बूंद उस स्मृति पर छलक जाती है तो वही अनुभूति जीवन संगिनी कला का आवरण पहनकर प्रकृति प्रांगण में नर्तन करने को विवश हो उठती है। इस प्रकार की कला रागरंजित होकर आह्लादित करने में सक्षम होती है। इसी तरह की अनुभूति की स्मृति 'आँसू' काव्य का मूल रूप है।

नव्य आलोचकों ने 'आँसू' को आधुनिक हिंदी साहित्य का सर्वोत्कृष्ट 'गीतिकाव्य' कहा है। आँसू की व्यंजना में कवि प्रसाद का हृदय छिप नहीं सका है। 'आँसू' के प्रथम संस्करण का प्रकाशन १९२५ ई० में चिरगांव, झाँसी के 'साहित्य सदन' से हुआ। उक्त संस्करण में कवि की वेदना से अभिभूत प्रणयलीला ही टपकती है लेकिन बाद के परिवर्धित एवं संशोधित संस्करण में कवि की उस भावना पर एक परदा पड़ गया। आँसू का यही रूप ग्राह्य है। यद्यपि यह 'गीतिकाव्य' करुणाश्रित है फिर भी उसका अंत विषाद में नहीं होता। आँसू में कवि ने निराशा में आशा और मृत्यु में जीवन का संदेश दिया है। प्रसाद का जीवन स्वयं ही अपनी कहानी कहने को विवश है। यह तो चिरसत्य है कि मानव का दुःख असीम है, उसपर किसी का वश नहीं होता। यदि उस वेदना को भाषा का रूप न दिया जाय तो वह आँसू बन समाज के पर्दे पर लुढ़क पड़ती है। प्रायः यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि अपने दुःख

को कह देने से वह कुछ हल्का हो जाता है। आँसू के द्वारा स्वच्छ होकर दिल भी व्यवस्थित हो जाता है। 'छायावाद' 'आत्माभिव्यंजन' का काव्य है और आँसू स्वच्छंदवादी ढंग से उसी आत्माभिव्यंजन की गाथा है। प्रसाद ने अपने ग्रंथ के द्वारा शुष्क उपयोगितावाद अथवा असत्य भावुकता के विरुद्ध सत्य संवेदना पर आश्रित का उदाहरण प्रस्तुत कर आत्मव्यंजना का आह्वान किया है। आचार्य वाजपेयी ने कहा है "आँसू कवि के जीवन की वास्तविक प्रयोगशाला का आविष्कार है। 'आँसू' में कवि निःसंकोच भाव से विलास के जीवन का वैभव दिखाता, फिर उसके अभाव में आँसू बहाता है और अंत में जीवन से समझौता करता है। विलास में जो मद, जो विराट् आकर्षण है, उसे कवि उतने ही विराट् रूपकों और उपमानों से प्रकट करता है। उसके अभाव में जो वेदना है, वही आँसू बनकर निकली है। इसे आप कवि का आत्मस्वीकारमान सकते हैं जिससे बढ़कर काव्योपयोगी वस्तु दूसरी है ही नहीं।"[१]

सचमुच ही आँसू की व्यंजना महत्वपूर्ण है। मानव सृष्टि के उषाकाल से ही आँसू बह रहा है और आज भी यह क्रिया चालू है, पर मुझे तो दुःख इस बात का है कि आधुनिक युग की मशीनीकरण की सभ्यता में पला मानव इसे भौतिक वस्तु समझता है। लेकिन संसार में कुछ ऐसे सहृदय व्यक्ति भी हैं जिन्होंने इनके धर्म और महत्व को समझा है। आदिकवि वाल्मीकि की काव्यकृति क्रौंच-वध-जन्य वेदना से ही आविर्भूत हुई है। भवभूति का 'उत्तररामचरितम्' भगवान् राम की करुणा का ही सुपरिणाम है। आधुनिक युग के सुकुमार कवि पंत ने इसे पुनः मुखर किया है:—

---

१. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी : जयशंकर प्रसाद, पृ० ५८।

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आहों से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान।

हृदयगत स्वच्छंद अनुभूति का प्रसारण ही आँसू के कवि का लक्ष्य है। डा० रवींद्र भ्रमर ने लिखा है "छायावादी काव्य में वेदना की जैसी अनुभूति और अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है वह उदात्त, धीर गंभीर तथा मर्मस्पर्शिनी है।[२] छायावादी युग के श्रेष्ठ विरहकाव्य 'आँसू' का आरंभ वेदना की भूमिका से और अंत समन्वय से हुआ है।

काव्यशास्त्र में उदात्त की धारणा स्फुट रूप में व्यक्त हुई है। लांजाइनस ने सर्वप्रथम 'उदात्त तत्व' को काव्यशास्त्रीय विश्लेषण का विषय बनाया। उनकी मान्यता है "औदात्य महान् आत्मा की प्रतिध्वनि है[३]।" कविता या साहित्य जहाँ अपने संप्रेषण में पाठक और सहृदय को सामान्य भूमिका से विशिष्ट भूमिका में ले जाता है वहीं इस विशिष्ट स्थिति का उद्भव होता है। इस प्रकार औदात्य एक रसातीत स्थिति है। इस अलौकिक भावभूमि को 'आँसू' में हम प्राप्त करते हैं। कवि प्रसाद अपने 'अहम्' अथवा 'इदम्' की भावना को छोड़कर उस रस दृष्टि तक जा पहुँचे हैं जहाँ आनंद ही आनंद है—

हे जन्म जन्म के जीवन
साथी संसृति के दुख में
पावन प्रभाव हो जावे
जागो आलस के सुख में
जगती का कलुष अपावन
तेरी विदग्धता पावे

२. रवींद्र भ्रमर, छायावाद।
३. अनुवादक डा० नगेंद्र, काव्य में उदात्त तत्व, पृ० ५५।

फिर निखर उठे निर्मलता
यह पाप पुण्य हो जावे।[४]

आँसू के रहस्य की यही सफलता है। प्रसाद के इन आँसुओं में जीवन की आकांक्षा निहित है। आँसूओं के ढुलकने पर कविहृदय को शांति की उपलब्धि होती है। इसीलिये आँसू का अंत शांत में हुआ है। प्रसाद ने लौकिक वियोग की तपनतीव्रानुभूति को अलौकिक भावभूमि पर अभिव्यक्त किया है। जीवनदर्शन की उदात्त भूमि पर प्रसाद की वैयक्तिक वेदना अखंड चेतना में विलीन होकर अलौकिक आनंद की वर्षा में समर्थ है।

आँसू में कवि प्रसाद के जीवन का सेवाग्राही प्रेम सुरक्षित है। कवि ने उस प्रेम को आत्मसात् और आत्ममय करके अपने चिंतन के रूप में प्रस्तुत किया है। आँसू यौवन के विलास का काव्य है पर उसमें यौवन का विध्वंस नहीं मिलता। उसमें यौवन की घड़ियों की स्मृति है लेकिन यौवन का काव्य न होकर जीवन का काव्य बन गया है। आँसू की यही सर्वप्रमुख उदात्तता है। 'आँसू' को एक 'गीतिकाव्य' कहा गया है। किसी भी गीत में संश्लिष्ट भावनाओं का सहज रूप में ही विस्फोट हुआ करता है। भावावेश की गहनता और तीव्रता के अभाव में 'गीत' का निर्माण संभव नहीं। जब विरही सहृदय कवि में रागात्मक अनुभूति की तीव्रता घनीभूत हो उठती है उस समय स्वयं ही वे तीव्र भाव गीत रूप में फूट पड़ते हैं। गीत में भावावेग की अंतर्ज्वाला विद्यमान रहती है। जिस भावावेग के तीव्र प्रवाह में उदात्तता को स्वीकार किया गया है[५] उसका

४- जयशंकर प्रसाद : आँसू, पृ० ७४, सोलहवाँ संस्करण।

५. अनुवाद डा० नगेंद्र, काव्य में उदात्ततत्व पृ० ५५।

पर्यवसान अपने आपमें ही गीतिकाव्य में हो जाता है अतः आँसू में भी औदात्य विद्यमान है। प्रसाद के 'आँसू' में हमें एक ही साथ ध्वन्यात्मकता लाक्षणिकता, उपचारवक्रता के साथ ही उदात्त बिंबों और प्रतीकों का विधान तथा स्वानुभूति की गहनता भी उपलब्ध होती है। जहाँ वेदना की असीमता व्यक्त की गई है वहाँ भी उदात्तता की सृष्टि हो जाती है।

'आँसू' के प्रारंभ में ही कवि किसी विराटता का अभाव पाता है और उसके वियोग में उसका हृदय हाहाकार कर उठता है। मिलन क्षणों की याद कवि के मानस पटल पर अंकित हो जाता है।

'इस करुणा कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती।[६]

'ज्यों ज्यों बूड़े श्याम रंग त्यों त्यों उज्वल होय' की कहावत चरितार्थ होती है। प्रेम का रंग इतना उदात्त हो जाता है कि करुण के विरह से व्यथित हो वह प्रेम छुटकारा चाहता है पर वह तो छूटने का जैसे नाम ही नहीं लेता और गहरा ही होता जाता है—

'अब छुटता नहीं छुड़ाये
रंग गया हृदय है ऐसा
आँसू से धुला निखरता
यह रंग अनोखा कैसा।[७]

आँसू की सारी पंक्तियाँ मधुर विरह स्मृतियों से स्निग्ध हैं। कवि को अतीत के सुख की ही याद सता रही है लेकिन हर वेदना की घड़ी में और विरह की पीड़ा के अनुभव में कवि को सांत्वना तथा आशा के ही और दिखाई पड़ते हैं। कवि

६. प्रसाद, आँसू, पृ० ७।
७. वही, पृ० ३७।

प्रसाद की स्मृतियाँ स्वप्न में भी विस्मृति बन जायँ तो जीवन निरुपाय होकर मृत्यु की गोद में चला जाय। कवि की वेदना का उदात्त रूप उस समय स्पष्ट होता है जब कवि हृदय की असीमित ज्वाला को जाग्रत रखने का हामी भरता है। ज्वाला तो उसके लिये शैली का रूप बन जाती है। कवि को पूर्ण रूप से विश्वास है कि उस प्रज्वलित शिखा की जाज्वल्यमान लपटों से मानवता की कलुषित भावनाएँ शांत होनेवाली हैं—

> जीवन सागर में पावन
> वड़वानल की ज्वाला सी
> यह सारा कलुष जलाकर
> तुम जली अनल ज्वाला सी।[८]

ज्वाला का शांत हो जाना आशा कलिका के खिलने का प्रमाण है। आँसू की लौकिकता की विशेषता अलौकिकता के परिवर्तन में ही निहित है। प्राचीन दार्शनिकों का तो यह जीवन-सिद्धांत ही है कि लौकिक परमाणुओं का परम चेतना तत्व से तादात्म्य और विलीनीकरण होना चाहिए। उसी सिद्धांत का पालन प्रसाद ने भी आँसू में करना चाहा है। कवि लौकिक प्रेम में अलौकिक विभूति का दर्शन करता है।

कवि अंत में अपनी अहंकार वृत्ति को त्याग कर उस रसभूमि की कल्पना करता है जिसके आनंद की कोई सीमा नहीं, 'जहाँ आनंद अखंड घना था' की ही बात चरितार्थ होती है। कवि का हृदय सांसारिकता से ऊपर उठने का उपक्रम करता है और वह ऊपर उठता भी है। उस अशांत एवं रहस्यात्मक प्रियतम के मिलन में उदात्ततापूर्ण रूप से विद्यमान है, क्योंकि रहस्य की औदात्य भरी सुखद अनुभूति भी उदात्त होती है। विस्मयजनक अनुभूतियाँ ही औदात्य

८. वही, पृ० ६१।

की प्राण मानी जाती हैं, लेकिन उदात्त तो सुंदरता का ही एक रूप भी माना गया है।[९] अतः प्रसाद जी के इस प्रणयनिवेदन को उदात्त माना जा सकता है। कवि ने अपने रोदन और वेदना के बीच पूर्ण रूप से जीवन के सत्य की रक्षा करने में सफलता प्राप्त की है। काव्य की अंतिम पंक्तियाँ इस बात की साक्षी हैं कि कवि वेदना भार से दबे हृदय को ऊपर उठाने को सचेष्ट है। वह निराशा के घोर अंधकार और व्यथा के घने कुहासे को भेदकर आशा की आलोकपूर्ण किरणों के आगमन का संदेश देता है—

मानव जीवन वेदी पर
परिणय है विरह मिलन का
सुख दुःख दोनों नाचेंगे,
है खेल आँख का मन का।[१०]

इस वेदना की आधार भूमि पर प्रतिष्ठित मंगलाशा के अतिरिक्त आँसू में भाषा और भावगत औदात्य की भी अधिकता है। कल्पना की कोमलता तो हरदम हृदय को स्पर्श करती रहती है। पूरा आँसू काव्य ही मृदुलता से भरा हुआ है। भाषा और भाव के औदात्य का प्रमाण—

शशि मुख पर घूँघट डाले,
अंचल में दीप छिपाये
जीवन की गोधूली में
कौतूहल से तुम आये
× × ×
मुख कमल समीप सजे थे
दो किसलय दल पुरइन के
जल विन्दु सदृश ठहरे अब
उन कानो में दुःख किनके।[११]

---

९. शिवबालक राय: काव्य में सौंदर्य और उदात्त तत्त्व, पृ० १४२।
१०. प्रसाद: आँसू, पृ० ४६।
११. वही, क्रमशः १६, २३।

जब यह सृष्टि ही परम सुंदर की सौंदर्यमयी अभिव्यक्त है तब प्रसाद जैसे सौंदर्य के पुजारी भला सौंदर्य का उदात्त रूप प्रस्तुत करने से कब चूकते। इस विस्तृत भूमा की पृष्ठभूमि पर चिरंतन एवं सौम्य सौंदर्य की अनुभूति हर मानव प्राणी को होती है। लेकिन कवि तो कवि ही है। सामान्य की अनुभूति से यदि उसकी अनुभूति में कोई तीव्रता नहीं, कोई प्रवाह नहीं, कोई आकर्षण नहीं तो फिर वह कवि, कवि नहीं कुछ और है। प्रसाद की बलवती चेतना और हृदयग्राही संवेदना का दर्शन उनकी सौंदर्यानुभूति में होता है। उदात्त प्रतीकविधानों के सहारे कवि जीवन की अंतर्निहित व्यथा को भाषा का रूप देता है—

> लिपटे सोते थे मन में
> सुख दुःख दोनों ही ऐसे
> चंद्रिका अँधेरी मिलती
> मालती कुंज में जैसे।[१२]

कवि प्रसाद ने अपने हृदयोद्गारों को अनुभूतिमय बनाकर उन्हें प्रकृति के अवयवों पर आरोपित किया है। वे मनोभाव अपने मूर्त रूप में चित्रात्मक होने के कारण सौंदर्य का आधार बन गए हैं। जिस सौंदर्य की देहली पर ही औदात्य का महल खड़ा किया जा सकता है। उदात्त और सुंदर का चोली दामन का साथ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आँसू विरह-काव्य है और उसमें गहनता, गोपनीयता, सूक्ष्मता

१२. प्रसाद : आँसू, पृ० ४८।

और व्यापकता का गुण विद्यमान है। वेदना ही आँसू का प्रमुख स्वर है। यह सर्वमान्य है कि जगत् में जितनी भी महान् साधनायें हैं, सब तीव्र वेदना की अनुभूति से सजग होती और ऊपर उठती हैं। जिस सहृदय की विचारधारा जितनी ही विशाल है जगत की उतनी ही वेदना-व्यथा का भार वह समाहित कर सकती है। वेदना का महत्व इसी बात में है कि वह स्वयं जलकर जीवन और जगत् को आलोक दे। यहाँ हमें लाँजाइनस की 'औदात्य महान् आत्मा की प्रतिध्वनि है' की स्मृति हो जाती है। महान् साधकों की साधनायें विशाल हृदय की ही परिणति हैं। इसी बात को लांजाइनस भी स्वीकार करता है। प्रसाद ने जिस विशाल सहृदय वेदना से आँसू का निर्माण किया है, वह सचमुच ही उनकी प्रतिभा का परिचायक है। यहाँ कवि हृदय की ललक और लालसा का उद्दाम वेग जिस आत्मप्रसार का परिचायक बना है, उसमें भाषा और भाव दोनों धरातलों पर औदात्य पाया जाता है। कवि की चेतना तरंगिणी विकल व्योम गंगा की तरह दोनों छोरों को छिटका कर मृदुल हिलोरें लेती है। वह पृथ्वी और आकाश के कुलावे मिलाना चाहती है, वह ससीम से असीम तक का सैर करती है और इसके परिणामस्वरूप हमारे समक्ष भाव का शब्दार्थमय ऐसा वितान उपस्थित होता है जो अपने आकर्षण, रमणीयता और भव्यता में अप्रतिम आह्लादकर सिद्ध होता है।

समीक्षा

समीक्षा के लिये पुस्तक की दो प्रतियाँ भेजना आवश्यक होगा। समीक्षा यथासंभव शीघ्र प्रकाशित की जायगी। यह आवश्यक नहीं होगा कि प्रत्येक प्राप्त पुस्तक की समीक्षा की जाय। प्रत्येक पुस्तक का प्राप्तिस्वीकार पत्रिका में किया जायगा।

सदा सुहागिन रूठ गई

लेखक–श्री सुधाकर पांडेय

समीक्षक–श्रीगंगाप्रसाद गुप्त बरसैया'

मनुष्य संसार का सर्वाधिक संवेदनशील प्राणी है, ज्ञान, विवेक, स्नेह, संमान, सुख-दुख की अनुभूतियों का एक पुंज ही मनुष्य का जीवन होता है। उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ, अपेक्षाएं, अनुभूतियाँ, निष्कर्ष, घटनाएँ सभी उसके जीवन को विविधता और सघनता प्रदान करती हैं। संवेदनशील कलाकार इसी में से अनेक घनीभूत पीड़ाओं हुलासों की अनुभूतियों को नितांत अपना बनाकर अपने शब्द चित्रों में साकार करता है। हर मनुष्य के जीवन की अपनी विशिष्टताएँ उपलब्धियाँ और अनुभूतियाँ होती हैं। वे सामान्य होकर सब की भले हो जाँय पर विशिष्ट होकर एक की होती हैं। इन्हीं विशिष्ट रूपों का लिखित रूप आत्मपरक निबंध होता है। इस कसौटी पर श्री सुधाकर पांडेय का 'सदा सुहागिन रूठ गई' निबंध संग्रह निश्चय ही उत्कृष्ट आत्मपरक निबंधों का संकलन है. जहाँ उनकी (नितांत उनकी) जीवन घटनाओं 'अनुभूतियों, स्मृतियों, संस्मरणों, प्रभावों, दुख-सुखों, प्रणय वियोगों, घात-प्रतिघातों, आकांक्षाओं, असफलताओं का मार्मिक, सहज, स्वाभाविक, एकांतिक-मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अंकित है।

निबंधों को पढ़ने से लगता है, जैसे लेखक अपने जीवन की अतीत घटनाओं की पुस्तक के पन्नों को एलबम की तरह उलट रहा है। एक-एक चित्र सामने आते जाते हैं और वह उनका परिचय देता, व्याख्या करता, उन्हें सजीव अनुभव कर उनकी दुख-सुखात्मक प्रतिक्रियाओं को पीता आगे बढ़ता जाता है। कहीं अतीत के चित्रों की मार्मिक वेदनाएँ हैं, कहीं भावी जीवन की कल्पनाओं के सुख दुखात्मक भाव हैं और कहीं वर्तमान का विश्लेषण, आकलन है, पर नितांत आत्मपरक ऐकांतिक। न वहाँ दर्शन का विश्लेषण है, न संसार की चिंता, न बड़ा बताने का प्रयत्न। अपनी प्रवृत्तियों को सांसारिक प्रवृत्तियों के साथ उतनी दूर तक जोड़ा गया है जितनी दूर तक आवश्यक था। प्रयास करके नहीं अनायास: अतः हम कह सकते हैं कि वे निबंध उनकी इच्छाओं, आकांक्षाओं, अतीत की घटनाओं, भविष्य की कल्पनाओं और जीवन उपलब्धियों, सफलताओं, असफलताओं का सहज स्वाभाविक सीधा आत्म कथात्मक स्वरूप अवश्य मिलेगा। लेखक का दावा है कि इन निबंधों को आत्मपरक निबंधों से अलग गिनने परखने की चेष्टा बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती। जो ऐसा करते हैं वे गलत समझते हैं, क्योंकि वे मानते हैं जीवन में कुछ घटनाएँ ऐसी घट जाती हैं जो अवकाश के क्षणों में सदैव बात करती रहती हैं, यहाँ तक कि नींद भी उन बातों में रम लेने लगती है और वह तन मन की सुधि तक

भूल जाती है। ये घटनाएँ मानव को इस बात के लिए बाध्य करतीं हैं कि वह उनके संबंध में चिंतन एवं मनन कर भविष्य के पथ सजग हो अपने चरण बढ़ाये। इतना ही नहीं, व्यक्ति के पास अपनी कामनाएँ भी होती हैं जिनके लिए वह लाख व्याधियों के बीच भी जीवित रहना चाहता है। कामनाओं के आकर्षण और विकर्षण के बीच मानव जीवन की स्वाँस लेता है और पथ पर घटित होने वाली घटनाओं से प्रेरणा ग्रहण करता है। ये आत्मव्यंजक निबंध भी तथ्यों से निर्मित हुए हैं और अपने भीतर गिर गिरकर उठनेवाले एक सामान्य व्यक्ति की कहानी समेटे हैं।[१] वे आगे लिखते हैं कि 'इन निबंधों को कुछ लोगों ने विचारविशेष के क्षेत्र का घोषित किया है। इस संबंध में मुझे केवल इतना ही कहना है कि सारे के सारे विचार किसी वर्गवादी के नहीं, जीवनोद्भूत अनुभूति और चिंतन के परिणाम हैं।'[२]

यदि हम लेखक के व्यक्तित्व एवं स्पष्टीकरण पर ही ध्यान दें तो प्रमुखतः महत्वपूर्ण तथ्यों को इस प्रकार रेखांकित कर सकते हैं—मानव जीवन की आकांक्षाएँ, कामनाएँ, उसकी सफलताएँ असफलताएँ, जीवनात्मक अनुभूतियाँ, विचार उपलब्धियाँ, भविष्य की कल्पनाएँ और अपेक्षाएँ तथा कुछ कर पाने का संकल्प जिसके द्वारा यह

'सदा सुहागिन रूठ गई' श्री सुधाकर पांडेय की युवाकाल की कृति है। हिंदी के व्यक्ति व्यंजक निबंधों में इसका विशेष स्थान है। अब-तक इस ग्रंथ के हुए अनेक संस्करण इसकी लोकप्रियता के प्रमाण हैं।

१. सुधाकर पांडेय—"सदा सुहागिन रूठ गई" (अपनी बात) पृ० ९–१०।

२. वही, (इस संस्करण के संबंध में) पृ० ११।

भविष्य में भी याद किया जाता रहे। संग्रह के अठारह निबंध इन्हीं विशिष्टताओं के बोलते स्वर कहे जा सकते हैं। ईश्वर के 'रहस्यमय वरदान' के बीच महत्वाकांक्षाओं की शर्त के प्रयास में आत्मज्ञान प्राप्त करनेवाला बालक प्रारंभ में ही चाहता है कि वह भी 'बड़ा व्यक्ति' बने जिसकी किताबें छपें, अखबारों में नाम छपे, लोग सम्मान करें और 'प्रसाद' की तरह लोग ऐसे भी कह सकें कि वह एक 'अच्छा कवि लेखक' था। एक बार महानता मिल जाने पर लोग अपने अपने ढंग से प्रशंसा करते हैं। इसी भावना के बल पर जब उसमें बोध भावना का जागरण होता है तो वह कलम के सहारे आगे बढ़ता है कि माता-पिता, बहन, पत्नी संसार में सब निकट हैं, पर 'कलम' सबसे निकटतम तत्व है जो लेखक की अपनी है—वह 'चेलेंज' करता हुआ देखता है कि आखिर कब तक कलम साथ देगी। संसार के बीच में अस्तित्व सभी समाप्त कर देते हैं, पर संसार के बीच अपने संसार की साधना और उसको वैशिष्ट्य प्रदान करना ही सफलता है। बिना कुछ किए बड़ा समझना बचकानापन ही कहा जावेगा। इन्हीं सबके सहारे जब वह अपने अतीत पर दृष्टिपात करता है तो अनेक मार्मिक घटनाएँ उसके दृष्टिपटल पर अंकित होने लगती हैं। उसे प्रथम पत्नी के वियोग की वेदना भूली ही नहीं, एक कागज का टुकड़ा भी उसे हरा कर देता है। व्यक्ति सपत्नी भाव से डरता है। वह अतीत की एक घटना के लिए दुखी होकर भी वर्तमान में भूले होने का भुलावा प्रदर्शित करता है क्योंकि उसे दीमक लगे पन्ने से सारे घर के चट जाने का भय रहता है किंतु वह इन अतीत स्मृतियों को सहेज कर अंकित ही कर रहा होता है कि तभी उसे लगता है कि जैसे उसकी अनुभूतियाँ, चिन्तन और विचार दृष्टियां

चुकने सी लगती प्रतीत होती हैं। उसे आभास हुआ कि सदा सुहागिन की तरह साथ रहने वाली "परिकर" कलम जैसे उससे रूठ गई और शब्द प्रवाह समाप्त हो गया। उसे दुख होता है कि आखिर उसने अभी दिया ही क्या है। जब कि देने की इच्छा है। उसे भय है कि किसी दिन अकाल मृत्यु के गाल में गए बालक की तरह उसका भी जीवन समाप्त हो जावेगा। तब लोग उसे किस आधार पर याद करेंगे। मनुष्य जानता है कि मृत्यु अवश्यंभावी है फिर भी उससे कतराता है, बचता है। लेखक को लगता है कि उसकी जीवन लीला समाप्त होने पर कुछ भी स्थायी देन नहीं बचेगी। तब जीवन की सार्थकता ही क्या हैं। उसे लगता है कि न तो उसने अपनी जिम्मेदारी पूरी की, न परिवार की। किसी की इच्छा ही पूरी नहीं की-अबोध बालक के खिलौने की इच्छा भी अधूरी रही। जबकि रोज संकल्प और कसमें ली। हरिश्चंद्र, युधिष्ठिर, ईसा, गाँधी, चाणक्य ने कसमों की पूर्ति के लिये जीवन दे दिया, सब कुछ किया, पर वह कुछ नहीं कर पाया। यह वेदना उसे निरंतर कचोटती है। वह अपने जीवन पर दृष्टि डालकर देखता है तो उसे लगता है कि उसे बड़ा होने का भ्रम हो गया है। वह अपने बड़प्पन में वह नहीं रहा जो वस्तुत: वह था या है। वह भीतर कुछ है, बाहर कुछ। भ्रम में उसका मन भी बदल गया है जो छोटा लगता है। बड़प्पन का बोझ उतरता ही नहीं। इसी के लिये वह अनेक प्रयोग—करता है। कि दूसरे प्रयोग कर रहे हैं—वह उनका परीक्षण करता है नवीनता के लिये, आत्मतुष्टि के लिये, प्रदर्शन के लिये, किंतु पारस्परिक संस्कारों एवं मर्यादा का संकोच-भय उसे उच्छृंखल नहीं होने देता। मनुष्य रोज-रोटी के राग का गंभीर रोगी है। वह प्रारंभ में संघर्ष के लिये तनकर खड़ा होता है किंतु विवशताएं उसे झुका देतीं हैं, तोड़ती हैं, वह पराजित होता

है। न चाहने पर भी बहुत कुछ करना पड़ता है जो जीते जी अपनी 'हत्या' की तरह है। आत्म सम्मानहीन जीवनमृत की तरह ही तो है जो ऐसे लेखकों को कई बार जीना पड़ता है। कलाकार अपनी साधना से प्रकाश देना चाहता है, पर यह व्यापारी संसार उसे खरीद कर उसके प्रकाश को मंद कर देता है क्योंकि संसार में जलने वालों की यही अकांक्षा रही है। इन ईर्ष्यालुओं और व्यापारीयों ने कलाकार की विवशता का सदा से लाभ उठाया है। उसे उपकृत करने का प्रदर्शन किया है, जिसकी वेदना और मार्मिकता कलाकार ही समझ सकता है, दूसरा नहीं। यहाँ सहयोग नहीं, खरीददारी अधिक है। परिणाम यह होता है कि मानव का इतिहास ही जय पराजय का इतिहास बन गया है। मनुष्य की रचना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और मनुष्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंश उसकी अभिव्यक्ति है। यह अभिव्यक्ति उसकी जय पराजय की अनुभूतियों, प्रतिक्रियाओं का लेख बद्ध इतिहास है। कलाकार की इच्छा होती है कि वह जीवन संघर्ष, आँधियों, तूफानों और लहरों में ऐसा दीप जलाए जो अमरता प्राप्त करे किंतु बहुत कम ऐसे भाग्यवान होते हैं क्योंकि संसार के स्वार्थी लोग इसमें अनेक बाधायें पहुँचाने की चेष्टा करते हैं। परिणामतः कितने ही 'दीप जलते बुझते' रहते हैं। इस संदर्भ में वह जीवन की अनेक घटनाओं पर दृष्टिपात करता है तो उसे अनुभव होता है कि संसार में इस प्रकार जलने वाले शत्रु कम नहीं हैं जो न केवल दूसरों में बल्कि घनिष्ठ मित्रों में भी द्वेष और भ्रम उत्पन्न कर देते हैं और वर्षों के अपनत्व में इतनी दूरी आ जाती है कि एक दूसरे का देखना भी स्वीकार नहीं करते। मनुष्य बहुत स्वार्थी होता है। 'पत्र जो भेज न सका' में यह वेदना बहुत स्पष्ट है। संसार खुशियाँ मनाए पर कलाकार जब अंतर की पीड़ाओं और अतीत की स्मृतियों से व्यथित होता है तो, वह कुछ भी नहीं

कर पाता। उसे लगता है कि 'दुनियाँ रंगीन' है पर उसका संसार सूना है। परिणामतः वह संसार से अपने को समेट कर अपनी सीमाओं में अपने को देखने की चेष्टा करता है। पारिवारिक जीवन बचपन, यौवन, परंपरा, संस्कार जो कुछ भी उसकी 'याद' में होता है वे स्मृतियाँ ही उसे उद्वेलित करती रहती हैं, कभी उसे बहन द्वारा लगाए गए 'कुंकुम' के साथ आशीर्वाद और शुभकामनाओं की याद आती है, कभी माता पिता, भाई-भाभी की 'बड़ा देखने' की कामना कल्पना की। तभी उसे लगता है कि वह बड़ा नहीं बन सका। किसी की आकांक्षाएं पूरी नहीं कर सका। वह दुख से अभिभूत होकर सोचता है कि उसने जीवन भर दूसरों से लिया है, पर इतना समर्थ नहीं हो सका कि बदले में कुछ दे सके। जब उसमें दे सकने की क्षमता आई तो देने लायक कुछ जुटा नहीं पाया। 'किसे क्या दूँ' यह वेदना उसे बराबर कचोटती रहती है, कोई मार्ग सूझता नहीं। परिवार को, संसार को, मित्रों को, किसी को भी नहीं। यहाँ आना मर जाना तो सभी करते हैं। अकेले मनुष्य आता है और अकेले चला जाता है। आने पर बालक रोता है पर लोग प्रसन्न होते हैं कि शायद कोई महत्वपूर्ण प्राणी आ गया। सब उसके 'महान्' होने की कल्पना करते हैं। मनुष्य कामना वासना से जीवन भर दंभित रहता है। वह अंत होता है जिससे मुक्ति संभव नहीं और एक दिन उसके जीवन का, बिना बड़ी उपलब्धि के, अंत हो जाता है और लोग उसे 'जाओ कल्पित साथी मन के' कहकर विदा दे देते हैं। किंतु इस प्रकार की कल्पना ही संवेदनशील

कलाकार को पीड़ित करती है। वह अपने जीवन का गुणा भाग करके देखता है कि उसकी प्राप्तियाँ उपलब्धियाँ क्या हैं, उसके जीवन की सार्थकता क्या है। उसे अतीत से संतोष नहीं होता। उसे लगता है कि उससे तो शेष सभी अच्छे, सुखी, संतुष्ट हैं। वह भविष्य की कल्पनाएँ करने लगता है। समस्या और उसके समाधानों के निकट पहुँचने की चेष्टा करता है। उसके भीतर असंतोष और वेदना की जलन और ताप तीव्र हो जाते हैं। आत्मपीड़ा दुखी बनाती है। ऐसे में कभी वह बचने के लिए नियति और भाग्य की बात करता है, कभी रहस्य न समझ पाने की किंकर्तव्यविमूढ़ता। कभी जीवन से घृणा होती है कभी प्रेम। और अंततः सजग रचनाकार दृढ़ संकल्प करता है कि 'अब लौं नसानी अब न नसैहौं'। समझदार विवेकशील कलाकार इसे पूरी करते हैं, दूसरे उसे रोज दुहराकर पुनः उसी में डूबते भुलाते हैं। यही इस संग्रह के लेखक पांडेय जी की स्थिति है; जिसमें न किसी को माध्यम बनाया गया न आड़ ली गई। सीधी अपनी आंतरिक बातों को सरलता, आत्मीयता और मार्मिकता से अंकित किया गया है।, इन अनुभूतियों को पाठक स्वयं समझ सकता है।

कई बार पाठक अनुभव करेगा कि लेखक अव्यवस्थित रूप से अलग अलग खंडों में आत्म-चरित प्रस्तुत कर रहा है, जीवन की डायरी के पन्ने पढ़े जा रहे हैं—प्रातःकाल ७ बजे, जब घर से निकल जाता हूँ तो व्यापार से लेकर सभा-संस्था और मित्रों से मिल मिलाकर रात बारह बजे घर लौटता हूँ। कभी अपनी माँ बहन के ममत्व का सविस्तार वर्णन, कभी पत्नी की साधुता, और विनम्रता का। रात में लौटकर जब तक मैं सो नहीं जाता, वह जागती हो रहती है। दिन भर काम सम्हालती है। सोने का पर्याप्त अवकाश तक गृहस्थी की झंझट में उसे नहीं, मिलता, क्यों कि बड़ा भारी

परिवार है मेरा और सबसे छोटी बहू है वह घर की।[1] लगता है। कि सारी बातें अपनी पत्नी के बारे में हैं किंतु सबसे अंत में रहस्य खुलता है कि उसकी सारी वेदना - शिकायत पत्नी के प्रति नहीं, बल्कि सदा साथ देने वाली 'पारकर' कलम के बारे में है। 'बड़प्पन के बोझ' में भी बहुत कुछ इसी प्रकार का है। उसमें आत्म चिंतन, विश्लेषण और अंतर्मंथन मार्मिक ढंग से हुआ है। इन निबंधों में अनेक अंश ऐसे हैं जहाँ लेखक ने जीवन की विविध अनुभूतियों के मार्मिक प्रसंग प्रस्तुत किए हैं। यथा 'उसका घर वही, वही कमरे, वही गद्दी, और वही नौकर पर मैं वह न रहा। क्यों? पूछता हूँ अपने मन से। पर मन वह नहीं जो उसका उत्तर दे पाए क्योंकि वह भी बड़ा बन गया है। समय के साथ यह चंचल और दुराग्रही बदल सा गया है।'[2]

इस प्रकार की आत्मव्यंजना, आत्मविश्लेषण, चिंतन-मंथन के प्रसंग तो प्रायः सभी निबंधों में हैं। कभी वे प्रसंग परिवार के साथ जुड़ते हैं, कभी अपनी वैयक्तिक घटनाओं के साथ, कभी परिवेश के साथ और कभी साहित्यकारों के साथ। प्रायः आत्मजीवन से बाहर ये निबंध जा नहीं पाये। इसीलिए उन्हें विशुद्ध आत्मपरक निबंध कहने में कोई हिचक हो नहीं सकती। "पत्र जो न भेज सका", मेरी हत्या, जो याद है, 'कुकुंम' क्या दूँ 'मेरी कसम' ईश्वर का वह रहस्य वरदान' आदि उसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं जहाँ कभी अतीत की स्मृतियाँ चल-फिर रही हैं, कहीं वर्तमान नाच रहा है, कहीं भावी कल्पनाएँ अपनी हरीतिमा लिए प्रस्तुत हैं। कभी लेखक को असंतोष और पीड़ा है, कभी कतराकर निकल जाने की भावना। पर छुटकारा मिल नहीं पाता। मनुष्य स्वभाव की तरह वह आज के प्रति असंतोष व्यक्त कर भावी जीवन के लिये कुछ कर गुजरने का संकल्प लेता प्रतीत होता है। ऐसे अवसरों पर कल्पनात्मकता प्रधान हो उठती है। अध्ययन, अनुभूति के साथ शैली की कुशलता और कल्पना की सक्षमता सबसे बड़ा कार्य करती हैं। 'मेरे मरने पर' और 'दीप जले दीप बुझे' में ऐसी कल्पनात्मकता देखी जा सकती है—'सोचता हूँ, तो हाँ, आज अगर मैं मर जाऊँ यहाँ, अकेले, तब लोगों को क्या होगा। माँ रोकर शांत हो जायेंगी क्योंकि उन्हें अपने जीवन में मेरे समान पाँच-छः व्यक्तियों को भी हँसते देखना है। बाबूजी को एक हलकी चोट लगेगी, फिर उनके ब्रह्मवाद के भीतर

---

१. 'दीमक लगा पन्ना' सुधाकर पांडेय।

२. 'बड़प्पन का बोझ-सुधाकर पांडेय।'

संभवत: मेरी याद भर शेष रह जाय और—पर कुछ नश्वर आदमी हैं जो मरना नहीं चाहते। वे अमर होना चाहते[1] हैं। अपने तो मरने के बाद भी अमर हो किसी से गाली और किसी से प्रशंसा नहीं सुनना चाहते···।[2] चिंता उलझन का जाल बुनती गई। मेरे दीप का क्या होगा, उसमें अमृत का तो स्नेह नहीं। अगर अमृत ही हो तो भी जिस धरती पर मेरा दीप जल रहा है वही जब विलीन हो सकती है तो मेरे दीप का क्या होगा[3]।

लेखक अतीत की घटनाओं का विश्लेषण कर वर्तमान के ताल-मेल के साथ भविष्य की दिशा निर्धारित करने की चेष्टा करता है—'दैनिक के पृष्ठों का पारायण करके पथ की भूलों को सुधार सकूँ और प्रभात को निमंत्रण देकर निद्रा के आंगन में शांति और मधुर स्वप्न से आँख मिचौनी कर सकूँ[3]। इसी भावना की पुष्टि उनके प्रत्येक निबंध करते हैं। अतीत-वर्तमान और भविष्य के तंतुओं से ही सारे निबंधों का जाल बुना गया है। कहीं वेदना की मार्मिकता से काम लिया गया है, कहीं व्यंग्य और विनोद के साथ। लेकिन उनका व्यंग्य-विनोद न ठठा कर हँसाता है, न कुरेदता है, बल्कि वह संबंधित पक्ष और पाठक को सतर्क करता है, जिसे हम चिमटना या चिकोटी लेना कह सकते हैं। व्यंग्य के संदर्भ में हम 'प्रयोग' जैसे निबंधों में प्राप्त कर सकते हैं—'साहित्य में छायावाद, रहस्यवाद, प्रयोगवाद के साथ ही एक समयोपयोगितावाद भी घुस आया है, जिसका प्रारंभ श्री मैथिलीशरण जी गुप्त से होता है। यह इस युग का सर्वाधिक सशक्तवाद है। इस वाद का

१. मेरे मरने पर—सुधाकर पांडेय, पृ० ५१।
२. दीप जले दीप बुझे—वही, पृ० ६७।
३. दीप जले दीप बुझे—सुधाकर पांडेय पृ० ६६

कड़ाही में झुलस कर हृदय काला पड़ गया था और मेरे कुछ मित्र एक नए वाद का उपदेश देने आए, एक दिन। बात ठीक ही है। पैसा न सही, कम से कम मिले। मैं इसी प्रकार परिवर्तित हो गया जिस प्रकार एक पुलिस को निंदा करने वाला अधोमुखी लालपगड़ी देखकर[1]। जो आनंद आवारागर्दी में, उलट फेर में है, उसकी तुलना केवल खिचड़ी खाते समय की गाली से की जा सकती है[2]।

इस प्रकार की विभिन्न विचार शृंखलाओं, वेदनाओं, अनुभूतियों के बीच लेखक के द्वन्द्व बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत हुए हैं। उनका मनोवैज्ञानिक आत्मविश्लेषण निश्चित ही पाठक को प्रभावित करता है और पाठक अपने लेखक के बारे में और अधिक जानने लिए जिज्ञासु हो उठता है। कई बार तो वे अपने प्रणय-प्रसंगों का भी संकेत कर देते हैं। जगह-जगह पर विचारों की पुष्टि एवं उसकी तीव्रता के लिये उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं का भी प्रयोग किया गया है। भाषा—शैली बड़ी सहज, स्वाभाविक एवं मार्मिक है। न उर्दू की चुलबुली है, न संस्कृत की गंभीरता, क्लिष्टता और न ही ग्रामीणता। बनारसी क्षेत्र के प्रभाव की शब्दावली एवं आत्म चिंतक व्यक्ति की सामान्य भाषा का प्रयोग अवश्य है।

निबंधों में अभिव्यक्ति एवं प्रस्तुण में भरपूर स्वच्छंदता का उपयोग किया गया है। विचारों की अभिव्यक्ति एवं शीर्षक के अनुसार विषय-विश्लेषण में तात्विकता तारतम्यता और क्रमिकता आवश्यक नहीं है, बात कहीं से प्रारंभ होकर लुप्त हो जाती है, लगता है उस विषय से कोई संबंध नहीं और अंत में पुनः पूर्व विषय का संकेत कर दिया जाता है। "सदा सुहागिन रूठगई", "दीमक लगा पन्ना", "मेरी कसम", "दुनिया के घर रंगीनी जो ठहरी" आदि प्रायः सभी निबंध इस विशिष्टता से युक्त हैं।

कई बार वे बीच-बीच में महत्वपूर्ण सूत्र वाक्य-अंकित करते चलते हैं, ये वाक्य जीवन नुभूतियों के केंद्र बिंदु, विचारों-धाराओं के संकेत, तथा जीवन-जगत के सार तथ्यों से संयुक्त हैं। वे सूत्र वाक्य उनके अध्ययन, चिंतन और सूक्ष्मदृष्टि के भी परिचायक हैं। ऐसे अर्थ गर्भित वाक्यों की योजना निबंधों के महत्वपूर्ण अंश माने जाते हैं। जैसे—अधिकार की मदिरा अनेक बार पी चुका हूँ। वह हृदय को ईख की सिट्ठी से अधिक न लगी।[1] किसी अधिकार का

१. प्रयोग—सुधाकर पांडेय—६९।
२. वही…७०।

१ से १० तक—सुधाकर पांडेय—सदा सुहागिन रूठ गई—पृ० (क्रमशः) २७, २७, २१, ४४, ६३, ८०, १३, १४१, २६, ११८।

बोझ लादने का मतलब होता है उसके हाथ पैर में बेड़ी डालना।[२] राम नाम की महिमा में मेरा विश्वास उन दिनों नहीं था, बाप नाम की महिमा में अवश्य था।[३] जीवन रहस्य का दूसरा नाम कस्तूरी भी है, मृगमद नहीं, मानवमद है।[४] अधूरे चित्रों के अलबम का नाम ही तो जीवन है।[५] "कला वही जो तन-मन-हृदय सभी को मुग्ध कर दे।[७] "वाणी का चाँटा हृदय पर छाप छोड़ जाता है।[८] "जीवन में व्याप्त लपटों को मैं हँसी की भट्ठी में बंद कर लेता हूँ।[९] इसी प्रकार कभी वे संबोधनात्मक प्रणाली का उपयोग करते हैं, कभी चित्रात्मक भाषा का। यथा मैंने देखा—"घूँघट काढ़े एक तरुणी, उसका चेहरा वस्त्र के पतले होने से छाया चित्र की भाँति झलक रहा था। बड़ी-बड़ी आँखें हरिणी की भाँति, पर चौकड़ी भरने की मुद्रा में नहीं, किसी आश्रमवासिनी की भाँति स्निग्ध और सरल, पतले अधर सौंदर्य की स्याही, टेढ़ी भवें तूलिका और चेहरा पीत पत्र की भाँति—।[९] इसी प्रकार—"पाँव उलटे मुड़े। भीतर गया। माँ के पास पहुँचा, पर चरण छूने का साहस न हुआ। लज्जा जो आई। पर बाहर निकला, भाभी खड़ी थी, चरण छू भागा।[१०] इसी प्रकार के भाव छोटे छोटे वाक्यों, सरल किंतु मार्मिक शब्दावली में अत्यंत संक्षिप्त निबंधों में व्यक्त हुए हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पांडेय जी के निबंध उनके जीवनानुभवों, घटनाओं, कामनाओं, कल्पनाओं, सुख-दुःखों एवं जीवन-निष्कर्षों के साथ आत्म चरित्रात्मक रूप में नितांत वैयक्तिक अंश हैं यद्यपि कहीं-कहीं अनावश्यक विस्तार एवं विक्षिप्तता के अंश भी हैं पर वे व्यक्तिवादी निबंधकार की स्वच्छंदता के उदाहरण कहे जावेंगे।

रीतिकाल का पुनर्मूल्यांकन

लें०-जयभगवान गोयल

प्रस्तुत आलोचनात्मक कृति में लेखक ने राजस्थान, पंजाब और हरियाणा में उपलब्ध रीतियुगीन साहित्य—विशेष रूप से वीररसात्मक और भक्तिपरक साहित्य की चर्चा की है। लेखक ने इन प्रदेशों के अज्ञात अथवा अल्पज्ञात साहित्य; विशेष रूप से गुरुमुखी लिपि में लिखित कृतियों को प्रथम बार प्रकाश में लाने का स्तुत्य प्रयास किया है। इस प्रकार उसने रीतिकालीन प्रवृत्तियों को नई दृष्टि से परखने का आह्वान किया है। उसके विचार से रीतिकाल में केवल ह्रासोन्मुखी एवं स्त्रैण मनोवृत्ति का ही साहित्य नहीं रचा गया, अपितु पंजाब और हरियाणा में ऐसा समृद्ध साहित्य भी लिखा गया जो कि जागरूक सामाजिक चेतना, युग परिवेश के अनुरूप नए भाव-बोध एवं उदात्त पौरुष मनोवृत्ति से सम्पन्न है। लेखक ने ६८ पृष्ठों की लघु भूमिका के अतिरिक्त परिशिष्ट में लगभग ४० पृष्ठों में वीर रसात्मक एवं भक्ति भावना से सम्बद्ध कतिपय रचनाओं के अंशों को भी उद्धृत कर दिया है।

प्रस्तुत कृति के शीर्षक में 'पुनर्मूल्यांकन' शब्द भ्रमात्मक है। 'पुनर्मूल्यांकन' का तात्पर्य है—किसी वस्तु का नई दृष्टि से मूल्यांकन। 'रीतिकाल' के संदर्भ में 'पुनर्मूल्यांकन' का अर्थ है, तत्युगीन साहित्य को नए आयाम से देखना। वस्तुतः आधुनिक समीक्षापद्धति का सूत्रपात जिसे साहित्यिक प्रयोगवाद, सुरुचि, नैतिकता, सुधार-भावना और वैयक्त जीवन मूल्यों के आधार पर हुआ था, उसके परिवेश में भक्तिकालीन साहित्य को प्रतिष्ठा मिली और रीतिकाव्य को उपेक्षा हुई। मर्यादावादी समीक्षा ने कामपरक अश्लीलता एवं अतिशय शृंगारिकता के आधार पर रीतियुगीन साहित्य को हेय बताया। किन्तु अब समीक्षा के मानदण्ड बदल रहे हैं। आरोपित दर्शना अथवा पूर्वाग्रहों से किसी युग विशेष की सम्यक् समीक्षा संभव नहीं है। सिद्धांतों के चश्मे से व्यक्तियों का परीक्षण नहीं हो सकता। रीतियुगीन साहित्य का भी इसी प्रकार पूर्वाग्रह एवं आरोपित दर्शन से मुक्त होकर कृतियों की आन्तरिक शक्ति के आधार पर विवेचना होनी चाहिए। सही अर्थों में 'पुनर्मूल्यांकन' का यही तात्पर्य है। लेखक से यह अपेक्षा थी कि वह पूर्वज्ञात रीतियुगीन साहित्य पर भी नए आलोक के परिप्रेक्ष्य में विचार करेगा। किन्तु इन सीमाओं के होते हुए भी पुस्तक उपादेय है। कतिपय नई रचनाओं के प्रकाश में आने से शोध का नया मार्ग खुला है। अभी तक आलोच्य युग की सामग्री मध्यदेश तक ही सीमित मानी जाती थी। पंजाब, हरियाना आदि स्थानों में उपलब्ध सामग्री से हिन्दी का क्षेत्रविस्तार प्रमाणित हुआ है। लेखक इसके लिए साधुवाद का पात्र है।

समीक्षक-डा० वासुदेव सिंह

१. आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली ६, मूल्य १० रुपए।

कथ्य और तथ्य

लेखक डॉ० विजयन; प्रकाशक—केरलहिंदी साहित्य मंडल, कोचीन २५; मूल्य २ रुपये, पृष्ठ संख्या—५६

यह लघु काव्य संग्रह, रचयिता डा० विजयन का प्रथम काव्यसंग्रह है। पुस्तक में दी गई कवितायें कवि को व्यक्तिपरक अनुभूतियों को स्पष्ट करती हैं। कुल २३ कविताएँ इसमें संग्रहीत हैं। कविताओं के पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कवि प्रौढ़ भले न हो किंतु उसके विषय या सोचने को परिधि सर्वथा नवीन है। जैसे—

गगन के तख्त पर
मगन है जाँचने में
अज्ञात परीक्षक

जाँचता वह
बादलों की कापियाँ
उलट-पुलट कर खींचता
बिजली की लकीरें।

हिंदी क्षेत्र से काफी दूर अहिंदी क्षेत्र में निवास करनेवाले इस प्रकार प्रयास करके सराहनीय कार्य कर रहे हैं। हम आशा करते हैं कि डा० विजयन आगे और प्रौढ़ रचना के साथ हिंदी जगत् के समक्ष आयेंगे।

—विजय बलियाटिक

साठोत्तरी मराठी कथा : दशा और दिशा

[शेष पृष्ठ ८ का]

सोचें। परिवार में परस्पर संबंधों के कारण उत्पन्न उलझनें, तकलीफें, दिक्कतें इनको किसी प्रकार से तोड़ने मोड़ने या घात पात पर उतरने नहीं देतीं। अपनी दिक्कतों को अटल मानकर ही मूक रूप में ये सहते जाते हैं। अन्न वस्त्र की मामूली जरूरतों के लिये ये कभी कभार प्रतारणा भी करते हैं, चालाकी या चापलूसी भी करते हैं परंतु इसके पीछे भी इनकी निरीहता और विवशता साफ साफ दिखती है जिसके कारण हम उनको घृणा नहीं दे सकते। उन्हें आत्मप्रशंसा का 'शौक' है, छोटी बड़ी सहूलियतों या सुविधाओं की ख्वाहिश है परंतु कुल मिलाकर ये लोग पाठकों की सहानुभूति अवश्य अर्जित करते हैं। यह सहानुभूति शेलके भावुक बनकर नहीं खींचते। किसी भाव को उत्कट व उत्तेजक रूप में रखने के पक्ष में शेलके नहीं हैं। इनके पात्रों के माध्यम से हम विशेषतया वैदर्भीय जनता की और सामान्यतया संपूर्ण भारतीय सामान्य जनता की असलियत को जान सकते हैं। शेलके विनोद और व्यंग्य का भी आश्रय लेते हैं परंतु यह सब मामूली जनता के यथार्थ की असंगतियों को सरल रूप में उद्घाटित करने के प्रयत्न से उत्पन्न होता है। शेलके कभी मनोवैज्ञानिक सूझबूझ का भी परिचय देते हैं परंतु व्यावहारिक और स्थूल जीवन के बहुत पीछे नहीं जाते। शेलके में जीवन के वैचारिक या आध्यात्मिक पक्ष के प्रति बिल्कुल ही रुचि नहीं है, जीवन के बाह्य यथार्थ की तुलना में उसके पीछे के अदृश्य सूक्ष्म शक्तिप्रवाहों के अंकन पर वे ध्यान नहीं देते, मानसिक तनातनी या सूक्ष्म चिंतनात्मक संवेदनाओं का रूपचित्रण भी वे नहीं करते। किसी भी लेखक को ऊँचाई पर प्रतिष्ठित करने के लिये मेरी दृष्टि में गहन चिंतन, जीवन का सूक्ष्म आकलन, मनुष्य के असाधारण प्रारूप को प्रस्तुत करने की क्षमता का होना आवश्यक है। अभी इन दिशाओं में शेलके की यात्रा शुरू नहीं हुई है और संभवतः इसके लक्षण भी कम हैं। परंतु इसमें संदेह नहीं कि अपनी अजस्र लेखन शक्ति के बलपर वैविध्यपूर्ण विस्तृत जीवन के यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर शेलके ने मराठी कथाकारों में अपना स्थान निश्चित किया है। खेद की बात इतनी है कि मराठी की सौंदर्यवादी एकांगी आलोचना को हाथी दाँत पर रेखांकित चित्राकृतियों को देखने से अभी फुरसत नहीं मिली है कि वह शेलके के कृतित्व का विचार कर सके।

वैसे क्षेत्रीय जीवन के रंगों और गंध को लेकर अनेक कथाकर आये हैं जिनमें मराठी के शीर्षस्थ उपन्यासकार पेंडसे भी हैं, दांडेकर भी हैं खानोलकर और शांता शेलके हैं।

मध्यवर्ग के सुख दुःख के चितेरे

वैसे हरिनारायण आपटे से लेकर आज तक मराठी साहित्य में अधिकतर मध्यवर्ग के सुख-दुःखों आशा आकांक्षाओं, वेदनाओं व्यथाओं का समस्याओं और उलझनों का चित्रण हुआ है। यह इसलिये स्वाभाविक था। शिक्षा और साहित्य का उपभोक्ता वर्ग मध्यवर्ग ही रहा है। मराठी के साहित्यकारों की प्रमुख, प्रकृति भी यह रही है कि वे अपनी भोगी हुई जिंदगी के बाहर जाने का प्रयास बहुत कम करते हैं। फडके सुखवाद या कलावाद के और मर्ढेकर के सौंदर्यवाद से इसको बौद्धिक समर्थन (Rationd isution) भी मिला। परंतु यह दूसरा प्रश्न है। यहाँ साठोत्तरी कहानी का संदर्भ ध्यान में रखते हुए केवल उन थोड़े से लेखकों का उल्लेख होगा जिन्होंने अपने वैशिष्ट्य की छाप साहित्य पर अंकित की है।

श्री० दा० पानवलकर मराठी कथा संसार में एक अलग व्यक्तित्व लेकर उपस्थित हुए। अब तक उनके दो कथा संग्रह प्रकाशित हुए हैं औंदुवार और सूर्य। पानवलकर की कथा सामयिक राजनीति

सामाजिक नैतिक मूल्यों का संघर्ष इत्यादि से दूर है और एक तरह से वे चिंतन की अमूर्तता से अलिप्त रहनेवाले कथाकार हैं। उनकी कथा विलक्षण रूप में मांसल और जीवंतता लिये हुए विशुद्ध कथा तत्त्व का प्रभाव पाठक पर डालती है। पानवलकर का प्रमुख क्षेत्र उन व्यक्तियों से भरपूर है जो सोना, अफीम, शराब इत्यादि तस्कर व्यापार में व्यस्त हैं। इनका और पुलिस विभाग का जीतोड़ मुकाबला भी उन का खास क्षेत्र है। पानवलकर जो स्वयं कस्टम विभाग में कर्मचारी हैं इस प्रकार की जिंदगी से भली भाँति परिचित हैं। वास्तव में पानवलकर की कथा खुफिया विभाग की कथाओं—जासूसी कथाओं के ढर्रे पर लिखे जाने की संभावना थी परंतु न केवल ऐसा होने से यह बचती है अपितु अपनी खास विशिष्टता के कारण सम्मानित भी हो गयी है। मानवीय जीवन और मन के कतिपय अनोखे पहलू या वैशिष्ट्य जो इस क्षेत्र में पाये जाते हैं पानवलकर की कथा के लक्ष्य हैं। उनकी कथा में आरंभ से लेकर अंत तक सुविज्ञ पाठक की उत्सुकता बढ़ेगी कौतूहल बना रहेगा। एक घटना प्रधान कहानी पढ़ने का आनंद मिलेगा। फिर भी उनकी प्रत्येक कथा नई ताजी और टटकी लगती है। इस का मुख्य कारण यह है कि पानवलकर घटनाओं के पीछे क्रियाशील मनुष्यों में तथा उनकी मानसिकता में रुचि रखते हैं। मनोवैज्ञानिक प्रणालियों का प्रत्यक्ष प्रयोग उन्होंने नहीं किया परंतु मनुष्य के मन की उनकी पकड़ अद्भुत है। "सूर्य" कहानी में उन्होंने ने ऐसे व्यक्तित्व को साकार किया है जो अपनी मूल कोमल और भावुक प्रवृत्तियों का गला घोंटकर एक जीवटवान, कठोर, पौरुषयुक्त पुलिस अफसर बन जाता है। इस परिवर्तन की समूची प्रक्रिया को पानवलकर ने हमारे सामने मूर्तकर दिया है। समाज की दृष्टि से स्खलित व्यक्ति की जीवन के प्रति प्रतिबद्धता को साकार करते समय पर दुःख में उन्होंने नायक के मानसिक तनावों का विलक्षण प्रभावपूर्ण चित्र उरेहा है। ट्रायल में मध्यवर्गीय युवक के समलिंगी संयोग की प्रवृत्ति के रहस्यमय रूप का सूक्ष्म धरातल पर चित्रण किया है। शराब का व्यापार करने के लिये मजबूर युवक की परस्पर विरोधी दिशाओं में होनेवाली रस्साकशी का रूप या 'परि साडुनि दमयंती' नामक कथा में स्पष्ट रूप में मिलता है। 'औंदुबर' में एक समान्य पोष्टमैन के जीवन के रोचक प्रसंगोंका मर्मस्पर्शी चित्रण करते हुए उनकी विलक्षण जीवन परिणामशीलता, जीवन संघर्ष की क्षमता को अंकित किया है। पानवलकर की कथाओं की रग-रग में उत्साह और जीवन की लालसा से युक्त स्त्री पुरुषों का मिश्रण मिलता है। अपनी ड्यूटी बजानेवाले कर्तव्यतत्पर छोटे बड़े लोगों के प्रत्यक्ष कार्य का रूपांकन आपने किया है–'कल', 'लोलबलेल दिवस', 'राणी घोडा आणि सगलं' 'सर्च', 'वगली, इत्यादि में। पानवलकर मनुष्य के वर्तमान क्षण की जीवंतता और स्पंदन को भी कभी पकड़ने का प्रयास करते हैं– 'साप' 'इसार;' 'उजीव' इत्यादि में। पानवलकर की कथाओं के स्त्री पुरुषों में विलक्षण खुलापन है। उनकी कथा प्रायः पुरुष प्रधान होती है और स्त्रियों की ओर देखने का उनके पात्रों का दृष्टिकोण प्रायः परंपरागत ही होता है। पानवलकर पहले कथाकार हैं और अंतिम रूप से भी। इसलिये उन्हें मनुष्य के जो रूप सामने ठोस रूप में दिखाई पड़ते हैं उनको उनकी मानसिकता के संदर्भ के साथ प्रस्तुत करने में वे अधिक रमते हैं—जीवन से परे हटकर या दूर जाकर अमूर्त चिंतन में उन्हे जरा भी रस नहीं है। उनकी शैली में विलक्षण नुकीलापन, प्रत्यक्षता, मूर्तिमत्ता और अपना खास रंग होता है।

मराठी के प्रख्यात नाटककार विजय तेंडुलकर ने भी कुछ सशक्त कहानियाँ लिखी हैं ('गाणें' संग्रह)। आप मध्यवर्गीय जीवन के कठोर आलोचक हैं। उनकी पैनी अंतर्भेदिनी दृष्टि मध्यवर्गीय

मनुष्य पर पड़ती है तो उसका ढोंग, दंभ, समझौता परस्त वृत्ति, वासना को छिपाने के लिये ओढ़ी हुई नैतिक मूल्यों की नकाब इत्यादि बातों पर जबरदस्ती व्यंग्यात्मक प्रहार करने लगते हैं। मनुष्य के मन के परंपरा, नीति इत्यादि के पर्दे फाड़कर उसकी नंगी असलियत को सामने रखते समय विजय तेंडुलकर की कलम विशेष धारदार होती है।

विद्याधर पुंडलिक अल्प लेखन करनेवाले परंतु गुणवत्ता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण लेखन करनेवाले कथाकार हैं। अब तक उनके 'पोपटी चौकट' और 'टेकडी वरचेजीत' दो कथा संग्रह प्रकाशित हुए हैं। विद्याधर पुंडलिक की कलात्मकता की परख अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। बालकों के मन का चित्रण, प्रेम के विविध रूपों का अत्यंत नजाकत से किया हुआ अंकन, प्रौढ़ व्यक्तियों की अतृप्त आकांक्षाओं और वेदना का सहज अकृत्रिम प्रकटीकरण पुंडलिकजी का खास क्षेत्र है। इनकी कथाओं में एक प्रगल्भ मन का चुलबुलापन, शरारत या नटखटपन रहता है जो विज्ञ पाठकों को प्रश्न मनस्थिति में रख लेता है। 'पोपटी चौकट' या 'आजी शरण मेले' में अपनी अभिजात विनोदवृत्ति का परिचय देनेवाले विद्याधर पुंडलिक 'वार्ड नंबर सात' 'पसारा' 'एक मांजटी की कथा' 'ऐरठतीर' में मनुष्य जीवन की करुणा को अत्यंत सूक्ष्मता के साथ संप्रेषित करते हैं। विद्याधर पुंडलिक संभवत: विश्वास करते हैं कि मनुष्य के सुख दु:खों के पीछे नियति के हाथ हैं। उनकी कथा में जो वेदना व्यक्त होती है वह भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद संतृप्त मन की वेदना है—चिरंतनता का स्पर्श लेकर। उनके पात्र अपने ही भाव विश्व में रमनेवाले, यथास्थिति से समझौता करनेवाले परंतु अत्यंत परिपक्व (Mature) व्यक्तित्ववाले होते हैं। आक्रोश, असंतोष, क्रोध अस्वस्थता, क्षोभ पुंडलिक की कथा में बहुत ही कम है जीवन के रूप के प्रति एक प्रौढ़ जिज्ञासा उनमें अवश्य है। विशुद्ध कलात्मक मूल्यों की कसौटी पर पुंडलिक की कथा अत्यंत सफल सिद्ध होगी।

(ए० वि० जोशी की कथाओं में खासकर ऐसे व्यक्ति आते हैं जिन की मुट्ठी से जीवन का श्रेय हाथ से बालू की भाँति खिसक गया है और उसके गीलेपन को हाथ में लेकर वे मसोसते रह जाते हैं जीवन के अर्थ को शरीर की तीव्र यौन वासना में खोजने का प्रयत्न करनेवाले ए० वि० जोशी के पात्रों के हाथ में कुछ नहीं आता। उन की कुछ कथाओं में ऐसे व्यक्तियों की मानसिक संवेदना का भी चित्रण मिलता है जो अनैतिक एवं भ्रष्ट आचरण को स्वीकार करने के लिये विवश हो चुके हैं। भावुकता या करुणार्द्र दृष्टि का सहारा न लेते हुए इन स्खलनशील पात्रों की वेदना और विवशता के प्रति पाठकों की सहानुभूति को जाग्रत करने का कार्य ए० वि० जोशी करते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि पात्रों की विकृतियों की अपेक्षा उनके असंगतिपूर्ण परिवेश की भीषणता की ओर जोशी संकेत करते रहते हैं। मध्यम वर्गीय संस्कारों, नैतिक मान्यताओं, आत्मतुष्टि की भावना को कुरेदकर अस्वस्थ करने में जोशी की कथा एक सीमा तक सफल होती है। ए० वि० जोशी के दो कथा संग्रह 'कृष्णाकाठचे देव' और 'वेलबुट्टी' प्रकाशित हो चुके हैं।

ज्ञानेश्वर नाडकर्णी के प्रथम कथा संग्रह 'पाऊस' में उनका कोई वैशिष्ट्यपूर्ण व्यक्तित्व नहीं उभरता परंतु दूसरे कथासंग्रह 'चिद्घोष' में उनकी क्षमता का परिचय मिलता है। मनुष्य मनुष्य के बीच का वैचित्र्यपूर्ण संबंध नाडकर्णी की कथा का केंद्रीय बीज होता है। इन वैचित्र्य पूर्ण संबंधों का व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण से निरूपण करते है। इन वैचित्र्यपूर्ण संबंधों के पीछे चूंकि

आकस्मिकता या दैव का हाथ अधिक होता है। नाडकर्णी की कथाओं में न विशेष आक्रोश होता है न क्षोभ। नाडकर्णी की कथा में मूल बीज कल्पना कुछ अनोखी सी और मौलिक भी होती है परंतु उसका कथा के माध्यम से यथोचित संप्रेषण करने में उनकी कलात्मक क्षमता पूरी नहीं पड़ती दिखती। बहुत सा फैलाव और बिखराव तो रहता है ही, शैली में इतिवृत्तात्मकता भी कथा के स्तर को दूषित करती है।

जयवंत दलवी नये कथाकारों में एक लोकप्रिय कथाकार हैं। दलवी की कथा प्रायः किसी प्रौढ़ व्यक्ति की अनुभूति या मूड के माध्यम से आकार ग्रहण करती है। प्रायः ये व्यक्ति जीवन के किसी न किसी दाँव में हारे हुए होते हैं। यह दाँव प्रायः प्रेम का होता है। संस्कार, संयम, नैतिक वर्जनाएँ, समाज का भय, पारिवारिक जिम्मेदारियाँ इत्यादि के कारण ये नायक प्रेम विवाह का निर्णय नहीं ले पाते और लौकिक दृष्टि से सफल गृहस्थी के बीच भी ये तीव्र अभाव या टीस का अनुभव करते हैं। उनके अनुभवों का निवेदन दलवी जी करते हैं। कभी प्रेम और विवाह की आकांक्षाओं के अतृप्त रहने के परिणाम स्वरूप जो दर्द होता है उसका भी चित्रण दलवी करते हैं। कथा प्रायः संवेदना के स्तर पर सत्यात्मक रूपशिल्प को लेकर अवतरित होती है। दलवी की कथाएँ वैयक्तिक रूप में सफल हैं परंतु पाठक को बौद्धिक रूप से झकझोरना जीवन के किसी उपेक्षित या अपरिचित पहलू की झलक दिखाकर पाठक की मानसिक चेतना का विस्तार करना या जीवन के संबंध में एक समझदारी का भाव उत्पन्न करना अगर कथा की श्रेष्ठता के लिये आवश्यक माना जाय तो जयवंत दलवी की सीमाएँ स्पष्ट होती हैं। इनकी कथाएँ पढ़ते समय पाठक द्रवित होता है, उद्वेलित होता है, परंतु इस भावनिक ऊबडूब का कोई पुष्ट और स्थायी प्रभाव मन पर नहीं पड़ता।

श्री० ज० जोशी, दि० या० मोकाशी, वि० शं० पारगाँवकर, अकुल वर्वे, इत्यादि कथाकार बहुत समय से लिख रहे हैं। मधु मंगेश कर्णिक मंगेश पदकी, सरिता पदकी, कमल देसाई, विजया राजाध्यक्ष इत्यादि कतिपय कथाकारों ने मध्यवर्गीय जीवन को अपनी कथा का विषय बनाया है। इनमें कमल देसाई की कहानियों में तीव्र चुभन होती है जो संवेदनशील पाठक को विचलित करती है। विजया राजाध्यक्ष ने भी अपनी कथाओं से अपनी उज्वल संभावनाओं का सशक्त संकेत किया है। वामन रंगले, वामन प्रभु, मनोहर तल्हार आनंद जातेगाँवकर इत्यादि कतिपय युवा लेखकों की कहानियों में जीवन के नये रूपों का अन्वेषण करने की धुन दिखाई पड़ती है। शं० न० नवरे, व० पु० काले इत्यादि लेखक भी रंजक कहानियाँ लिखकर कथासाहित्य के विस्तार में हाथ बटा रहे हैं।

मराठी की कथा पर समग्र रूप में दृष्टि डालने पर यह प्रतीत होता है कि यह कथा तात्कालिक राजनैतिक संदर्भ से प्रायः असंपृक्त है। समसामयिकता का बोध मराठी की कथा उतने तीव्र रूप में नहीं कराती। कथा में मध्यवर्गीय जीवन की आर्थिक दुर्दशा तथा उससे उत्पन्न असंतोष, क्षोभ खीझ, घुटन इत्यादि मनस्थितियों का चित्रण विरल है। मराठी कथाकार व्यक्ति के रूप और गठन में, विचित्रता और विशिष्टता में जितना रस लेते हैं उतना उनके सामाजिक परिवेश में लेते नहीं देखते। जीवन की निरर्थकता का बोध मराठी कथाकारों ने कराया है परंतु उसका संबंध या मूल प्रत्यक्ष जीवन की वास्तविक स्थितियों में देखने की बजाय समूचे जीवन की सार्थकता के प्रति ही संदेह व्यक्त करता दिखाई देता है।

जीवन के अर्थ की खोज

जीवन की संपूर्ण स्थिति को ही निरर्थक,

असंगत और शून्यवत् समझनेवाले लेखकों में प्रमुख हैं जी० ए० कुलकर्णी। उनके अबतक 'निष्ठासांवला' (१९५९) "पारवा" (१९६०) "हिरवे रावे" १९६२ 'रक्तचंदन' १९६६ कथा-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। जी० ए० ने अपनी वैशिष्ट्यपूर्ण और मौलिक कथा शैली से मराठी पाठकों का ध्यान तुरंत अपनी ओर खींच लिया था। कुलकर्णी अपनी कथाओं को मध्यवर्गीय जीवन के भावों, विचारों, प्रसंगों, संबंधों के तानेबाने लेकर बुनते हैं परंतु इसके बाद सब कुछ चिरंतन समस्याओं का स्पर्श करते हुए दिखाई पड़ते हैं। जीवन की स्थूल समस्याओं की ओर जी० ए० ने विशेष ध्यान नहीं दिया। उनकी कथा के पात्र अजीब किस्म के व्यक्ति हैं—अन्न, वस्त्र, आवास की समस्याओं को लेकर जूझनेवाले या हारनेवाले व्यक्ति नहीं हैं। स्थूल रूप के पीछे जाकर जीवन के भीतरी अर्थ को खोजने की व्याकुलता से उनके पात्र पीड़ित रहे हैं। जी० ए० पूर्णतया निरर्थकतावादी कथाकार लगते हैं। इनके पात्र एक दूसरे का शिकार करते हुए, एक दूसरे को धोखा देते हुए परंतु खुद धोखा खाते हुए दिखाई देते हैं। जी० ए० अपने पात्रों को दोष नहीं देते क्योंकि सब अदृश्य शक्ति के खिलौने हैं। जी० ए० को मनुष्य की संकल्पशक्ति, निर्णय का अधिकार, जीवन के उदात्त मूल्य जैसी किसी बात में विश्वास नहीं है। कभी कभार साहित्य और संगीत जैसी सर्जनात्मक कलाओं के प्रति उनके मन की आस्था प्रकट होती है परंतु कुल-मिलाकर जीवन की कभी खत्म न होनेवाली असंगतियों, विषमताओं, नियति के कुटिल दाँव पेंचों के सतत भान से यह आस्था भी क्षणिक सी लगती है। जी० ए० की कहानियों में वर्तमान समाज की गतिविधियों राजनैतिक-सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का प्रतिबिंब देखना या भविष्य की आस्था को खोजना आकाश कुसुम की खोज करना होगा। उनकी अनेक कथाओं में यह आभास मिलता है कि उनके पात्रों की कलात्मक ऊर्मियों को व्यावहारिक जीवन की जटिलताओं ने, या कायदावादी स्थूल दृष्टिवाले व्यक्तियों ने जबरदस्त रूप में दबोचा है और परिणामतः उनके पात्र कठोर निरर्थकतावादी, अस्तव्यस्त बन गये हैं ('गिधाड' 'माणूस नावाचा बेटा' 'लवक' 'अटवेरचा दिवस' पुरुष') परंतु यह भी संभवतः मानवीय विकृतियों या गंदगियों के आदि कारण के रूप में जी० ए० को स्वीकार्य नहीं है। अपनी प्रारंभिक कथाओं में वासना का एक आदि कारण के रूप में जी० ए० चित्रण कर चुके थे परंतु आगे चलकर मानवीय नियति के मूल कारण के रूप में यह भी उन्हें अपर्याप्त लगने लगा। वस्तुतः मानवीय जीवन के अव्याहत बहनेवाले प्रवाह के उद्दाम, विकास और परिणति के पीछे कोई एक दो या दस कारण नहीं देखते। इन के सभी पात्र जीवन के उस 'क्षण' को लेकर उद्विग्न हैं, आक्रोश भी कर रहे हैं, जब जीवन की निरर्थकता का भीषण भान उनको होता है। ये प्रायः यह प्रश्न पूछते हैं, 'हर दिन गिद्ध की भाँति पंख फैलाता आ जाये और जीवन का एक टुकड़ा तोड़कर चला जाये"—"यह सदैव ऐसा क्यों होता है ? जान की बाजी लगाकर किसी के पीछे शिकार की भाँति दौड़ा जाये और अंत में इसमें हाथ क्या लगता है ? खून से लथपथ असहाय घिनौना प्रेत ! यही तो अपने जीवन का अभि-शाप है—यह अपना आजीवन कारावास है। "दुनिया इतनी बड़ी है, लेकिन हम इस छोटे से गंदे कमरे में इस असहाय गाँव में सजा भोगते हुए जी रहे हैं और इस जेल से मुक्ति नहीं है।" 'इस आकस्मिक अनुभव से वे दहल गये थे। समूचा जीवन जैसे मथा गया हो। उनका मन अस्वस्थ व्याकुल हुआ।...लेकिन अपने जीवन से ये बदजात कोंपलें कैसे आयीं ?"

'सब जगह धोखा, धोखा खानेवाला अकेला, मेले में स्टॉल्स अलग अलग परंतु वंचित ग्राहक एक ही।' इस प्रकार जीवन में चरम निरर्थकता का अनुभव करते हुए उनके पात्र प्रायः जीवन के अतीत और वर्तमान को देखते रहते हैं। तब जीवन के तमाम प्रसंग, जन्म से लेकर मृत्यु तक, असंबद्ध असंगत लगने लगते हैं, नाते रिश्तेदारों के अनमेल संबंध उनके सामने तीव्र रूप में अपनी निरर्थकता लेकर उभर जाते हैं। जी० ए० के पात्र शब्द बदल कर बारबार यही पूछते हैं—अकेली लड़की का चेहरा, बैल के पीठ पर का डील भिखारिन का गर्भ, पैर पर का दाग, कौन फेंकता है ये फाँसे? क्यों? कैसे? कहाँ?, "इन प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं।.........अगर नहीं हैं तो ये पात्र नाग के फन की भाँति बिला वजह क्यों खड़े होते हैं? जी० ए० के पात्र इसी प्रकार के प्रश्नों के भँवर में घूमते रहते हैं। जी० ए० की कथाओं में अतर्क्य, कार्य-कारण भाव रहित, आकस्मिक और अविश्वसनीय सी घटनाएँ घटती रहती हैं। इन तारतम्य-विहीन घटनाओं के माध्यम से जी० ए० मनुष्य जीवन की शून्यता, निरर्थकता और मूल्यहीनता के प्रश्न उपस्थित करते हैं। इनका हर पात्र दूसरे पात्र के अस्तित्व से भयभीत, असंतुष्ट, खीझा हुआ और बेचैन है। सच्चे अर्थ में जी० ए० मराठी के पहले अस्तित्ववादी कथा लेखक हैं। जी० ए० की सशक्त कहानियों को समग्र रूप में पढ़ते समय कुछ प्रश्न मन में उपस्थित होते हैं। जीवन की मामूली घटनाओं को लेने की बजाय अविश्वसनीय तारतम्य विहीन घटनाएँ ही हमेशा क्यों ली जाती हैं? यह पुरानी घटना प्रधान कहानी का प्रभाव है या पाठक के साथ समझौता है? इससे क्या लेखक की क्षमता की सीमा का भान नहीं होता? एकरसता आती है सो आएगी कभी यह भी लगता है कि कथा का सूत्र पूर्वनिश्चित है वैसे उस में मसाला भर कर सामने रखना है। कथा। में सहज स्फुटता (Spontancity) नहीं है। इन आक्षेपों के बावजूद जी० ए० की कथा में अपना अंगमूल सामर्थ्य कम नहीं है, मौलिकता और विशिष्टता की छाप कम स्थायी नहीं है। और उन्होंने मराठी कथा साहित्य को बहुत कुछ दिया है।

मराठी कथाकारों में सदानंद रेगे १६५० से कविताएँ, कहानियाँ लिख रहे हैं परंतु इनके महत्वपूर्ण कथा संग्रह १६५० के बाद ही प्रकाशित हुए हैं। सदानंद रेगे की कथा मराठी साहित्य में उनकी विक्षिप्तता, विलक्षणता और विचित्रता के लिये विशेष रूप से विख्यात है। रेगे के पात्र मध्यवर्गीय होते हैं और उनके जीवन के स्थूल और सूक्ष्म संघर्ष को उनकी छोटी बड़ी अतृप्त आकांक्षाओं को रेगे ने अवश्य निश्चित किया है। परंतु रेगे इनसब का उपयोग परिवेश के रूप से करते है। उन की फैंटसी या जीवन विशयक अनोखी सूचना सूझ बूझ कथा के ढाँचे को, संगति संवाद, कथा का कलात्मक विन्यास आदि बातों को तोड़ फोड़ कर कब उगेगी इस का अनुमान नहीं किया जा सकता। राजनीति, समाज स्थिति, नैतिक धारणाएँ रेगे के लिए महत्वपूर्ण चीजें नहीं हैं। उनके लिये महत्वपूर्ण है उनकी अपनी विलक्षण कल्पना शक्ति। लगता है यह रेगे की बड़ी शक्ति भी है और सीमा भी। मनुष्य की संवेदना का अच्छा चित्रण करने की क्षमता रखते हुए उनका कल्पना और विलक्षणता का प्रेमी मन मनुष्य के भावविश्व का मजाक उड़ाता सा प्रतीत होता है। प्रायः उनकी प्रत्येक कथा फैंटसी के किसी न किसी रूप में परिणत हुए बिना पूरी नहीं होती। जब वे कुछ थोड़ी सी कथाओं में फैंटसी के शिकार नहीं होते जब मध्य वर्गीय तनावों को और मानसिक वेदना को व्यक्त करने वाली सुंदर कथाएँ लिख जाते हैं। अपनी अधिकांश कथाओं में रेगे मृत्यु, की किसी न किसी कल्पना से रूप से

जूझते प्रतीत होते हैं। कतिपय पात्र उन की कथाओं में मर जाते हैं जैसे कि मृत्यु एक मामूली सी चीज हो। दरिद्रता, मृत्यु, राजनीतिक नैतिक मूल्यों के ह्रास का क्रम, मनुष्य जीवन के प्रति आदर या उदारता का अभाव इत्यादि के कारण रेगे की कथा 'सिनिकल' कथा मालूम होती है। मृत्यु के बाद की भूत प्रेत पिशाच योनि में भी रेगे रुचि दर्शाते हैं। मासा आणि इतर विलक्षण कथा संग्रह की अधिकांश कथाएँ इसी अपर योनि की अद्भुत कथाएँ हैं। बहुत बार रेगे की कथाएँ प्रतीकों का रूप लेकर अवतरित होती हैं। बहुत बार यह आभास उत्पन्न करती है कि वे बहु-आयामी कथाएँ हैं परंतु तर्क, संगति और संघटना का अभाव तथा केंद्रीय तत्व की रहस्यमयता के कारण ये कथाएँ पाठक के मन से फिसल जाती हैं।

शरच्चंद चिरमुले अपनी कुछ थोड़ीसी वैशिष्ट्यपूर्ण रचनाओं के बलपर मराठी के सशक्त कथाकारों के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। चिरमुले का ध्यान पात्रों की उत्कट संवेदनाओं पर केंद्रित रहता है और उत्कटता या उत्तेजकता उनके पात्रों का धर्म है। ये पात्र एक ओर परंपरागत मूल्यों का महत्त्व चाहनेवाले हैं तो दूसरी ओर अपनी उत्कट संवेदना के कारण असामान्य बनते हैं। 'श्री शिल्लक' का विश्वेश्वर भावुकता के आवेश में अपनी पत्नी को दान के रूप में एक स्वामी को अर्पित करता है और स्वामी उस दान को स्वीकार भी कर लेते हैं। इन दोनों के बीच आंदोलित विश्वेश्वर की पत्नी सरस्वती की कथा अबूझ, रहस्यमय रूप लेती है और उसके व्यक्तित्व में विलक्षण जटिलता उत्पन्न होती है—इस जटिलता को चिरमुले ने व्यक्त करना चाहा है। उनके पात्रों को प्रायः एक तरह की अतृप्ति और बेचैनी व्याकुल किये रहती है। उनके जीवन के पास ही कुछ इस प्रकार के पड़े हुए होते हैं कि उनका अभीप्सित, वांछित, श्रेय उनके हाथ से निकल जा चुका होता है। नियति के द्वारा दिये गये दुःख को सहना ही इनके हाथ में रह जाता है। एक प्रकार की गंभीरता का बोध चिरमुले की कथा पढ़ते समय पाठक को होती है क्योंकि उनके

पात्र यह सवाल उठाते हैं कि जीवन का अर्थ क्या है? जीवन में व्यथा का स्थान क्या है? चिरमुले के पास कोई स्पष्ट उत्तर नहीं है। 'एकेकाची अखेर' 'आवर्त' 'युधिष्ठिराचारम' जैसी कथाओं में जीवन के ट्रैजिक रूप का सशक्त एहसास कराते हुए चिरमुले किसी अदृश्य भँवर शक्ति का संकेत करते हैं जो हरेक को अपने में लील लेता है। चिरमुले की कथाओं के लिये जीवन की काल्पनिक घटनाएँ, कल्पित प्रसंग, कल्पित संवेदन आवश्यक होते हैं। प्रश्न यह होता है कि जीवन की सार्थकता जीवन की ट्रैजिडी के लिये इस प्रकार कृत्रिम स्थितियों की आवश्यकता है?

मराठी के प्रख्यात कवि नाटककार और उपन्यासकार चिं. त्र्यं. खानोलकर की प्रतिभा ने अपनी सामर्थ्य कथा के क्षेत्र में भी उतनी ही प्रभविष्णुता के साथ दिखायी है। पेंडसे की भाँति खानोलकर की भी अनेक कथाओं में कोंकण का वातावरण छाया रहता है परंतु खानोलकर की कथा प्रायः प्रांतीयता या आंचलिकता की सीमाएँ पार कर मानव जीवन की वैश्विकता को छूती रहती हैं। सामान्यतः खानोलकर की कथा में मनुष्य अपने आत्मकेंद्रित, स्वार्थी, भीरु रूप में आता है और उसकी दयनीयता के बावजूद उसके वात्सल्य, प्रेम और असीम व्यथा के कारण श्रद्धेय भी लगता है। खानोलकर मनुष्य की आंतरिकता और विशेष रूप में उसकी अवचेतन मन की दशा का अत्यंत कलात्मक रूप में प्रकटीकरण करते हैं। खानोलकर मराठी के एक अजस्र प्रतिभा से संपन्न कथाकार हैं और कथा-बीज की पकड़ उसका निर्वाह, प्रभाव, मनुष्य स्वभाव का दिग्दर्शन, जीवन के विविध रूपों की अभिव्यक्ति इत्यादि बातों में उन्हें अपने सहज प्रतिभा ज्ञान का विशेष योग मिलता है। उनकी बिंब निर्माण क्षमता और प्रतीक सृष्टि अपूर्व

शक्तिशाली हैं और उन की भाषा से लेकर कथा तक अति यथार्थवादी (Surrealist) प्रवृत्ति की मिलती है। उनकी कथा दुर्बोध भी मानी जाती है परंतु परंपरागत कथा विषयक मान्यताओं को एक ओर रखकर कथा पढ़ी जाय तो मनुष्य और उसके जीवन के संबंधों में अनोखा आलोक मिल जाता है।

मराठी में अपनी मौलिक प्रतिभा से वैशिष्ट्य पूर्ण लेखन करने वाले एक युवा लेखक दिलिप चित्रे की 'ऑर्फियस' में संग्रहीत कथाओं ने मराठी कथा को एक नयी दिशा और समृद्धि दी है। चित्रे कथाकार हैं, कवि हैं, उपन्यासकार हैं और साहित्य के मूलगर्भी प्रश्नों का तलस्पर्शी विवेचन, विश्लेषण करनेवाले चिंतक भी हैं और अपने लेखन में व्यक्तित्व के समग्र अंगों का उपयोग करते हैं। उनकी कथा कभी जीवन के चिंतन में रमती है, कभी अत्यंत अनोखे व्यक्तित्वों का आंतरिक परिचय प्राप्त करने में लीन होती है। अनुभव को अत्यंत संवेदनशील अंत:करण से ग्रहण करना और उसकी अर्थवत्ता की खोज करना दिलिप चित्रे का प्रयत्न है और इसी में से उनकी कथा सृष्टि जन्म लेती है। दिलिप चित्रे अपने व्यक्तित्व की स्वतंत्रता और मौलिकता को प्रयत्नपूर्वक सुरक्षित रखने वाले लेखक हैं। अतः किसी भी लेखक के या बाह्नवीन परंपराओं के संस्कारों की हुकूमत स्वीकार नहीं करते। इसलिये उनकी प्रत्येक रचना में अपना स्वतंत्र वैशिष्ट्य है। दिलिप चित्रे अपनी कथाओं में मनुष्य जीवन के बुनियादी प्रश्नों से जूझते हैं—जैसे अस्तित्व की समस्या, वासना पर नीति, सुविधा, परंपरा आदि के दबावों के कारण जीवन में उत्पन्न होनेवाले अनेकांगी झूठ और कायर समझौते, सभ्यता और संस्कृति की आड़ में होने वाली सहज मनुष्य का विशेषत: स्त्री का अवरोध, अस्मिता की खोज इत्यादि उत्कट अनुभव को ग्रहण करने के उपरांत इसके रेशे रेशे का विश्लेषण करने की चित्रे की आदत से उनकी कहानियों पर बौद्धिकता की गहरी पर्त छायी हुई रहती है। चित्रे की कहानियों पर न किसी के संस्कार हैं, न उनकी कहानियों का अनुकरण भी किया जा सकता है। किसी भी वैचारिक या संवेदनात्मक चौखटे को न स्वीकारते हुए आत्मविशिष्टता की खोज चित्रे की सर्जना का मूलमंत्र है।

दलित जीवन के चित्रण की नयी चेतना

यह कहा जा चुका है कि मराठी कथा अधिकतर मध्यवर्गीय सुखदुःखों के आवर्त में चक्कर काटती रहती है। मध्यवर्ग की व्यथा, वेदना सामाजिक आर्थिक जीवन के भयावह संदर्भों से उत्पन्न होने की अपेक्षा वह मनुष्य मन की एक अलग स्वयंभू सत्ता मानकर उसमें से उत्पन्न होती दिखायी गयी है। स्पष्ट शब्दों में सुविधा भोगी मनुष्य की व्यथा-वेदना का चित्रण अधिक हुआ है। आंचलिक कथा का भी कतिपय लेखकों ने रंजकता के लिये उपयोग किया है। परिणामत: हजारों वर्षों से पीड़ित, उपेक्षित, अवमानित समाज को यह साहित्य अपने खास जीवन के संदर्भ से असंपृक्त लगा। महाराष्ट्र में शिक्षा प्रचार और शिक्षा विषयक सुविधाओं के कारण दलित वर्ग की शिक्षा और साहित्य के संस्कार लेकर जो पीढ़ी आयी यदि उसे मराठी साहित्य में शब्दांकित भाव जगत् अपने संवेदना विश्व से बहुत दूर का लगा हो तो यह स्वाभाविक था। जनतंत्रवादी विचार धारा के प्रभाव और नीग्रो आंदोलन के यथार्थ ने इस स्थिति को अधिक जटिलता दी समस्त मराठी साहित्य को नकारने की एकांतिक भूमिका भी उन्हां ने अपनायी। अण्णा भाऊ साठे, शंकरराव खरात इत्यादि लेखक दलित वर्ग में से उभरे परंतु इन के लेखन के मूल में मराठी

साहित्य की रोमांटिक परंपराओं का गहरा प्रभाव था। दलित साहित्य के पुरस्कर्ता इनसे भी संतुष्ट नहीं थे। दलित साहित्य को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि जो साहित्य दलितों द्वारा लिखा हुआ हो और दलित जीवन की अनुभूतियों को व्यक्त करते हुए यथास्थिति के प्रति प्रक्षोभ और विद्रोह उत्पन्न करता हो वही दलित साहित्य है। फिलहाल इसमें अंतर्निहित साहित्यिक धारणाओं का औचित्य हम छोड़ दें फिर भी यह निस्संदेह एक अच्छी शुरुआत है। मराठी के सौंदर्यवाद, कलावाद, रूपवाद से प्रभावित साहित्य को अधिक जीवननिष्ठ बनाने की संभावना का यह शुभारंभ है। इस संदर्भ में यह भी महत्वपूर्ण तथ्य ध्यान में रखना उचित होगा कि मराठी के शीर्षस्थ आलोचक वा० ल० कुलकर्णी जो शुद्ध साहित्यिक मूल्यों के प्रति विशेष सजग रहे हैं, आज कल यह कहते हैं कि रूप की चिंता न करते हुए लेखकों को अपने जीवनानुभव को व्यक्त करना चाहिये। इस संदर्भ में मराठी कथाकार बाबूराव बागूल का नाम विशेष रूप में रेखांकित करना होगा जिन्होंने 'भहरा स्वरूप होत ओर' नामक अपने पहले कथा संग्रह में झोपड़पट्टी के नारकीय जीवन का अत्यंत वस्तुमुखी, और यथार्थ अंकन किया है। वैसे जसवंत दलवी ने 'चक्र' नामक उपन्यास में और मधुमंगेश कर्णिक ने 'माहीमची खाडी' नामक उपन्यास में इस विषय का चित्रण किया था फिर भी जिस भयावह और घोर यथार्थ का प्रक्षोभपूर्ण वर्णन बाबूराव बागूल ने किया है उसकी यथार्थता तक दूसरा कोई पहुँच नहीं सकता। इसका एक कारण यह भी है कि बाबूराव बागूल का यह आँखों देखा ही नहीं भोगा हुआ जीवन है। मराठी में यह माना जाता है कि बाबूराव-बागूल का लेखन सच्चे अर्थ में दलित साहित्य का लेखन है।

आज मराठी कथा एक ओर से रूपवादी, सौंदर्यवादी और रंजकतावादी दृष्टियों के संकुचित दायरों को तोड़कर बाहर आ रही है और जीवन का सामना करने के लिये कटिबद्ध है। प्रचलित नैतिक मूल्यों और परंपरागत संस्कारों के प्रति जो विद्रोह विजय तेंडुलकर दिलिप चित्रे, इत्यादि कथाकारों में परिलक्षित होता है उसमें इस प्रक्रिया को बल ही मिल रहा है। जी. ए. कुलकर्णी, खानोलकर, ए वि. जोशी अपनी कथाओं के माध्यम से अस्वस्थ करनेवाले, पीड़ा देनेवाले प्रश्न उठा रहे हैं। मराठी कथा के विकास और विस्तार के बीच आनेवाली समस्त दीवारें ढह रही हैं। आशा है आठवें दशक की कथा पूर्ववर्ती कथा के आगे सभी स्तरों पर गतिमान होगी।

हिंदीतरभाषी हिंदी-लेखक संगोष्ठी

डॉ० मोहन लाल तिवारी

हिंदी भाषा और साहित्य का प्रचार-प्रसार करने वाली देश की संस्थाओं में परस्पर सहयोग एवं समन्वय लाने के लिये सन् १९६४ में स्थापित राष्ट्रीय स्तर के अखिलभारतीय हिंदी संस्था-संघ, नई दिल्ली के तत्वावधान में इस वर्ष वाराणसी में १० अक्टूबर से १६ अक्टूर ७१ तक हिंदीतर भाषी हिंदी लेखकों की एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। भारतीय स्तर पर हिंदी-साहित्य की प्रमुखसंस्था नागरी प्रचारिणी सभा में ऐसा आयोजन समन्वय तथा विकास की दृष्टि से उचित ही था। विविध क्षेत्रों में हिंदी साहित्य के निर्माण की दिशा तथा विविध भाषाओं में साहित्य की प्रगति के स्तर में समन्वय स्थापित करने का प्रयास इस राष्ट्रीय मंच से अपेक्षित है। इस संगोष्ठी में बाहर से हिंदीतर भाषी साहित्यकारों को ही आमंत्रित किया गया था। स्थानीय साहित्यकारों एवं साहित्यिक अध्यापकों ने भी बड़ी जिम्मेदारी के साथ हिस्सा लिया। हिंदी संस्था संघ की रूप रेखा प्रस्तुत करने वाले डा० श्री माली (कुलपति का० हि० वि० वि०) ने समारोह का उद्घाटन करते हुए कहा कि हिंदी या हिंदीतर शब्दों में हिंदी साहित्यकारों का बटवारा ठीक नहीं है। देश का एकीकरण राजनीति से नहीं साहित्य और संस्कृति से होता है। रचनाकार समाज का अंग होते हुए भी आलोचना और मार्ग दर्शन द्वारा उसे ऊपर उठाता और आगे बढ़ाता है। समारोह के अध्यक्ष मराठी भाषी श्री गोपाल परशुराम ने गोष्ठी के उद्देश्य कथन के रूप में बताया कि देश के विभिन्न राज्यों के लेखकों की सामर्थ्य और उनके क्षेत्रीय सौंदर्य के समन्वय से ही देश और साहित्य के वास्तविक सौंदर्य का विकास होगा। सभा के प्रधानमंत्री श्री सुधाकर पांडेय ने कहा कि भाषा हमारे लिये केवल संपर्क की ही नहीं, संस्कार की भी चीज है। लेखक का काम टूटे हुए दिलों को जोड़ना है, किंतु आज का साहित्यकार स्वयं टूटा हुआ है। हमारे अध्यापक और छात्र भी टूटे हुए हैं। जिस समाज में अध्यापक, साहित्यकार और कलाकार की प्रतिष्ठा नहीं होती वह समाज प्रगति नहीं कर सकता। लेखकों को चाहिए कि ये देश को जोड़ने और अभ्युदय की ओर ले जाने की कोशिश करें।

साप्ताहिक संगोष्ठी के दूसरे दिन "आज की कहानी" पर अपना विचार प्रकट करते हुए प्रो० डा० विजयपाल सिंह ने दो महत्वपूर्ण दिशाओं का संकेत किया। एक यह कि आज का लेखक अपनी कहानी में प्रमादवश या दुर्बलतावश नागरिक या ग्रामीण परिवेशों का पृथक या सम्यक निर्वाह नहीं कर पाता। घालमेल के कारण प्रतिमाएँ खंडित होती रहती हैं। दूसरे यह कि लेखक व्यक्तिगत या संवेदनात्मक अनुभूतियों की गहराई प्रस्तुत नहीं कर पाते, जिससे कहानी का फलक ही कमजोर बन जाता है। डा० रत्नाकर पांडेय ने ऐतिहासिक संदर्भ में मानवजीवन में कहानी के महत्व का प्रतिपादन किया। श्री चंद्रकांत महादेव बंदिवेडेकर ने मराठी कहानी की प्रवृत्तियों की विद्वत्तापूर्ण चर्चा और हिंदी कहानी से तुलना कर हिंदी कहानीकारों, आलोचकों एवं अध्यापकों के संमुख एक नए

क्षेत्र का उद्घाटन किया। दार्शनिकि पृष्ठभूमि एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर प्रस्तुत अध्ययन वास्तव में सराहनीय था। आज के नग्न सत्य एवं घुटन के संदर्भ में श्री सुधाकर पांडेय ने कहा कि प्रसाद, प्रेमचंद आदि युग निर्माता साहित्यकार घुटन और तनाव में ही जीवित रहे। लेकिन नग्न सत्य ही उनके लिए सब कुछ नहीं था। नग्नसत्य और उससे उत्पन्न आधुनिकता आत्म प्रवंचना को जन्म दे रही है। अमेरिकी समाज इसका सबसे बड़ा उदाहरण बन गया हैं जो घुट-घुट कर और शक्तिशून्य बनकर अंदर से लक्ष्यहीन दिशा की ओर बढ़ता जा रहा है, क्योंकि पुराना के नाम पर उनके पास कुछ है नहीं। नये के नाम पर नग्नता और आत्मप्रवंचन है। श्री नेने ने कहा कि आज की कहानी में कुंठा असंतोष और चिड़ चिड़ापन जरूर मिलता है, पर साहित्यकार की इयत्ता कोई न कोई आदर्श प्रस्तुत करने में ही निहित है। डा० कैलासचंद शर्मा ने गोष्ठी को मोड़ देते हुए कहा कि कहानी सही परिवेशों के यथार्थ में भावना और विचार दोनों का वाहक है। सिंधी भाषी विद्वान श्री मोतीलाल जोतवाणी ने कहानी में यथातथ्य चित्रण को ही अनिवार्य बताया। पंजाबी भाषी हिंदी लेखक श्री श्रवण कुमार ने कहानी को आज के जीवन की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम स्वीकार किया। साठोत्तरी साहित्य की प्रवृत्तियों की चर्चा पर विचार करते हुए डा० शुकदेव सिंह ने रोमांटिसिज्म से आधुनिकता की पृथकता का विश्लेषण प्रस्तुत किया, किंतु आधुनिकता को उन्होंने साहित्य की सिर्फ एक समग्र धारा के रूप में स्वीकार किया, जब कि विषय प्रवर्त्तक डा० विद्यानिवास मिश्र ने रोमांटिसिज्म और आधुनिकता को अविरोधी बताया। परिस्थितियों के दबाव से आनेवाली; न कि काल्पनिक आधुनिकता को उन्होंने स्पृहणीय बताया। उन्होंने शंका

समाचारपत्र (केंद्रीय) अधिनियम १९५६

[नियम ८, फार्म ४] के अनुसार 'नागरी पत्रिका' मासिक [हिंदी] के स्वामित्व तथा तत्संबंधी

अन्य विवरण

१—प्रकाशन का स्थान — वाराणसी
२—प्रकाशन की अवधि — मासिक
३—मुद्रक का नाम — शंभुनाथ वाजपेयी
राष्ट्रीयता — भारतीय
पता—नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
४ प्रकाशक का नाम — शंभुनाथ वाजपेयी
राष्ट्रीयता — भारतीय
पता — नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
५—संपादक का नाम — सुधाकर पांडेय
राष्ट्रीयता — भारतीय
पता—नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
६—इन व्यक्तियों के नाम और पते जो इस पत्रिका के मालिक या साझेदार हैं या जो उसकी पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझीदार हैं। — नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

मैं, शंभुनाथ वाजपेयी, घोषित करता हूँ कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी पूरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही हैं।

शंभुनाथ वाजपेयी

दिनांक १ फरवरी, १९७२ —प्रकाशक

प्रकट की कि पश्चिम से फैशन के रूप में प्राप्त आधुनिकता कहीं जीवन से कट न जाय। श्री विष्णुकांत शास्त्री ने आधुनिकता की नवीनतम धारा को श्मशानी संप्रदाय से जोड़ दिया और कलकत्ता की ऐसी पीढ़ी की विशद चर्चा कर बताया कि कैसे श्मशान में कविसंमेलन हुआ, आधुनिक कवियों ने मौत को सामान्य सत्य मान कर लाशों और चिताओं को साक्षी बनाया तथा बताया कि किस प्रकार उनके लिये जीवन की भाँति मौत भी उतनी ही प्रिय और सामान्य बन गई है। बाहर के प्रतिनिधियों को इसमें कुछ विस्मय सुनाई पड़ा पर काशी के लोगों को नहीं, क्योंकि वे औघड़ पंथियों को मुर्दे की खोपड़ी में भीख माँगते और भोजन करते देख लिया करते हैं। मणिकर्णिका घाट के श्मशान पर यह एक जीवनक्रम है। कलकत्ते की सड़कों पर जीवन-मृत्यु के नित्य खेल की, प्रत्यक्ष संत्रास की चर्चा कर शास्त्री जी ने पूछा कि क्या वहाँ जीवनक्रम विच्छिन्न हो गया है? और यदि नहीं तो हमें साहित्य के उच्च मूल्यों से विरत नहीं होना चाहिए क्योंकि वहाँ आज की परिस्थिति में भी उच्च सृजनकार्य निरंतर होते चल रहे हैं। डा० शंभुनाथ सिंह ने कहा कि जिस साहित्य में युगस्वर समग्र रूप में मुखरित हो, वही आधुनिक साहित्य हो सकता है, सांप्रदायिकता को आधुनिकता नहीं माना जा सकता।

'काव्य में मानवता और राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति' विषय पर चर्चा में इतिहास की पुनः व्याख्या की गई और भावी साहित्य के लिए प्रेरणास्रोत की तलाश की गई। वास्तव में यह गोष्ठी सन् ४७ से पूर्व के भारतीय साहित्य की प्रवृत्तियों का सिंहावलोकन एवं उसके लोकमंगलकारी मूल्यों के निर्वचन (इंटरप्रेटेशन) की गोष्ठी थी। पं० बलदेव उपाध्याय ने काव्य में दो विशेषताओं—

मगंला और मनोहरा—को अनिवार्य बताया। डा० शंभुनाथ सिंह ने कहा कि कला, काव्य या सौंदर्य व्यक्तिगत मान्यताओं पर निर्भर करता है। डा० भोलाशंकर व्यास नेप्रश्न उठाया कि मानवता और निश्चित ढंग की राष्ट्रीयता पर बल देने से क्या हम काव्य की मूल आत्मा से दूर तो नहीं चले जायँगे? केवल मनोहर और मंगलमय वाणी को ही काव्य की संज्ञा देने से अनेक काव्यकृतियां इस उपाधि से वंचित हो जायँगी। श्री ठाकुरप्रसाद सिंह के मत से राष्ट्रीयता और मानवता काव्यविरोधी तत्व नहीं हैं। डा० मोहनलाल तिवारी ने काव्य में राष्ट्रीयता को किसी समुदाय की राजनीति से प्रभावित सांस्कृतिक धारा के भीतर निश्चित परिवेश की साहित्यिक धारा बताया, जो अपने में मानवता की शीतलता रखती है। श्रीमती योगष्टि माणिक्यांबा के मत से भावुकता को काव्य में राष्ट्रीयता एवं मानवता से अधिक प्रश्रय देना चाहिए। 'नाटक और साहित्यसृजन' की गोष्ठी में पं० करुणापति त्रिपाठी ने कहा कि जिस दिन मनुष्य ने अमूर्त भावों को मूर्त स्वरूप देना सीखा, उसी दिन नाटक अस्तित्व में आया। आधुनिक संदर्भ में इसकी व्याख्या करते हुए डा० दशरथ ओझा ने कहा कि नये प्रयोग धर्मी नाटकों में तनाव की अनुभूति को स्वरूप देने एवं अभिनीत करने पर ही बल दिया जा रहा है। यद्यपि संवेदनात्मक तनाव अपने-आप में नया नहीं है, पर उसकी अभिव्यक्ति ने वर्तमान में नई शैली ग्रहण कर ली है। डा० केशवप्रसाद सिंह ने नाटक प्रस्तुत करने में नाट्यानुभूति की अवतारणा पर बल दिया। श्री एस० राधाकृष्णन् ने 'आधे-अधूरे' के संदर्भ में कहा कि तनावपूर्ण या ह्रासमान मूल्यों को मूर्त करनेवाले नाटकों का समाज निर्माण में योगदान संदिग्ध है।

'साहित्य में परंपरा का महत्व' विषयक गोष्ठी एक सफल गोष्ठी थी। पं० करुणापति त्रिपाठी

ने परंपरा को जीवन का गतिशील चिह्न बताया। गति को रुद्ध करनेवाली परंपरा रूढ़ि है। पं० सीताराम चतुर्वेदी ने कहा—परंपरा साहित्य-सृजन में नितांत बाधक है। यही कारण है कि यूरोप में एक किस्म की आधुनिक-प्रवृत्तियों वाले साहित्य भी अपनी देशगत संस्कृति एवं परंपरा के कारण भिन्न हो जाते हैं। बच्चन सिंह ने साहित्य में परंपरा को यथास्थिति बनाये रखने के लिये एक आड़ बताया तो सुधाकर पांडेय ने परंपरा को व्यक्ति का धर्म बताया और कहा कि परंपरा की भित्तिपर ही नए स्वर फूटते हैं। परंपरा जीवन का विकासमान तत्व है। प्रसाद, निराला, अज्ञेय हमारी परंपरा की प्रवहमान कड़ियाँ हैं। श्री मोतीलाल जोतवाणी ने कहा कि साहित्य व्याकरण के भूत, भविष्य तथा वर्तमान की सीमा-रेखाओं में बँधनेवाला तत्व नहीं है। वह निरंतर प्रवहमान सरिता की धारा है, जो अजेय और अनवरुद्ध है। डा० शिवकरण सिंह ने सर्जनाका संबंध आंतरिक उद्वेलन से जोड़ दिया।

'उपन्यास साहित्य' विषयक गोष्ठी में डा० केशवप्रसाद सिंह ने इतिहास की दृष्टि से कहा कि यद्यपि हिंदी उपन्यासरचना स्वतंत्रता संग्राम के साथ प्रारंभ हो जाती है, पर एक विधा के रूप में वह अपना स्थान स्वतंत्रता के बाद ही बना सकी। पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उपन्यास को आधुनिक चीज बताया। उपन्यास अर्थप्रधान होता है जिसका संबंध बुद्धि से होता है। उपन्यास लिखने के लिये अधुनातन ज्ञान की आवश्यकता होती है। डा० शिवप्रसाद सिंह ने कहा कि पिछले बीस वर्षों के नव लेखन साहित्य में उपन्यास ही सबसे कमजोर विधा रही है। सन् ६० के बाद के केंद्रीय विधा कहानी हो गई है। मराठी में निबंध और समीक्षा केन्द्रीय विधाएँ हैं तो बंगला में उपन्यास प्रमुख है। पर हिंदी में ऐसा नहीं है। मनोविश्लेषण के आने से कृत्रिम चरित्रों की ही सृष्टि हुई है। सन् ५० के बाद के साहित्यको उन्होंने ऐसे समाज का साहित्य बताया जिसके मूल्य विघटित हो गए हैं। नये मूल्य पनप नहीं पाये हैं। उपन्यासकार ही जीवन का सम्यक् चित्रण कर सकता है। कहानीकार यह सब नहीं कर सकता। आज के कहानीकार के पास उपन्यास लिखने का फलक ही नहीं है। डा० कैलासचंद्र शर्मा ने इस स्थापना को गलत बताया कि कहानी इतनी हल्की विधा है कि उसमें जनजीवन की सूक्ष्मताओं एवं अंतर्वेदनाओं को मात्र सीमितरूप से प्रस्तुत किया जा सकता है। उन्होंने कहा कि कहानी में भी पूरे जन-जीवन की अंतर्व्यथा को सफलतापूर्वक सूक्ष्मता एवं ग्रहणता के साथ उसी प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है जैसा किसी सशक्ततम उपन्यास के माध्यम से। 'संस्थासंघ' के मंत्री तेलुगु भाषी श्री आंजनेय शर्मा ने अस्वीकार किया कि हिंदी में उत्तम उपन्यासों की कमी है। इतना अवश्य है कि

'उसमें जीवन की वे मूल प्रवृत्तियाँ तीव्रता एवं उचित रूप से नहीं उभर पा रही हैं, जिनके प्रस्तुतीकरण की आज आवश्यकता है। सामान्य साहित्यिक प्रवृत्तियों की चर्चा में डा० नागेंद्रनाथ उपाध्याय ने कहा कि साहित्यिक मूल्यांकन में पहले काव्य शास्त्रों की निर्णायक भूमिका हुआ करती थी। अब सामान्य दैनिक जीवन की समस्याएँ और मनोदशाएँ प्रमुख हो गई हैं। इसके साथ लेखक या रचनाकार की वैयक्तिकता भी महत्वपूर्ण बनती जा रही है। अब मूल्यांकन करते समय अंतर्राष्ट्रीय परिस्थियों एवं राजनीतिक सांस्कृतिक संघर्षों पर भी दृष्टि रखनी होगी। श्री चंद्रकांत महादेव बंदिवेडेकर ने मराठी हिंदी साहित्य की तुलनाकर इस बात पर जोर दिया कि रचनाकार का जीवन रचना के संबंध में इतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि जीवन के तनाव, जिनके प्रभाव में रचना जन्म लेती है। डा० कैलासचंद्र शर्मा ने सौंदर्य लालित्य एवं रस की शास्त्रीय पद्धति के संदर्भ में ही आधुनिक 'भावबोध एवं बौद्धिक संवेदन शीलता' को पकड़ने का प्रस्ताव किया तो डा० मोहनलाल तिवारी ने 'आधुनिक साहित्यिक प्रवृत्ति के केंद्रबिंदु, संत्रास, घुटन और तनाव को भारतीय जीवन एवं साहित्यिक अभिव्यक्ति पर अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति का एक प्रतिरोपण' बताया और इन्हें चीन तथा अमेरिका में चल रहे युवा राजनीतिक आंदोलनों के संदर्भ में देखने समझने का प्रस्ताव किया। श्री आंजनेय शर्मा ने बताया कि जहाँ पाश्चात्य देशों के लोग नई बात को शीघ्र पसंद करते हैं, वहीं हम भारतीय प्राचीनता प्रेमी होते हैं। हमारे साहित्य और संस्कृति में विचारों की अभिव्यक्ति के लिये तथा मतों के खंडन मंडन के लिये सदैव स्वतंत्रता रही है और यह एक स्वस्थ प्रवृत्ति है। श्री मोतीलाल जोतवाणी ने मत व्यक्त किया कि 'रचनाकार व्यक्ति होता है, लेकिन रचना प्रक्रिया में व्यक्ति और समष्टि में अभेद स्थापित कर वह समष्टि का वक्ता बन जाता है।

'हिंदी के सार्वदेशीय स्वरूप' विषयक गोष्ठी में विषय का प्रस्ताव करते हुए डा० मोहनलाल तिवारी ने कहा कि हिंदी एवं हिंदीतर प्रांतों में

आंचलिक विविधता के होते हुए भी हिंदी का एक सर्वमान्य स्वरूप चलता रहेगा, जैसे वेल्स, इंगलैंड और स्काटलैंड में विविधता के बाद भी अंग्रेजी का एक स्वरूप किया गया है। हिंदी के इस मौलिक ढाँचे में समितियाँ या विद्वान् कोई परिवर्तन नहीं कर सकते। डा० भोलाशंकर व्यास ने गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए अपनी स्थापना में कहा कि राष्ट्रीय हिंदी के परिनिष्ठित स्वरूप का व्यावहारिक निर्णय समस्त देश की जनता करेगी और इसका नियामक कालदेवता होगा' उन्होंने शास्त्रीय, साहित्यिक एवं बोलचाल की हिंदी को एक दूसरे से किंचित भिन्न बताया। 'परिनिष्ठित स्वरूप की कल्पना शास्त्रीय विषयों के लिये संभव है, किंतु सर्जनात्मक साहित्य के लिये उक्त रूप में नहीं। बोलचाल की हिंदी में क्षेत्रीयता का प्रमाद निश्चय ही दृष्टिगोचर होगा, जिसमें अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के मुहावरों, लोक कथाओं, अभिव्यक्ति शैलियों और सांस्कृतिक उत्तराधिकारों का प्रभाव रहेगा। अन्य भाषाओं के भाषागत एवं साहित्यिक प्रयोगों से हिंदी की शक्ति एवं समृद्धि में वृद्धि होगी।' श्री आंजनेय शर्मा एवं हिंदीतर भाषी सर्वश्री काशीनाथ सारंगमठ, सुब्रह्मण्यम, गुरुनाथ जोशी, गजानन नरसिंह साठे, बनमाली दास, एस० चंद्रमौलि आदि ने हिंदी व्याकरण की कठिनाई की ओर ध्यान आकर्षित किया एवं लिंग, वचन, विभक्ति, परसर्ग (ने प्रयोग सहित), अनुस्वार, अनुनासिक एवं पद-रचना के अनेक तिर्यक् रूपों की समस्याओं को उभाड़ा और मांग की कि हिंदी के एक परिनिष्ठित स्वरूप के बिना हिंदीतर भाषी जनता को हिंदी पढ़ने और लिखने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। हिंदी क्षेत्र में आंचलिक भाषाओं के साहित्यिक प्रयोग से हिंदीतर भाषी लोगों की कठिनाई और बढ़ रही है। एक संभावना भी व्यक्त की गयी कि व्याकरण के माध्यम से हिंदी सीखने के कारण संभव है भावी परिनिष्ठित हिंदी का राष्ट्रीय स्वरूप हिंदीतर भाषी क्षेत्रों में ही विभासित हो। अमेरिका के हिंदी विद्वान् श्री क्रिस्टोफर किंग ने इस दिशा में धीमी गति अपनाने का परामर्श दिया।

अंतिम दिन गोष्ठी का समापन करते हुए श्री सुधाकर पांडेय ने हिंदी संस्थासंघ को भारतीय भाषाओं की सोलह कलाओं का एक पूर्ण विकसित स्वरूप बताया। मंत्री श्री आंजनेय शर्मा ने कहा कि हिंदीतर भाषी हिंदी लेखकों की संख्या लगभग ३०० है, जिसमें २५ ऐसे लेखक हैं, जिन्हें उच्च हिंदी लेखकों की कोटि में रखा जा सकता' है। हमारा काम समस्त हिंदी साहित्य में समन्वय स्थापित करना और उसे आगे बढ़ाना है। डा० शंभुनाथ सिंह एवं नजीर बनारसी के कवितापाठ से गोष्ठी का सुखद समापन हुआ।

इस गोष्ठी में काशी के प्रायः सभी प्रबुद्ध साहित्यकारों एवं समीक्षकों ने भाग लिया। कवि गोष्ठी को सफल बनाने में डा० शंभुनाथ सिंह लालधर त्रिपाठी, चंद्रशेखर मिश्र, विजय बलियाटिक हरिराम द्विवेदी, बुद्धिनाथ मिश्र, नजीर बनारसी सूँड़ फैजाबादी, शलभ उमाशंकर तिवारी आदि कवियों ने पूरा योग दिया। गोष्ठी का प्रमुख उद्देश्य था—भारतीय भाषाओं के साहित्य में तथा हिंदीतर भाषियों द्वारा लिखे गये हिंदी साहित्य में (जो लगभग ३०० मुद्रित पुस्तकों के रूप में सामने आ चुका है) समन्वय लाना।

गोष्ठी ने यह प्रमाणित किया कि हिंदीतर भाषा भाषी हिंदी लेखक सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक साहित्य (हिंदी में) प्रस्तुत करने में हिंदी भाषी लेखकों से पीछे नहीं हैं।

●

संविधान का हिंदी अनुवाद

"१७ सितंबर १९४८ को संविधान सभा ने प्रस्ताव पास कर अध्यक्ष को यह अधिकार दिया कि हिंदी में संविधान का अनुवाद कराने के लिए वह आवश्यक कदम उठावें तथा उस अनुवाद को अपने अधिकार से २६ जनवरी १९५० तक प्रकाशित कर दें। इसी प्रस्ताव के आधार पर संविधान के हिंदी अनुवाद को २४ जनवरी, १९५० को संविधान सभा के सामने रखा गया और सभी सदस्यों ने उस पर हस्ताक्षर किये। वह प्राधिकृत अनुवाद है और उसमें शक की कोई गुंजाइश नहीं है। इसमें संदेह उत्पन्न करने का प्रयत्न हिंदी और देश दोनों के विरुद्ध एक षडयंत्र है।'

उपर्युक्त वाक्य हैं नागरीप्रचारिणी सभा के प्रधान मंत्री एवं संसद सदस्य श्री सुधाकर पांडेय के जिन्हें पांडेय जी ने संविधान के हिंदी अनुवाद पर की जानेवाली उन टिप्पणियों के उत्तर में कहा था जिनके द्वारा कुछ लोग अकारण ही विधि मंत्रालय हिंदी सलाहकार समिति के कार्यों में अवरोध उत्पन्न करना चाहते थे।

संसद सदस्य श्री अमरनाथ विद्यालंकार के इस कथन का उत्तर देते हुए कि उस समय संविधान के दो अनुवाद प्रस्तुत किए गए थे, श्री पांडेय ने कहा कि संविधान सभा की कार्यवाही के विवरण के अनुसार सदस्यों ने एक ही अनुवाद पर हस्ताक्षर किए थे। इसके अलावा हिंदी संविधान की भूमिका जो डाक्टर राजेंद्रप्रसाद की लिखी हुई है, उसमें भी यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यही अधिकृत अनुवाद है।

इसी संदर्भ में श्री नीरेन दे की टिप्पणी के संबंध में श्री सुधाकर पांडेय ने कहा, जो व्यक्ति हिंदी जानता ही नहीं, हिंदी अनुवाद के बारे में उसकी राय का भला क्या महत्व हो सकता है। साथ ही इस संबंध में श्री दे का सारा दृष्टिकोण नकारात्मक है। इसलिये भी उसपर बहुत महत्व नहीं दिया जाना चाहिए।'

ज्ञातव्य है कि विधि और न्याय मंत्रालय की हिंदी सलाहकार समिति ने गत ४ फरवरी को जब संविधान के हिंदी अनुवाद के मामले पर विचार किया था, उस समय देश की राजधानी में ये विचार व्यक्त किए गए थे। संविधान के हिंदी अनुवाद का मामला राजभाषा आयोग तथा महाधिवक्ता श्री नीरेन दे की टिप्पणियों के कारण एक अद्भुत रूप में कुछ काल से उठ खड़ा हुआ है। इनके द्वारा उक्त अनुवाद पर क्लिष्टता और अपरिपक्वता का आरोप लगाया गया था। इस विषय में श्री दे ने अपना पक्ष प्रस्तुत करते हुए यहाँ तक लिखा कि हिंदी में अधिकृत संविधान संभव नहीं है।

सभा के प्रधान मंत्री एवं संसद सदस्य श्री सुधाकर पांडेय ने इस संबंध में जो उत्तर पक्ष प्रस्तुत किया वह अपने आप में विशेष महत्व तो रखता ही है साथ ही एक सटीक उत्तर भी है।

पुष्यमित्र शुंग की आत्मकथा से

सेनापति के पद पर

श्री भगवतीप्रसाद पांथरी

मौर्यों के अनेकानेक सामंतीय राज्यों में विदिशा का अग्रस्थान था, किंतु अपने पूर्वजों की तरह मुझे भी अपने नाम के साथ राजा शब्द जोड़ना कभी रुचिकर नहीं लगा—सम्राट् होने पर भी नहीं। दुर्बल मौर्य राजाओं को देखकर मुझे मन में सदा यही लगता रहा कि राष्ट्र को राजा शब्द से अलंकृत भीरु पुरुष की नहीं, भुजबली सेनापति की आवश्यकता है। अपनी सुरक्षा और समृद्धि के लिये राष्ट्र को, समान रूप से पुरस्कार और दंड देने की सामर्थ रखनेवाला सेनापति चाहिए, भोग में रत राजा नहीं। यही कारण है कि मुझे अपने को राजा के बजाय सेनापति कहने में ही गौरव लगा है।

आश्रम से विदिशा पहुँचने के बाद मैं निरंतर इसी विचार में तल्लीन रहा करता कि कब वह घड़ी आएगी जब मौर्यवाहिनी का मैं सेनापति हो जाऊँगा। वैसे तो पिता के बाद उनके उत्तराधिकारी के रूप में मेरा सेनापति होना ऐसा ही निश्चित था जैसे राजा के बाद उसके युवराज का सिंहासन पर आसीन होना। हम अन्वयप्राप्त सेनापति थे। लेकिन शंका होने का कारण था—बौद्ध अमात्यों और बौद्ध प्रभावित राजपरिषद् का मेरे प्रति विरोध का भाव। बौद्धों को यह प्रत्यक्ष विदित था कि मैं बल का उपासक हूँ, तलवार का पुजारी हूँ और शक्ति का आराधक। विदिसा में जिस प्रकार मैंने सेना का संगठन किया और शर-शूर अश्वारोहियों व पदातियों की पंक्तियां खड़ी कीं, उस सबकी भी बौद्धों को खबर थी। बल की यह वृद्धि उन्हें हिंसा को जगानेवाली और अहिंसा को डुबानेवाली प्रतीत हुई। अतः वे निरंतर अपने भीरु राजा का मेरे विरुद्ध यह कान भरते गए कि मैं अपना बल और कोष बढ़ा रहा हूँ ताकि मौर्यकुल को उखाड़ फेंक स्वयं राजपद पर आसीन हो सकूँ। साथ ही उन्होंने बल देकर यह भी इंगित किया कि शस्त्रउपासना जो पुष्यमित्र कर रहा है, अहिंसा धर्म के बिल्कुल विपरीत है और उससे वह अवीचि को पहुँचाने वाली हिंसा को ही जगा रहा है। अतः बौद्धों का कहना था कि देवानाम् प्रिय अशोक की स्वर्गीय आत्मा निश्चय ही अपने इस सामंत की बल उपासना से व्याकुल होकर अकुला रही होगी। वैकुंठ में देवानाम् प्रिय यही सोचते होंगे कि शस्त्रविजय का परित्याग कर, धर्मविजय अपनाने का जो मार्ग वे अपने वंशजों को अनुशासित कर गए थे उससे अब वे भटक चले हैं। राजा को वह यह भी सुझाते थे कि यदि क्षण पल यह भी मान लें कि पुष्यमित्र ने जो बल बढ़ाया है उसे वह अपने सम्राट् की साम्राज्यवृद्धि में ही काम लाएगा, तब भी वह धर्म की ही हानि करेगा। क्योंकि शस्त्रविजय तो निसर्गतः हिंसा के पापपंक में डुबानेवाली होगी और इसलिये बुद्ध के अनुरक्त धर्मविजयी मौर्य नृपतियों के लिये वह ग्रहणीय नहीं त्याज्य

है। कर्महीन, भोगरत, प्रमादी मौर्यों को अपनी अशक्तता छिपाने के लिये अपनेको धर्मविजेता कहना बहुत भाता था। धर्मविजयी कहलाने से उन्हें क्षत्रियधर्म से छुट्टी मिल गई थी। राज्यों को शस्त्र से जीतने में असमर्थ होने से वे अपने अहंकार को धर्मविजय के खोखले घोष से ही पोसने लगे थे और उसे सिंहगर्जना का नाम दिया करते थे। लेकिन ये गरजनेवाले सिंह मिट्टी के थे। इसीलिये मगधसाम्राज्य के अंतर के जनपद एक एक कर जब केंद्रों से छिटककर अलग होते गए तो मौर्य नृपति अपनी अशक्तता से शस्त्र के प्रयोग में हिंसा देख, धर्म के नाम पर पृथक् होनेवालों को अपने मनमाने बढने को निर्बाध छोड़ दिए। अतः बौद्धों ने ऊँचे स्वरों में मेरे बल की निंदनीय और पापमय व्याख्या की तो उसका मौर्य राजा पर मेरे विपरीत प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

मेरी शंका उस समय से और भी बढ़ गई जब विदिसा से मेरे पास यह मौर्य शासन पहुँचा कि सेना के संगठन से अधिक धर्म के संगठन के लिये भिक्षु शांतिसेना का निर्माण करो और वर्तमान सैन्यसंख्या को घटा कर न्यूनतम कर दो। मुझे यह शासन विषबुझे बाण जैसा पीड़ित करनेवाला लगा था। किंतु समय पहचानकर कार्य करने का महर्षि प्रदत्त अनुशासन को याद कर, मैंने तब अपने उबलते उफनते क्रोध को संयत करके बाहर नहीं निकलने दिया। लेकिन मैंने मौर्य राजा को स्पष्ट शब्दों में यह प्रतिलेख भेजा कि ऐसे समय पर जब दक्षिणापथपति कहलानेवाले सातवाहन राजाओं की ललचायी आँखें विदिसा और अवंति पर गिद्धदृष्टि लगाये हैं, सेना का बल घटाना राष्ट्रविरोधी कार्य होगा। अतः मैं इसे पापकर्म समझता हूँ। मैं राज्य का सेवक हूँ, प्रहरी हूँ, पाषंडीय धर्म का प्रचारक नहीं। अतः पाषंडीय धर्म के नाम पर

इस निबंध के लेखक पं० भगवतीप्रसाद पांथरी इतिहास के सिद्धहस्त लेखक हैं। इन्होंने भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध व्यक्तियों का विवरण आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत करके इतिहास के पठन-पाठन को रोचक बनाने का स्तुत्य प्रयास किया है। अब तक 'चंद्रगुप्त मौर्य की आत्मकथा' और 'समुद्रगुप्त की आत्मकथा' पुस्तकाकार प्रकाशित हैं।

यहाँ 'पुष्यमित्र शुंग की आत्मकथा' का एक अंशप्रस्तुत है।

मगध के जनपदों को शत्रुओं के उपयोग के लिये बलहीन रखना मैं अपना कर्तव्य नहीं मान सकता। राज्य का सैनिक होने के नाते मैं पूरे बल के साथ शत्रु से जूझ जाने में ही धर्म समझता हूँ। हमारा धर्म वास्तव में देश और जन की रक्षा करना और उसकी समृद्धि बढ़ाना है और यह बिना बल के, बिना पौरुष के, बिना पराक्रम के कैसे संभव हो सकता है? मेरी दृष्टि में अपने राष्ट्र की रक्षा के लिये बल को समुद्रित करना हिंसा नहीं अहिंसा है। युग की यही माँग है और यही वास्तविक धर्म भी। सौभाग्य से इस पत्र को प्रेषित करने के बाद पाटलिपुत्र से फिर सेना को तोड़ने का मुझे दुबारा शासन नहीं प्राप्त हुआ। यद्यपि मेरे संबंध में पाटलिपुत्र में यह अवश्य निश्चय कर लिया गया था कि मुझे अपने पिता के साथ उप सेनापति न नियुक्त किया जाय अन्यथा यह हिंसावादी अन्वयप्राप्त रूप से अपने पिता के बाद निसर्गतः सेनापति पद पर भी आसीन हो जाएगा और यदि ऐसा हुआ तो यह धर्मविजय के लिये एकदम सांघातिक बात होगी।

फलतः १५ वर्ष बीत गए और मैं विदिशा में ही बना रहा। किंतु अंततः मौर्य नृपतियों ने परिस्थियों से बाध्य होकर मुझे पिता के साथ उप-सेनापति बनाए जाने की स्वीकृति प्रदान कर दी थी। यह स्वीकृति भी मुझे अपने आचार्य पतंजलि

के सुप्रयत्न से ही प्राप्त हुई थी। पाटलिपुत्र में आचार्य के सतीर्थ्य वररुचि कात्यायन भी अमात्यों में स्थान रखते थे। वररुचि और मेरे आचार्य दोनों ने अयोध्या के सुप्रसिद्ध आचार्य वर्ष के पास विद्याध्ययन किया था। महर्षि के बाद व्याकरण के पंडितों में वररुचि का ही नाम आता है। जिस तरह मेरे आचार्य पाणिनी के महाभाष्यकार होने की प्रसिद्धि रखते हैं, उनके सतीर्थ्य वररुचि पाणिनी व्याकरण के वार्तिककार होने से विश्रुत हैं।

सामान्य लोगों में यह धारणा प्रचलित है कि वैयाकरणिक शुष्क प्रकृति अथवा नीरस स्वभाव के होते हैं और इसलिये उनमें जीवन को आनंद के स्फुरण में स्पंदित करनेवाले काव्य की रमणीयता एवं रागात्मकता का अभाव होता है। अर्थात् वे शब्दों के मर्मज्ञ तो होते हैं लेकिन शब्दों में वे रसात्मकता उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होते। किंतु अपने आचार्य और महामना आमात्य वररुचि के सान्निध्य से मैं लोगों की इस धारणा को भ्रममूलक मानता हूँ। मेरे आचार्य महर्षि पतंजलि के शब्दों और छंदों में निश्चय ही काव्य रचना नहीं की है, लेकिन मुझे उनका मनोहर जीवन ही एक उत्कृष्टतम् काव्य के जैसा प्रशांत, रसमय और रमणीय लगा है। उनके कार्यों में, उनके रहन-सहन में, उनकी वाणी में और भृकुटियों में भी मुझे काव्यकी की रमणीयता व रसात्मकता का ही बोध हुआ है। सृष्टि की काव्यमय रचना करनेवाले कवि पुराण भगवान् की तरह ही मैं अपने आचार्य को विचारों की काव्यमय सृष्टि करनेवाला कवि मानता हूँ।

लेकिन महर्षि के सतीर्थ्य वररुचि तो जैसे उत्कृष्ट वैयाकरणी थे काव्य रचना में भी उसी तरह सिद्ध थे। अर्थ और भाव के गांभीर्य से रमणीय उनकी शब्दावली और रस से पूर्ण उनकी पदावलि शुष्क और नीरस हृदयों को भी भाव-विभोर कर देती है। उनका काव्य सरस्वती के कंठ से आभरण की तरह ही शुचि, सुंदर और आकर्षक है। महाकवि वररुचि की काव्यात्मकता से आकृष्ट हो कर ही महर्षि अपने भाष्य में वाररुचंकाव्यम् का उल्लेख कर उन्हें यथोचित संमान देना नहीं भूले हैं। इसीलिये महाकवि वाररुचि की महान् काव्यकृति को कंठाभरण नाम प्रदान किया था। मेरे आचार्य महान् थे और महान् पुरुष दूसरों के, मित्र और शत्रु दोनों के, गुणों की बड़ाई करने में कभी भूला-बिसरा नहीं करते। अतः जिस महाकवि वररुचि के काव्य के स्वयं मेरे आचार्य प्रशंसक रहे हैं, उनके काव्य-कौशल की प्रशंसा में अपनी तरफ से कुछ कहने का साहस नहीं होता। मैं इतना ही कहूँगा कि उद्विग्नता के उन क्षणों में जब कभी मेरी हृत्तंत्री के तार शिथिल हुए हैं तब तब उनके काव्य के स्वरों ने मेरे हृदय की वीणा को पुनः, जीवन की झंकार प्रदान की है। इसीलिये मैं यह मानता हूँ कि महर्षि के बाद मुझे अपने जीवन के संघर्ष में यदि किसी अन्य से कोई प्रेरणा मिली तो वह वररुचि ही थे।

आचार्य वररुचि दंडनीति में भी कुशाग्रबुद्धि थे। एकबार अंतःकक्ष में उन्होंने मौर्यराजाओं के कृतित्व से हीन और अंहकार से पूर्ण सम्राटीय गौरव प्रदर्शन पर कटाक्ष करते हुए कहा था—चन्द्रगुप्त और अशोक के ये निर्बल वंशज अपने को उनके जैसा ही समझा करते हैं। चंद्रगुप्त राजकाज करते कभी थकता न था और अशोक का संपूर्ण जीवन प्रजा के लोक परलोक की हितचिंता और साधना में ही बीता। तब न जाने प्रजा से मुख मोड़कर अग्निवर्ण की तरह विलास में डूबे रहनेवाले ये पिछले मौर्य किस तरह अपने को चंद्रगुप्त और अशोक जैसा अनुभव करते हैं।

सचमुच पिछले मौर्य राजा नाम के ही राजा रहे काम के नहीं। राजा का जीवन अविश्रामी कहा गया है, लेकिन परवर्ती मौर्य-नृपतियों का जीवन विश्राम में ही बीतता था। लोकतंत्र का

स्खलित होना तब स्वाभाविक ही था। इसीलिये पिछले मौर्यों के शासन में अनुशासन कहीं रह ही नहीं गया था। राजा और प्रजा सब अपने लिये ही जीने लगे थे। दूसरे का विचार करनेवाला और राष्ट्र के लिये सोचनेवाला तो कोई रह ही नहीं गया था। मात्र स्वार्थसिद्धि सबका ध्येय और लक्ष्य हो चला था। पिछले मौर्य जनता से छठां अंश लेने में तो पूरे सतर्क रहे लेकिन लेकर देना नहीं जाने। सूर्य पृथ्वी से जल खींचता है लेकिन जलदों द्वारा उसे पृथ्वी पर ही बरसा देता है। प्रजा से कर ग्रहण करने वाले राजा का भी यही आदर्श माना गया है। किंतु इस आदर्श से मौर्य च्युत हो चुके थे। वे तपते थे बरसते नहीं। पतित मौर्य केवल अपने थोथे बोलों और वचनों द्वारा ही अपने को परम अहिंसक, धर्मविजयी और धर्मरक्षक घोषित करते रहे। ये पिछले मौर्य वीरता और धर्मपरायणता में सचमुच अपने को चंद्रगुप्त और अशोक से किसी तरह कम नहीं समझते थे। राजकुल में जन्म होने के संयोग से मगध के सिंहासन पर बैठकर वे ऐसा प्रतीत करते रहे जैसे मगध साम्राज्य के वे ही निर्माता और विधाता हों। अपनी त्रुटियों को ही वे गुण समझ बैठे थे और अपनी अशक्तता को शक्ति मान बैठे थे। ये बोल कर ही अपना शौर्य प्रकट करते थे। उनकी इस प्रवृत्ति पर व्यंग करते हुए अमात्य वररुचि ने एक बार मुझसे कहा था कि मौर्यों के इस अहंकार पर मुझे हंसी आती है, और साथ ही यह देख कर क्लेश भी होता है कि इन सामर्थ्यहीनों के हाथ देश की क्या दशा हो गई है और यदि ये बने रहे तो आगे न जाने देश की क्या दशा हो जाएगी? ये बौने यह नहीं समझते कि जिस सिंहासन पर ये हैं वह संयोग से से ही उन्हें मिला है—स्वभुजबल से नहीं। और तब उन्होंने चुटकी लेते हुए यह श्लोक सुनाया था

वामन! फलमत्युच्चात्तरुतो मरुतोपनीत मुपलभ्य।
युक्तं यत्तं तृप्यसि दृप्यसि चैतत्तु हास्यतरम्।

अर्थात् ऐ बौने इस बहुत ऊंचे पेड़ से अचानक हवा के झोंके से टपके हुए फल को पाकर जो तुम तृप्त होते हो सो तो ठीक है, लेकिन फल तोड़ने का जो गर्व कर रहे हो इससे बढ़कर हँसने की बात और क्या हो सकती है? अर्थ और भाव से थिरकते कवित्व को सुनकर मुझे हँसी तो आई ही लेकिन साथ ही मेरी बुद्धि कवि की सूक्ति पर खिलखिला भी उठी थी। निःसंदेह दूसरे की उपलब्धियों को अपनी कहकर प्रचारित करने से अधिक हास्यास्पद और कोई बात नहीं हो सकती थी। यह प्रवृत्ति ही उस अहं को जन्म देनेवाली है जिसे दंभ कहते हैं। दंभ का ही दूसरा नाम अहंकार है और अहंकारी किसी का भला नहीं कर सकते। अहंकारी स्वकामी होने से सदा अपने स्वार्थ अर्जन में समाधिस्थ रहते हैं आँखें बिलकुल मूँदे हुए।

अहंकारी आँख मूँदे मौर्यों के शासन में प्रजा भी उन्हीं की जैसे स्वार्थपरायण और देश के प्रति उदासीन हो चली थी, और अहिंसा की मूर्छना में सोया राष्ट्र शौर्यविहीन हो चला था। इस सबका परिणाम यही हुआ कि देश समाज और राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व ग्रहण करने के बजाय देश के नौनिहाल स्कंधों पर पीत वस्त्र झुकाकर भिक्षु बनने में ही गौरव समझने लगे थे और शेष जिन्होंने भिक्षुधर्म नहीं ग्रहण किया, उनमें से अधिकांश अंगुलिमाल के पथ पर अग्रसारित हो जनपीड़क बन गए थे। इस तरह लोगों में कर्तव्य और धर्म के प्रति आस्था प्रायः रह ही नहीं गई थी। परिणाम यह हुआ कि देश भिक्षुओं और अपराधियों से भर गया; लोगों के पास न तो खाने को पर्याप्त था और न ओढ़ने ढकने को वस्त्र ही प्राप्त थे। नंगे, भूखे, अनाथ जैसे जनों के पास तब सिर मुड़ाने अथवा दुर्जन बनने के सिवाय मार्ग ही क्या रह गया था? मुझे यह सब देख सुन कर आश्चर्य होता कि युग कैसा उलट पलट गया है। प्रथम मौर्य महाराज चंद्रगुप्त के समय में अपराध शब्द में रह गया था, कर्म में नहीं। अतः एक वह भी युग रहा जब लोग बिना ताला कुंजी के घरों को खुला छोड़कर कहीं भी चल देते थे और किसी की सुई तक गायब नहीं होती थी, और एक जमाना पिछले मौर्यों का रहा जब घर में सबके रहते हुए भी चोर धोखे से सेंध लगा कर लोगों का धन माल चुरा ले जाते रहे हैं। लोगों का जीना दूभर हो चला था। दिन में राजपुरुष लूटते थे और रात को चोर।

देश की इस दुर्दशा को लक्ष्य कर ही एक बार आमात्य बररुचि ने मुझसे कहा था—'पुष्य, भारत की आज फिर वही दशा हो चली है जो महाभारत के समय में थी' और फिर कुछ रुककर उन्होंने कहा था—'कारण यह था, कि राजागण तब कुमंत्रियों की मंत्रणा से दूषित हो चले थे। राजाओं के दूषित होने पर तब स्वभावतः राष्ट्र भी दूषित हो गया था और प्रजा अपराधप्रिय हो चली थी। इसीलिए जन्मेजय ने कहा था कि अनाथ जन कुनेताओं के कुचक्र में फँसकर अपराध करने लगते हैं,— 'अनाथा ह्यपराध्यन्ते कुनेताश्च मानवाः'—बिल्कुल यही बात आज भी लागू होती है। देश की इस दुर्दशा को क्रांति की क्रांति ही बदल सकती है। क्रांति के बिना वर्तमान दशा में सुधार की संभावना असंभव है, क्योंकि प्रज्ञाहीन विलासरत मौर्यों से अच्छाई की आशा करना ऐसा ही है जैसे बुरों से भलाई की आशा करना। राष्ट्र के हित में एक दिन हटना ही पड़ेगा'।

आमात्य बररुचि सचमुच क्रांति के उग्र समर्थक और आराधक थे। इस क्रांतिपुरुष का ही महर्षि ने मेरे संबंध में पत्र द्वारा सूत्र से पहले ही यह इंगित कर दिया था कि पुष्यमित्र क्रांति अंकुर है। किंतु इस अंकुर को बढ़ने के लिये आपके शक्तिशाली वरदहस्तों की छाया चाहिए। महर्षि ने आमात्य को घने विश्वास के साथ यह भी निर्देशित किया था कि पुष्य का उदय राष्ट्र की समृद्धि के लिये पुष्य नक्षत्र के उदय के समान ऋद्धि सिद्धि देनेवाला होगा। अतः पुष्यमित्र की सिद्धि राष्ट्र की सिद्धि समझें और उसकी समृद्धि में राष्ट्र की समृद्धि। महर्षि की यह आस्तिकता देख आमात्य बररुचि की मुझपर तभी (भेंट तो बहुत बाद में हुई) आस्था हो चली थी और यह भाव उनके मन में घर कर गया कि—महर्षि पतंजलि का यह शिष्य पुष्यमित्र ही शायद कश्यपवंशी द्विज सेनानी है, जिसके हाथों पुराणों की वाणी के अनुसार कलियुग में क्षत्रियों का शौर्य पुनः तेज धारण करेगा और महाभारत के बाद से अप्रचलित अश्वमेध यज्ञ पृथ्वी पर पुनः प्रचलित होगा।

आमात्य बररुचि से बाद में सान्निध्य होने

पर मेरे शौर्य की तेजस्विता से प्रभावित हो कर एक दिन उन्होंने स्वयं मुझसे कहा था, पुष्य, पुरानी बात है, महाराज जन्मेजय अश्वमेध यज्ञ करना चाहते थे, लेकिन भगवान् व्यास ने उन्हें यज्ञ करने की स्वीकृति नहीं दी। भगवान् ने कहा था इस यज्ञ को पूर्ण करने की क्षत्रियों में अभी क्षमता नहीं है। तब जन्मेजय ने कातर होकर पूछा था, भगवन् अश्वमेध का पृथ्वी पर फिर कब प्रचलन होगा, और भगवान् ने उत्तर दिया था कि—कलियुग में कश्यपवंशीय जो ब्राह्मण सेनानी होगा वही उसे पुन: प्रचलित करेगा। मैं एकाग्र होकर अमात्य की वाणी सुनने में तल्लीन था कि अमात्य बोले मुझे लगता है वह द्विज सेनानी पैदा हो गया है। और मेरे यह पूछने से पूर्व कि कौन? उन्होंने कहा था—और वह द्विज सेनानी तुम हो।—अपने प्रति इस भवितव्यता को सुनकर मैं गंभीर हो चला था। सोच रहा था क्या मैं महर्षि और अमात्य की कामना को सत्य सिद्ध कर सकूंगा? हाँ, तो मेरे संबंध में महर्षि का पत्र पाने के बाद से ही अमात्य वररुचि मुझे उप सेनापति पद पर नियुक्त कराने के प्रयत्न में लग गए थे। किंतु यह कार्य सरलता से संपन्न हो सका हो ऐसा नहीं था। अमात्य ने जब प्रथमत: महाराज संप्रति के सामने मेरे संबंध में प्रस्ताव रखा था तो वह धर्मविजयी उसे अनसुना कर टाल गया था। उसके कुमंत्रियों ने उसे सुझाया था कि यदि पुष्यमित्र को उप सेनापति के पद पर आसीन किया गया तो वह सैन्य बल पर हिंसक राज्य कायम कर देगा और परिणाम यह होगा कि पृथ्वी से अहिंसा उसी तरह लुप्त हो जायेगी जैसे भानु के उदय होने पर उसकी दीप्त रश्मियों से तुषारकण लुप्त हो जाते हैं। धर्मभीरु संप्रति को राष्ट्र से अधिक अहिंसा ही प्रिय रही। अतः अपने बौद्ध और जैन अमात्यों के दबाव में आकर संप्रति ने ही मुझे सैन्यबल घटाने और भिक्षु शांति-सेना गठित करने का शासन प्रेषित किया था, जिसे

मानने से मैंने, जैसा कि मैं पहले उल्लेख कर चुका हूँ, नकार में सिर हिला दिया था।

महाराज संप्रति के समय ही मैं मगध निरंतर अवर्षण के कारण भीषण दुर्भिक्ष का शिकार हुआ था। वर्षा न होने से धरती का हृदय सूखकर फट गया था। बड़ी करुण दारुण स्थिति थी। अन्न व तृण न मिलने से अगणित मनुष्य व पशु सूख कर सुबकते कंकालों में बदल गए थे। फलतः जीने का कष्ट न झेल सकने से मनुष्य और पशु जहाँ तहाँ अस्थिदेह विसर्जित कर धरती छोड़ते जा रहे थे। तभी स्वकामी संप्रति जैन मुनियों के साथ मगध छोड़कर स्वर्ग की चाह लेकर दक्षिण चला गया था और राजपाट अपने अयोग्य बेटे शालिशुक के हाथों में छोड़ गया था। दुर्भिक्षपीड़ित, नंगी भूखी प्रजा को त्राण देने के बजाय शालिशुक ने भी उसका मर्दन ही किया। उत्तर सीमांत पर यवन हलचल मचा रहे थे और देश के भीतर जनपद स्वतंत्र होने के लिये विद्रोह से थिरक रहे थे। शालिशुक में भीतरी और बाहरी हलचलों को दबाने की न क्षमता थी न शक्यता। अतः अमात्य वररुचि ने जब ऐसे अवसर पर मेरे पिता सेनापति को सदलबल विद्रोहियों का दमन करने और मुझे सहायक रूप में उपसेनापति बनाने की महाराज शालिशुक को मंत्रणा दी तो उसने बात टाल कर कहा था—हम शस्त्रों से नहीं धर्म से ही विजय स्थापित करेंगे। हम बल को नहीं धर्म को ही सब कुछ समझते हैं। उसके इस धर्मविजय के ढोंग ने मौर्य साम्राज्य को सचमुच अनाथ बना दिया था। अतः मेरे पिता कहा करते थे "विजयं नाम धार्मिका" के भुलावे में डोलनेवाले अधार्मिक मौर्यों ने मगध का साम्राज्य ही नहीं अपितु मगध के गौरव को डुबाने में भी कोर कसर बाकी नहीं रखी है। मगध के भाग्य से एक वर्ष बाद ही विलासी शालिशुक परलोक चला गया। मगध की जनता ने इसके लिये अपने को यम का कृतज्ञ माना और राहत की साँस ली।

शालिशुक के बाद उसका बेटा देववर्मा अपने पिता से भी बढ़ कर अयोग्य सिद्ध हुआ। जनता को उन्हीं के भाग्य पर छोड़ उसका रात दिन का कुल समय अंतःपुर में कामिनियों से नैन-युद्ध करने में ही बीतता था। शस्त्रों के प्रति उसे भी घृणा थी। वह भी यही मानता था कि विजय हो तो धर्म से, लेकिन शस्त्र न उठाएंगे चाहे राज्य रहे या जाये। इन मौर्यों का मत था कि संसार असार और निःसार है। पृथ्वी कभी सदा किसी की नहीं रही है। केवल धर्म ही वह निधि है जो स्थिर है, चिर है, नित्य है और चंचल नहीं। फिर ऐसे सारवान् धर्म को छोड़

वे अनित्य राष्ट्र और सारहीन संसार की क्यों चिंता करते ? वे चिंतक थे तो केवल अपने और लगाव रखते थे तो केवल अकर्म और अकर्मण्यता को सहारा देनेवाले धर्म से।

देववर्मा और उसके पूर्ववर्ती अकर्मी मौर्य राजाओं की धर्मपरायणता नीति से उत्साह पा कर उत्तरापथ में यवनों का खुलकर लोमहर्षक तांडव होने लगा और उनके बढ़ते थिरकते पाँव जब आर्यावर्त के हृदय को रौंदने के लिये मचलते दीख पड़ने लगे तो देववर्मा के बाद उसका बेटा महाराज शतधनुष ने अपने डोलते आसन से संत्रस्त हो कर अमात्य वररुचि की एकांत में दी गई बल को समुदित करने की मंत्रणा को स्वीकार कर लिया। शतधनुष ने परिस्थिति की बाध्यता से ही मंत्रणा स्वीकार की थी स्वेच्छा से नहीं। अहंकारी मनुष्यों का स्वभाव ही है कि वे अपनी अहमन्यता में दूसरों की बात पर तब तक ध्यान नहीं देते जब तक कि परिस्थितियाँ स्वयं उन्हें ध्यान देने को बाध्य नहीं कर देतीं। खैर मंत्रणा के अनुसार उसने मेरे पिता की सेना को नए ढंग से सुगठित व सुव्यूहित करने की छूट दे दी और अंततः उपसेनापति पद पर मेरी नियुक्ति की अनुमति भी प्रदान कर दी थी। यही कारण था कि एक दिन जब मैं विदिशा के उपस्थान में अन्याय के न्याय पर विचार कर रहा था, तभी कंचुकी ने मगध-सम्राट् के संदेशवाहक को मेरे सामने ला उपस्थित किया। विनीत हो कर राजदूत ने मुझे शासन के महामात्य का पत्र दिया। वह पत्र वास्तव में उपसेनापति पद पर मेरी नियुक्ति का लिखित राजाज्ञा या लेख था।

इस तरह अंततः वररुचि के धैर्य ने वांछित फल पाया और मैं अपनी भावी योजना व कामना का आधार पा गया। इसीलिये मैं अपने सेनापति पद को अमात्य वररुचि के सतत प्रयत्न की निष्पत्ति मानता हूँ। इस पद को पा जाने पर मुझे लगा कि महर्षि के आशीर्वाद की छाया में अब मैं अपनी मंजिल की राह पर आगे अग्रसरित हो सकता हूँ।

★

सभा के नवीन प्रकाशन

हितचौरासी और प्रेमदासकृत ब्रजभाषा टीका
लेखक—डा० विजयपाल सिंह तथा डा० चंद्रभान रावत १६)

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास—खंड १०
संपादक—आचार्य रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' तथा
श्री शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' काशिकेय ३०)

मधुस्रोत (आ० रामचंद्र शुक्ल की अप्रकाशित कविताएँ) ६)

हिंदी और फारसी सूफी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन
लेखक—डा० श्रीनिवास बत्रा ३०)

हिंदी और मराठी के ऐतिहासिक नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन—
ले०—प्र० रा० भुपटकर ३०)

शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाले ग्रंथ

बिहारी सतसई—(लालचंद्रिका टीका से युक्त)
सं० श्री सुधाकर पांडेय, मूल्य लगभग ५१)

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास—खंड ८—पं० विनयमोहन शर्मा, मूल्य ३०)
,, ,, ,, ,, खंड ७, रीतिकाल (रीतिमुक्त)
—सं० डा० भगीरथ मिश्र ३०)

हिंदी शब्दसागर—खंड ६ अनुमानित मूल्य २५)

रीतिपरिवेश श्री करुणापति त्रिपाठी ,, १५)

जसवंतसिंह ग्रंथावली—सं० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ,, ८)

सोमनाथ ग्रंथावली (दो खंडों में)—सं० पं० सुधाकर पांडेय ,, ४०)

नवीन संशोधित एवं परिवर्धित

इस सर्वाधिक लोकोपयोगी कोश का संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण अभी अभी प्रकाशित हुआ है जिसमें शब्दसंख्या तथा आकार आदि में पर्याप्त वृद्धि हुई है। शब्दसंख्या साठ हजार। मूल्य ३५) मात्र

★ सभा के नव प्रकाशित ग्रंथ ★

१. काव्य प्रभाकर :—लें० जगन्नाथप्रसाद 'भानु', संपादक–सुधाकर पांडेय— ५१–००

श्री जगन्नाथप्रसाद जी 'भानु' द्वारा विरचित यह ग्रंथ हिंदी के साहित्यशास्त्र का अत्यंत विस्तृत और प्रामाणिक आकर ग्रंथ है। इसमें साहित्यशास्त्र के सभी अंगों का सांगोपांग विस्तुत विवेचन किया गया है। इसका संपादन भी अत्यंत मर्मज्ञता के साथ विद्वान् संपादक ने किया है तथा एक विस्तृत भूमिका एवं ग्रंथ में आए कवियों का जीवनवृत्त देकर इसे और भी उपयोगी बना दिया है। हिंदी काव्यशास्त्र के अध्येताओं एवं शोधछात्रों के लिये यह ग्रंथ अत्यंत उपादेय एवं संग्रहणीय है।

२. भारतेंदु की खड़ीबोली का भाषाविश्लेषण :—लेखिका डा० उषा माथुर

मूल्य २५–०० रु०

भारतेंदु ने अपनी रचनाओं में जिस खड़ीबोली का प्रयोग किया है, विदुषी लेखिका ने उसका भाषावैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करके खड़ीबोली की विकास-परंपरा पर अत्यंत विद्वत्तापूर्ण प्रकाश डाला है। प्रत्येक स्थल पर लेखिका की भाषा संबंधी गहरी पैठ और सूझबूझ ने अत्यंत सुदृढ़ तथ्यों का आकलन किया है। पुस्तक शोधार्थियों के लिये अत्यंत उपादेय एवं पुस्तकालयों के लिये संग्रहणीय है।

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

स्वत्वाधिकारी—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के लिये शंभुनाथ वाजपेयी द्वारा नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी से मुद्रित और प्रकाशित।

नागरी पत्रिका

अप्रैल, १९७२

नागरी प्रचारिणी सभा
वाराणसी

★ सभा के नव प्रकाशित ग्रंथ ★

१. काव्य प्रभाकर :—लें० जगन्नाथप्रसाद 'भानु', संपादक—सुधाकर पांडेय— ५१—००

श्री जगन्नाथप्रसाद जी 'भानु' द्वारा विरचित यह ग्रंथ हिंदी के साहित्यशास्त्र का अत्यंत विस्तृत और प्रामाणिक आकर ग्रंथ है। इसमें साहित्यशास्त्र के सभी अंगों का सांगोपांग विस्तुत विवेचन किया गया है। इसका संपादन भी अत्यंत मर्मज्ञता के साथ विद्वान् संपादक ने किया है तथा एक विस्तृत भूमिका एवं ग्रंथ में आए कवियों का जीवनवृत्त देकर इसे और भी उपयोगी बना दिया है। हिंदी काव्यशास्त्र के अध्येताओं एवं शोधछात्रों के लिये यह ग्रंथ अत्यंत उपादेय एवं संग्रहणीय है।

२. भारतेंदु की खड़ीबोली का भाषाविश्लेषण :—लेखिका डा० उषा माथुर

मूल्य २५—०० रु०

भारतेंदु ने अपनी रचनाओं में जिस खड़ीबोली का प्रयोग किया है, विदुषी लेखिका ने उसका भाषावैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करके खड़ीबोली की विकास-परंपरा पर अत्यंत विद्वत्तापूर्ण प्रकाश डाला है। प्रत्येक स्थल पर लेखिका की भाषा संबंधी गहरी पैठ और सूझबूझ ने अत्यंत सुदृढ़ तथ्यों का आकलन किया है। पुस्तक शोधार्थियों के लिये अत्यंत उपादेय एवं पुस्तकालयों के लिये संग्रहणीय है।

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

★

संपादकमंडल
करुणापति त्रिपाठी
डा० नागेंद्रनाथ उपाध्याय
सोहकमचंद मेहरा
संपादक—सुधाकर पांडेय
सहसंपादक—श्रीनाथ सिंह

दिल्ली प्रतिनिधि—
डॉ० रत्नाकर पांडेय,
४२, अशोक रोड,
नई दिल्ली।
फोन—
३८८१७०

लखनऊ प्रतिनिधि
डा० हरेकृष्ण अवस्थी,
एम० एल० सी०,
४, बादशाह बाग,
लखनऊ।
फोन— २४५५६

वैचारिकी

'मानस चतुश्शती समारोह' की चर्चा, ज्यों ज्यों समय समीप आता जा रहा है, जोर पकड़ती जा रही है। समारोह की संपन्नता के लिए यह शुभ लक्षण है। इसमें संदेह नहीं कि गोस्वामी तुलसीदास जैसा कवि आज तक संसार के किसी भी देश में उत्पन्न नहीं हुआ। भारत को और उसके साथ साथ हिंदी को यह महान गौरव प्राप्त है कि उसने संसार को एक अद्भुत कवि प्रदान किया। अतः हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि हम अपने उस महाकवि का उसकी गौरव गरिमा के अनुरूप समादर करें। भारतीय जन मानस में जितनी गहराई तक गोस्वामी तुलसीदास उतर चुके हैं, उतनी गहराई तक पैठा हुआ और कोई कवि दिखाई नहीं पड़ता। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमारा यह महाकवि एक जागरूक प्रहरी की भाँति हमें बराबर दिशानिर्देश करता रहता है। गोस्वामी तुलसी दास यदि न हुए होते तो हमारी पता नहीं क्या गति हुई होती और हम न जाने किस दुर्दशा को प्राप्त हुए होते। उन्होंने 'रामचरित मानस' की रचना करके राम को पुनर्जन्म दिया। आज मानस की महानता का सभी क्षेत्र के लोग लोहा मानते हैं। अतः उसका 'चतुश्शती समारोह' मना कर हम अपने कर्तव्य का ही पालन करेंगे।

आज देश के नगर-नगर में ही नहीं बल्कि गाँव गाँव में तुलसी स्मारक बनाने की योजनाएँ सरकारी तथा गैर सरकारी स्तर पर चल रही हैं। चूंकि गोस्वामी जी जन मानस के महानतम कवि हैं, महात्मा हैं, इसलिए जनता में उनके प्रति इस प्रकार आदरभाव होना स्वाभाविक है। भारतीय जनता अपने देवी-देवताओं और महापुरुषों का आदर करना जानती है। ऐसा करके एक प्रकार से वह अपनी संस्कृति की रक्षा करेगी।

तुलसी स्मारक मानस चतुश्शती समारोह संबंधी व्यापक योजना का एक आवश्यक अंग है। जहाँ भी ये स्मारक निर्मित होंगे, निश्चय ही भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणा के स्थल होंगे। इस बात को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि गोस्वामी तुलसीदास के स्मारक उनकी गौरव गरिमा के अनुरूप होने चाहिए। काशी जैसी पवित्र नगरी में गोस्वामी तुलसीदास ने पार्थिव शरीर का त्याग किया था। यह नगरी उनकी कर्मस्थली रही है। इस बात को ध्यान में रख कर यहाँ उनके भव्य स्मारक की योजना चल रही है। यह एक सराहनीय कार्य है। स्मारक का निर्माण हो जाने पर वह अवलोकनीय एवं प्रेरणा दायक तीर्थ स्थल होगा और दूर दूर से लोग उसके दर्शनार्थ आयेंगे। उस महात्मा का आशीष हमारे साथ है। इसलिए ऐसे कार्यों में निश्चित ही सफलता मिलेगी।

—सुधाकर पांडेय

—: ० :—

सरकारी कामकाज हिंदी में करने पर अनेक व्यक्ति पुरस्कृत

सरकारी कामकाज में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के लिये केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद ने एक सितंबर, १९७१ से ३१ अक्तूबर, १९७१ की 'अखिल भारतीय हिंदी व्यवहार प्रतियोगिता' का आयोजन किया था। इसमें श्री तारकेश्वरनाथ श्रीवास्तव, रक्षालेखा नियंत्रण कार्यालय, पटना ने १, १५, ७०३ शब्द हिंदी में लिखकर नया कीर्तिमान स्थापित किया है। दूसरा और तीसरा स्थान क्रमशः, श्री सूरज प्रकाश तिवारी, रेल डाक व्यवस्था, लखनऊ तथा श्री भोजूराम, केबिनमैन, गुड़गाँव ने ३०, १८० तथा २५, ७१८ शब्द लिखकर प्राप्त किया है।

परिषद् द्वारा आयोजित इस प्रतियोगिता में ५०१ व्यक्तियों ने भाग लिया। सभी पुरस्कार विजेताओं ने २५ मार्च, १९७२ को परिषद द्वारा नई दिल्ली में आयोजित भव्य पुरस्कार वितरण समारोह में अपने पुरस्कार तथा प्रशस्तिपत्र ग्रहण किये।

इस प्रतियोगिता में रक्षा लेखा नियंत्रक महालेखाकार केंद्रीय राजस्व, आर्डनेंस इक्विपमेंट फैक्ट्री, आयुध निर्माण, केंद्रीय उत्पाद शुल्क, कर्मचारी राज्य बीमा निगम, तारघर, आकाश वाणी, दिल्ली दूर संचार परिमंडल, पेट्रोलियम और रसायन मंत्रालय, एन० सी० सी० महानिदेशालय, रेल डाक व्यवस्था, मौसम विशेषज्ञ आदि कार्यालयों के कर्मचारियों ने भाग लिया। यह प्रतियोगिता केंद्रीय सरकार के विभिन्न कार्यालयों में काम करनेवाले कर्मचारियों को हिंदी में कार्य करने की प्रेरणा देने की दिशा में बड़ी उपयोगी रही है।

—: ० :—

राष्ट्रभाषा और उसके सेवक

मुख्यमंत्री—पं० कमलापति त्रिपाठी

महात्मा गांधी ने हिंदी के लिये भविष्यवाणी करते हुए कहा था—

'वही भाषा राष्ट्रीय बन सकती है जिसे अधिक संख्या में लोग बोलते हों और जो सीखने में सुगम हो। ऐसी भाषा हिंदी ही है।' और वह इतना ही कहकर चुप नहीं हो गए थे। उन्होंने जोरदार शब्दों में यह भी कहा था कि –

'हिंदी केवल एक भाषा के रूप में ही नहीं, बल्कि राष्ट्रभाषा के रूप में सिखाई जानी चाहिए।'

यही नहीं, हिंदी की लोकप्रियता और सरलता को लक्ष्य कर उनका कहना था—'हिंदी पढ़ना इसलिये आवश्यक है कि उससे देश में भाईचारे की भावना पनपती है।'

महात्मा जी के ये शब्द आज भी सार्थक और हमारी भावना के समर्थक हैं। वस्तुतः हमारी हिंदी राष्ट्र की एकता की भावना को मुखर करती है, उसमें जनता की, भारत की बहुलांश जनसंख्या की, भावना और कामना अभिव्यक्त होती है। हिंदी राष्ट्रीय एकता की कड़ी है जिसने सभी प्रदेशों को जोड़ रखा है। हिंदी भारत की सर्वाधिक सरल और सुबोध भाषा है। इसे जनता का स्नेह और प्यार मिला है। भारत के किसी भी प्रदेश की भाषा हिंदी के माध्यम से ही सफल और सुनियोजित होगी। भारत के संपूर्ण तीर्थों का स्नानपूजन करनेवाला यात्री हिंदी के सहारे अपनी यात्रा पूरी कर लेता है। हिंदी का ज्ञान उसे सब स्थानों पर पहुँचाने में सहायक सिद्ध होता है। हिंदी को जनता की वाणी बनने का जो सौभाग्य प्राप्त हुआ वह किसी राज्यादेश अथवा शासकीय बल पर नहीं, अपितु अपनी सरलता और बोधगम्यता के कारण ही उसे यह मान और संमान मिला।

जब यहां विदेशी शासन था, अंग्रेजों का प्रभुत्व था, तब भी हिंदी के सहारे जनता का जीवन जागरित होता था बल्कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता के आंदोलन के समय तो उसका स्वर और अधिक मुखर हो उठा। सन् १८५७ के विद्रोह के समय 'रोटी और कमल' के जो दो सांकेतिक शब्द उद्भूत हुए थे, वे हिंदी के ही थे। इन दो शब्दों ने अँग्रेजी सत्ता की नींव हिला दी थी। यही नहीं, कालांतर में, हिंदी ने, हिंदी के साहित्यकारों और कवियों ने, हिंदी के पत्रों और पत्रकारों ने इस स्वतंत्रता संग्राम को जो शक्ति और साधना प्रदान की वह भी अद्वितीय और महत्वपूर्ण रही है।

आशय यह है कि हिंदी बलदान और बलिदान करने में भी अग्रसर रही है। यही कारण है कि उसे राष्ट्रभाषा का सर्वोच्च स्थान संविधान ने प्रदान किया है। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि उसने बलात् किसी का स्थान अपहृत कर, यह पद प्राप्त किया है। संभवतः आज की वर्तमान पीढ़ी को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि हिंदी संघर्षों में ही फूली फली है। संमेलन इसका साक्षी है। हिंदी भाषा के प्रश्न को सांप्रदायिकता के साथ

उलझाने की भी कोशिश की गई। उस समय अंग्रेजों की कृपा से हिंदी को दबाकर उर्दू को सर चढ़ाने की कोशिश भी की गई। लेकिन यह हिंदी का सौभाग्य था कि उसे निरंतर उदात्त और प्रभावी सेवक और सहायक मिलते गए, जिन्होंने सरकार की विरोध वृत्ति और उपेक्षा का भी न खयाल कर हिंदी के पक्ष का प्रबल समर्थन किया और उर्दू को भी उसका उचित स्थान और संमान मिले, इसका ध्यान दिया। यही नहीं, उस समय हिंदी का नाम लेनेवालों को हिंदूवादी कहा जाता था। विचित्र स्थिति थी। तपे तपाये राष्ट्रभक्त और बलिदानी व्यक्ति भी, जो हिंदी के पक्ष में अपने कुछ प्रचार या विचार रखते, सांप्रदायिकता के पक्षपाती कहे जाते थे। संभवतः इसी का समाधान करने के लिये 'हिंदुस्तानी' नाम भी सामने आया। पर सच्चाई कब तक छिपाई जाती। उस समय महात्मा जी ने भी, गुजराती होते हुए हिंदी के प्रति जो उद्गार व्यक्त किए उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

आज जब हिंदी राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित है, तब हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम हिंदी के सेवक उससे प्रमत्त या भ्रांति में नहीं हैं। हम अपना कर्तव्य पहचानते हैं। यदि हिंदी को यह पद और गौरव मिला है तो इसका सबसे स्पष्ट और विशेष कारण यह है कि इस भाषा ने अपनी सभी प्रादेशिक और क्षेत्रीय भाषाओं से कुछ न कुछ शब्द और भाव ग्रहण करने की चेष्टा की है। उसमें ग्रहणशीलता है। वह उदार है, कृपण नहीं। वह सबका विश्वास और स्नेह प्राप्त करके ही आगे बढ़ी है। वह अन्य किसी भारतीय भाषा के अधिकार और क्षेत्र को पराभूत नहीं करना चाहती बल्कि उसे और अधिक मान एवं संमान देना चाहती है। वह सबके साथ आगे बढ़ने को समुत्सुक है और दूसरों की समृद्धि में योगदान करने की इच्छुक है। हिंदी किसी भारतीय भाषा का स्थान नहीं लेना चाहती। वह चाहती है

उस स्थान पर प्रतिष्ठित होना, जिसपर अंग्रेजी ने अधिकार कर रखा है।

इसी संदर्भ में यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि राष्ट्रभाषा पद पर हिंदी के हो जाने से उसके सेवकों, साहित्यकारों, कवियों, लेखकों, अध्यापकों, पाठकों और शुभचिंतकों का उत्तरदायित्व बढ़ गया है। यह ध्यान में रहे, हमारा लक्ष्य यह नहीं कि हिंदी को मात्र उच्चासन पर प्रतिष्ठित किया जाय। हमारा कर्तव्य और उद्योग यह भी होना चाहिए कि हम हिंदी को विश्व की श्रेष्ठ भाषा के रूप में संजोयें और उसके साहित्य को सर्वविध सुसंपन्न बनाने के लिये कृतसंकल्प हों। कोई यह न कहे कि हिंदी में किसी प्रकार का अभाव है। हमें आज के विज्ञान के प्रगतिशील युग में हिंदी को आगे ले चलना है। न केवल इसके साहित्यिक पक्ष को सुदृढ़ और स्वस्थ बनाना है, बल्कि विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की गतिविधियों एवं उनकी सांगोपांग उपलब्धियों तथा तत्संबंधी ज्ञानोपार्जन की दिशा में किए गए सभी प्रयत्नों का प्राविधिक और प्रामाणिक विवरण एकत्र मिल सके यह भी चेष्टा करनी है।

यही नहीं, हिंदीवालों का यह भी परम कर्तव्य है कि वे सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य का अवलोकन और मनन करें और वहाँ जो कुछ उत्तम मिले, उसे हिंदी में साभार समाविष्ट करें। इस दृष्टि से अनुवाद या भाषांतर करने की योजना बनाई जानी चाहिए। भारतीय और अन्य विदेशी समृद्ध भाषाओं के साहित्य का अनु-

वाद एवं संग्रह भी अपेक्षित है। हिंदी के वाङ्मय को हर प्रकार से पूर्ण बनाने की हमारी चेष्टा को गतिशीलता मिलनी चाहिए। हिंदी का व्याकरण सर्वथा पुष्ट हो, उसका कोशसाहित्य संपूर्ण हो, उसके संदर्भ ग्रंथ सहायक और समीचीन हों, उसका कथासाहित्य जीवनसंदेश का वाहक हो, उसका काव्य प्रेरणात्मक और रससिद्ध हो, उसका बाल साहित्य आकर्षक और निर्माणात्मक हो, उसका विश्वकोष तथा अन्य मानक ग्रंथ यशस्वी और पूर्ण हों, युगानुरूप उसका आलोचना साहित्य पथप्रदर्शक हो, उसका संस्कृति और इतिहास का भंडार सुरक्षित रहे, विज्ञान, कृषि, वाणिज्य, उद्योग, विधि आदि विषयों पर प्रभूत और आवश्यक साहित्य की रचना हो। कहने का तात्पर्य यह कि हिंदी विश्व की विशिष्ट और प्रमुख भाषाओं में शीर्षस्थान ग्रहण कर सके। यह कोई कठिन कार्य या कोरी कल्पना की बात नहीं। यह संभव है। आज इस जगत् में असंभव कोई वस्तु नहीं। आपके सामने रूस और इजराइल का इतिहास है। जब इजराइल स्वतंत्र हुआ तब उसके पास अपनी कोई भाषा नहीं थी। वहाँ के निवासी यहूदी यूरोप के विभिन्न प्रदेशों से आए थे और वे अपनी अपनी भाषा का प्रयोग करते थे। स्वतंत्र होने पर उन्हें अपनी एक भाषा बनाने की आवश्यकता हुई। उन्होंने अपने देश की राष्ट्रभाषा उस भाषा को बनाने का निश्चय किया, जिसमें उनका धर्मग्रंथ था। वह भाषा प्रायः दो हजार वर्ष पुरानी थी और इन वर्षों के मध्यांतर में संयोगवशात् उस भाषा में किसी भी ग्रंथ का प्रणयन भी नहीं हुआ था। परंतु इजराइल के लोगों की दृढ़ता ने आश्चर्य कर दिखाया। उन्होंने उसी भाषा के माध्यम से अपना कार्य-व्यापार प्रारंभ किया और अंततः वह भाषा समृद्ध हो गई। आज उस भाषा को कोई पिछड़ी भाषा नहीं कह सकता। उसमें ऐसे आवश्यक साहित्य का सर्जन और संकलन है जिसकी

अपेक्षा किसी भी राष्ट्र को अपने निर्माणात्मक कार्यों के लिये हो सकती है। अतः हिंदी को पूर्ण बनाने के लिये हमें मनसा, वाचा, कर्मणा तत्पर हो जाना पड़ेगा। यही हमारा आज का परम लक्ष्य और कर्तव्य होना चाहिए। यदि हम अपने को पूर्ण बनाने की दिशा में सफल होते हैं तो हमारे कठोर आलोचकों को भी बाध्य होकर इसे अंगीकार करना ही पड़ेगा। हम राष्ट्र की एकता और स्वतंत्रता को स्वस्थ और पुष्ट बनाने की दृष्टि से ही हिंदी को राष्ट्रभाषा और प्रदेशों की संपर्क भाषा बनाने के लिये जोर देते हैं। इसकी उन्नति में राष्ट्र की समुन्नति संभव है। किसी भी राष्ट्र के लिये एक अपनी राष्ट्र भाषा का होना सर्वाधिक आवश्यक है और इसी हेतु हम विनम्रता के साथ उन विरोधियों से निवेदन करना चाहते हैं कि वह दुराग्रह छोड़ें, किसी भ्रमजाल में न पड़ें और अपने देश के हित को सर्वोपरि स्थान दें। वे यह अनुभव करें कि हम स्वतंत्र देश के नागरिक हैं और हमें देश पर और देश की राष्ट्रभाषा पर गर्व है। अब छोटी-छोटी बातों पर, और विवादास्पद मसलों पर श्रम, समय और शक्ति का अपव्यय करना राष्ट्रहित में नहीं। हमारी राष्ट्रीय एकता और संपन्नता सर्वोपरि हो—यह इस हाल के युद्ध ने हमें सिखाया है। हम चाहते हैं, वही एकता, निष्ठा और दृढ़ता बनी रहे, जिसने सन् १९७१ को विजयमाल पहनाकर विदा किया है। आगामी वर्ष भी, हमारा भविष्य का चिंतन भी, इसी भावभूमि पर आधारित हो; हमारी यह पुनीत आकांक्षा होनी चाहिए। इस युग के संदेश को, हमारे मनोबल

को साहित्यकार ही सक्रिय और स्वस्थ बनाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। देश की प्रतिष्ठा उसके विचारक मनीषी और साहित्यकार ही बढ़ाते हैं। इसी भाव से हम हिंदीवालों को चाहिए कि हमें जिस साहित्य में जो कुछ 'शिव' और 'सुंदर' हो, उसे अपने यहाँ स्थान देने में कोई विलंब न करें।

कहा जाता है, हिंदी का कुछ क्षेत्रों में विरोध हो रहा है। इस विरोध से हमें व्यग्र या विक्षुब्ध नहीं होना चाहिए। हमें अपने इन आलोचकों की मनःस्थिति का अध्ययन करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि उनके अंतःकरण में है क्या? वे क्या चाहते हैं? क्या उनके मन में कोई संशय या भय है, या वह किसी प्रकार की हीनता की भावना से त्रस्त होकर अर्थहीन विरोध प्रदर्शन कर रहे हैं। हमें उन तक पहुँचना है और उनकी प्रतिक्रिया समझनी होगी। उनकी उपेक्षा नहीं, उनका मनस्तोष करना होगा। साहित्यकार इस कार्य में स्वतः सक्षम हो सकेगा, ऐसा विश्वास रखना होगा और अंत में परिणाम यह परिलक्षित होगा कि विरोध स्वतः समाप्त हो जाएगा और अंधकार के हट जाने पर यजुर्वेद की ऋचा के अनुसार उसकी कामना होगी—

'उदानुषा स्वायुषोदस्थान्'

अर्थात् हम उत्कृष्ट और शुभ जीवन के लिये उद्योगशील हों।

हम किसी प्रदेश की भाषा या उपभाषा के तिरस्कार की बात सोच ही नहीं सकते। संविधान में जिन क्षेत्रीय भाषाओं का उल्लेख है उनके संरक्षण और अध्ययन की व्यवस्था करना हमारा कर्तव्य है। हमारे उत्तर प्रदेश में विभिन्न स्थानों पर इन भाषाओं के पठन-पाठन की कक्षाएँ चल रही हैं और प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में हमारे छात्र और इतर जन लाभान्वित हो रहे हैं। अपने प्रदेश में शासन ने उर्दू भाषा और साहित्य

के संरक्षण एवं विकास के लिये उर्दू एकाडेमी की भी स्थापना की है। कुछ लोगों को इससे भ्रांति हो सकती है और कुछ क्षेत्रों में आलोचकों का स्वर भी उठ सकता है। इसलिये मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि शासन ने किसी संप्रदाय या जाति-विशेष के दबाव या प्रभाव में आकर इसकी स्थापना नहीं की है। हमने देखा प्रदेश में उर्दू की अपनी विशेषता है, उसमें रवानी है और अपनी तेज बयानी है, कुछ ऐसा ललित साहित्य है और उसमें कुछ साहित्य रचा जा सकता है--अतः उसकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। अतः उर्दू एकाडेमी की स्थापना का लक्ष्य केवल यही है कि उर्दू को अपने उचित विकास और रचना के लिये आवश्यक सुविधायें मिल सकें। इससे अधिक उस संस्था का अभीष्ट नहीं। यहाँ मैं पुनः स्पष्ट कर दूं कि उर्दू हिंदी की ही एक शैली है, उस शैली का विकास आवश्यक है जो उसका प्राप्य है वह उसे सुलभ हो--हम यह चाहते हैं लेकिन हमारी उदारता और कृतज्ञता का यह अर्थ नहीं समझ लेना चाहिए कि हम इस प्रदेश में उर्दू को द्वितीय भाषा का स्थान देने जा रहे हैं। हमें विश्वास है, इन शब्दों से उन आलोचकों और व्यक्तियों का भावावेश शांत हो जायेगा जिनके मन में कहीं भी कुछ संदेह या संशय है।

उर्दू एकाडेमी की स्थापना इस बात का प्रमाण है कि हम किसी भाषा या साहित्य के प्रति कोई अन्यथा भाव नहीं रखते हैं। हम हिंदी में जो कमियाँ और आवश्यकतायें हैं उन्हें जानते हैं। हमें उनकी आपूर्ति में लग जाना है। हम न केवल देश की भाषाओं से बल्कि विदेशों की भाषाओं से भी, उनके मनीषियों और वैज्ञानिकों के साहित्य और अनुभव, ज्ञान तथा अनुशीलन की सामग्री का संकलन और समावेश करने को

भी समुत्सुक हैं। हमें उस समय आघात लगता है जब कोई यह कहता है कि अमुक ज्ञान के साहित्य या विधा का हिंदी में अभाव है अथवा वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली या अभिव्यक्ति में वह कमजोर है। इस आलोचना से हमें विचलित या विक्षुब्ध होने की जरूरत नहीं। इसे एक प्रकार का 'आह्वान' समझकर इसके समुदय और उन्नयन में हमें तत्पर होना है। मैं चाहूँगा कि हिंदी की सभी संस्थायें मिलकर एक विस्तृत और सुनियोजित कार्यक्रम की रूपरेखा बना लें और लक्ष्य-सिद्धि को सुगम बनाने के लिये कार्यभार का परस्पर वितरण कर लें। इससे कार्य संपादन में सरलता, स्पष्टता और शीघ्रता होगी। हमारे साहित्यकारों, हिंदी के प्राध्यापकों और शुभचिंतकों को यह संकल्प करना होगा कि वे इसके लिये निष्ठा और पारस्परिक सहयोग से, अपना कर्तव्य और दायित्व की भावना समझकर ही इस कार्य के संरक्षण में अग्रसर होंगे। आंदोलनात्मक नहीं रचनात्मक स्वरूप सामने आना चाहिए।

(हिंदी विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह (२२-१-७२) में किए गए अध्यक्षीय भाषण के आधार पर)

❀

सांझ सकारे

लेखक—सुधाकर पांडेय

समीक्षक—डा० ओमप्रकाश शर्मा

सुधाकर पांडेय का अब तक एक उपन्यास प्रकाशित हुआ है 'सांझ सकारे' किंतु एक उपन्यास ने ही उनको नयी पीढ़ी के उदीयमान उपन्यासकारों की श्रेणी में ला खड़ा किया। पांडेयजी ने इस उपन्यास का कथासूत्र एक मध्यवर्गीय नागरिक परिवार के इर्दगिर्द पिरोया है। जैसा कि लेखक ने स्वयं माना है, 'साँझ-सकारे' भारतीय पारिवारिक जीवन का सांस्कृतिक उपन्यास है। उनके इस उपन्यास में लोकोदय की भावना है, क्योंकि वे मानते हैं कि जीवन के जय की आराधना साहित्य की साधना का मूलाधार है। उपन्यास में मध्यवर्गीय गिरते हुए मूल्यों तथा प्राचीनता द्वारा आधुनिकता से होनेवाले संघर्षों को पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया गया है।

वाराणसी और उसके आसपास की संस्कृति को अपना आधार बनाकर यह उपन्यास अनेक शैलियों में मध्यमवर्गीय परिवार के संघर्ष भरे जीवन की कहानी प्रस्तुत करता है। शहराती मध्यमवर्गीय जीवन की घुटनभरी जिंदगी में से सहयोगी, सहकारी, सहचिंतन के सूत्रों को स्पर्श करते हुए भारत के पारिवारिक चरमराते ढाँचे को एक नवीन आधार प्रस्तुत करने का, लेखक का यह सफल प्रयास है। इस जीवन से लेखक का परिचय गहरा भी है और घनिष्ट भी। लगता है जैसे लेखक ने कृष्णाकांत के संपूर्ण परिवार को बहुत निकट से देखा है और उनके साथ इस प्रकार एकाकार हो गया है जैसे उनके प्रत्येक क्रिया कलाप उसके अपने ही बन गये हैं। अनुराधा, केशर, चंदर, शांति सभी का परस्पर उन्मुक्त स्नेह पाठक को अभिभूत करता चला जाता है। चंदर की स्वाभ्य तरुणाई की सरलता और अनुराधा की कुंठाहीन निश्छलता उन्हीं लोकगीतों की कड़ी जैसी मधुर लगती है जो इस उपन्यास में स्थान-स्थान पर दिये गये हैं। इस परिवार के जीवन से लेखक का यह लगाव कहीं कहीं उपन्यास की कमजोरी भी बन जाता है। इसके कारण अनेक स्तरों पर लेखक ब्यौरे की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को इतनी सरलता के के साथ सघन रूप में प्रस्तुत करता है कि मन उकताने लगता है। लगता है जैसे इस परिवार का वास्तविक परिचय देने के लोभ में कृतिकार अपनी कृति का संतुलन खो रहा है। लेखक जिस जीवन का चित्रण करता है, उसमें इतना उतार, चढ़ाव और गहराई है जो इस प्रकार के उपन्यासों में आमतौर पर दृष्टिगोचर नहीं होती। उपन्यास अनेक स्तरों और सतहों पर विकसित होता चला जाता है जिससे पाठक को भावना और अनुभूति की गहरी चोट का बार-बार अवसर प्राप्त होता है। कुछ चित्रों की सुकुमारता तो इतनी लुभावनी बन गयी है कि उनको बारबार पढ़ने का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता।

सुधाकर पांडेय के उपन्यास की विशेषता यह है कि जिस जीवन के बारे में उन्होंने लिखा है उसकी सच्ची मार्मिक व्यक्तिगत अनुभूति उनको

है। इस जीवन को गहराई से समझने और उसको साहित्य में उतनी ही गहराई से रख सकने योग्य कलाकार की दृष्टि भी उनको प्राप्त हुई है, इसलिये उनके इस उपन्यास में नये जीवन की स्वाभाविक, स्वस्थ, सरल, उभरती हुई स्वच्छता एक नया अनुभव देती है और लगता है जैसे जीवन के सभी पक्षों को लेखक ने उच्चस्तर की मर्यादा में बांध दिया है। इसके साथ ही चित्रण की एकरसता उसे रोचक और सार्थक बना देती है। स्थानीयता उत्पन्न करने के उद्देश्य से जो शब्द और वर्णन प्रस्तुत किये गये हैं उनके कारण उपन्यास महत्वपूर्ण, कलात्मक उपलब्धि के स्तर पर पहुँच गया है। आंचलिकता की दृष्टि से भी यह उपन्यास एक नया प्रयोग है जो नागार्जुन और रेणु द्वारा तैयार की गई लड़ी में एक और कड़ी जोड़ता है। किंतु 'सांझ सकारे' उपन्यास का महत्व नये दिशा दर्शन में है, हिंदी के इस या उस लेखक से श्रेष्ठतर होने में नहीं। इसकी विशिष्ठता इस बात में है कि वह राजनैतिक फार्मूलों और सिद्धांतों की मारामारी, मनुष्य के पौरुष और उसकी ऐश्वर्यलालसा, हास-विलास पूर्ण वातावरण, अवैध यौन संबंध, रोमांस के काल्पनिक और रंगीन चित्र, स्वछंदतावादी नारियों के चरित्र-चित्रण, यौवन और वासनाओं के खुले लेख, दमित कुंठाओं से युक्त अहम् के भयंकर रूप, जघन्य और कुत्सित वासनाओं, नारी के अपमान और तिरस्कार, सेक्स की प्रधानता, नारी शरीर के आकर्षण के वर्णन विदेशी दृष्टिकोण और विदेशी विचारधाराओं यथा 'फ्रायड' आदि के पारिवारिक रोमांस, व्यक्तिवादी कुंठाओं और निराशाओं के इतिहास, असामाजिक प्रेम, फडु-वाइट और प्रतिफलन से ओत प्रोत वर्तमान युग की काम वासना, ध्वंसकारी और विघटित आधुनिक सभ्यता के वर्णन से हटकर भारतीय पारिवारिक जीवन के सांस्कृतिक पक्षों का मर्यादा

के अत्यधिक उच्च स्तर पर वर्णन प्रस्तुत करता है। इसमें हमें अनुराधा के रूप में भारतीय नारी के मैले आंचल तले आंसू से भींगी हुई मानवता-रूपी लहलहाते हुए प्रेम के पौधे के दर्शन होते हैं जिससे जीवनरस प्रस्फुटित हो उठता है। मध्यमवर्गीय परिवार के नवीन और पुरातन विचारों के बीच प्रगति और परंपरा की खींच-तान, टकराहट और संघर्ष का कुछ इस प्रकार संयमशील वातावरण लेखक ने प्रस्तुत किया है कि वह देखते ही बनता है। इस परिवार के जीवन की संपूर्ण कथा, लगता है जैसे लेखक के व्यक्तिगत और निजी अनुभूतियों की गाथा हो, जिसकी तीव्रता, गहनता और एकाग्रता अनूठी है और सघनता में जो लगभग काव्यात्मक है। पिता और पुत्र का स्नेह, भाई-भाई का सौहार्द्र, पति-पत्नी का प्रेम, भाभी और देवर का तथा भौजाई और ननद का वात्सल्यपूर्ण प्यार तथा उनकी प्रौढ़ और प्रबल अनुभूति का उद्घाटन इस उपन्यास में इस प्रकार हुआ है कि लगता है जैसे यह एक परिवार के प्रस्फुटन और परि-पूर्णता का उपन्यास है। परिवार का प्रत्येक सदस्य इसके वे विभिन्न स्तर हैं जिनके माध्यम से लेखक ने उसकी संपूर्णता के, उसके दुःख और सुख के, उसके रोदन, चीत्कार और प्रसन्नता के दर्शन कराये हैं। इस उपन्यास के विभिन्न पात्रों के क्रियाकलापों से परिचय प्राप्त करते हुए पाठक को यह अनुभूति अनायास ही होने लगती है कि संस्कृति के केंद्र में जो सर्वव्यापी उदात्त आवेग है, उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति और कला-त्मक छटा कथा के अवरोह और आरोह के साथ किन किन गहरे और उभरे रंगों और रेखाओं में उतर रही है। और यह अनुराधा के संदर्भ में सबसे अधिक परिलक्षित होता है। फिर भले ही शांति के विवाह की बात हो, जब सोने की सिकड़ी न मिलने के कारण बारात लौट जाने-वाली थी और अनुराधा ने बिना एक क्षण सोचे

अपनी सोने की दमकती सिकड़ी वर के पिता को अपने को प्रकाश में लाये बिना भेंट कर दी। इसी प्रकार जब चंदर की ठेके में १५ हजार रुपये की जमानत जमा करनी थी तो अकेले टैक्सी में बैठकर अपने नैहर से रुपया अनुराधा ले आई और जब उसके भाई राधाचरण ने केशर के भाग जाने के बाद कृष्णकांत के परिवार की घोर गरीबी और दैन्य अवस्था में अनुराधा को अपने साथ घर चलने का प्रस्ताव रखा तो उसने इनकार कर दिया।

उपन्यास में अनुराधा संबंधी ये प्रसंग ऐसे हैं जिनमें उपन्यासकार ने मानव आत्मा के भावावेगों को इतने मार्मिक ढंग से अभिव्यक्ति दी है कि पाठक और पात्र दोनों एकाकार हो जाते हैं। इस प्रकार से यह हिंदी का एकमात्र ऐसा उपन्यास है जिसमें ऐसे सरल, सहज, स्वाभाविक प्रेम का चित्रण है जो वर्जनाओं से संत्रस्त नहीं है। इसमें समर्पण और पीड़ा है किंतु व्यक्ति की कुंठा नहीं। प्रत्येक स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति का स्नेह और प्रेम चरम अनुभूति के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। इन संबंधों को सूक्ष्म और पवित्र स्तर पर ग्रहण और चित्रित कर सकना ही अपने में एक बड़ी भारी उपलब्धि है। एक ही परिवार के अलग अलग व्यक्तियों के भाव अवस्थाओं, मनस्थितियों और अनुभूतियों के ऐसे चित्र इसमें चित्रित किये गए हैं जिनसे सहन करने की सामर्थ्य गहरे, करुण अवसाद की पीड़ा समस्त उपन्यास में परिव्याप्त हो गई है।

'साँझ सकारे' में कुल मिलाकर आठ ही प्रमुख पात्र हैं। कृष्णकांत, उनकी पत्नी, केशर और चंदर उनके दो पुत्र, शांति उनकी पुत्री, अनुराधा, केशर की पत्नी, राधाचरण, अनुराधा का भाई और रमेश शांति का पति। इसके अतिरिक्त भी राधाचरण और रमेश के परिवार के अनेक व्यक्तियों का चित्रण उपन्यास में

हुआ है। पर इस उपन्यास की सबसे महत्वपूर्ण सृष्टि अनुराधा है। अनुराधा का अद्भुत व्यक्तित्व है। आज के समाज के अमानवीय नीतिविधान को शिव की तरह शांति से विषपान करनेवाली, शांत विद्रोह की इस मूर्ति अनुराधा का लेखक ने बड़े स्वाभाविक ढंग से विकास किया है। उसका विद्रोह किसी तीव्र रोष अथवा किसी सामाजिक कार्य में या किसी प्रकार की प्रतिक्रिया में प्रकट नहीं होता। वह मूलतः भाव जगत् के स्तर पर ही व्यक्त होता है जो अपने आप में एक नई बात है। हिंदी कथा साहित्य में इस प्रकार की जितनी नारियां चित्रित हुई हैं, उन सबसे अनुराधा अपने में अलग है। अज्ञेय के नदी के द्वीप की रेखा से जो अपने व्यक्तित्व की संपूर्णता की खोज में बड़े आत्मविश्वास के साथ बढ़ती चली जाती है, सुधाकर पांडेय की अनुराधा कहीं अधिक संवेदनशील, सजग और गौरवमयी है। वह नरेश मेहता की वह पथ-बंधुथा की ·······से भी भिन्न है जो तपस्विनी बनकर अपने संपूर्ण व्यक्तित्व को ही समाप्त कर देती है। वृंदावनलाल वर्मा की मृगनयनी, अमृतलाल नागर की ताई, इलाचंद्र जोशी की जिप्सी, राजेंद्र यादव की......कमलेश्वर की .... मोहन राकेश की........आदि सभी से अनुराधा भिन्न है। अन्य उपन्यासकारों के समान अनुराधा किसी के भी संमुख अपने शरीर का समर्पण न कर, अपनी गरिमा को खोती नहीं है। अनुराधा का व्यक्तित्व अपने आप में तो प्रभावशाली है ही साथ ही वह उपन्यास के अन्य पात्रों पर भी छाया रहता है। लगता है जैसे बाकी सारे पात्र उसको आलोकित करते हुए दीखते हैं। जब कभी अनुराधा का प्रसंग उपन्यास में आता है तो उससे संबंधित अनुभूतियाँ कभी क्षणिक और आनंदमयी लगती हैं और कभी लंबी तथा भारमयी प्रतीत होती हैं और इन सबमें एक बात समान मालूम देती है कि उपन्यास के परिरूप की विभिन्न रेखाएँ उसी में से निकलती हैं और फिर घूमफिर कर उसी में लौट आती हैं। किंतु इसके यह अर्थ नहीं है कि बाकी सारे चित्र निष्क्रिय, फीके और प्राणहीन हैं। वे अपनी अपनी जगह पर अपनी अपूर्वताओं को उजागर करते हैं।

इस उपन्यास में कोई नायक जो परंपरागत नायक की परिभाषा में आता हो, है ही नहीं। कहा जा सकता है कि उपन्यासकार परंपरागत नायक का लोप करने में सफल हुआ है और उस अर्थ में यह नायक विरोधी उपन्यास है। यदि

इस उपन्यास में केशर को नायक माना भी जाय तो यही कहा जायगा कि वह उतना तेजवान नहीं, अनात्म किस्म का व्यक्ति है और जिसके जीवन की धुरी ढुलमुल है। वह ऐसा नायक है जो घिसा पिटा है। कीड़े की तरह रेंगता है, हर परिस्थिति में स्वयं को उपेक्षित और भद्दा महसूस करता है, सदैव बलवती शक्तियों से दब जाता है और उसका अपना स्वयं का अस्तित्व विघटित हो गया है। आज की ध्वंसकारी और विघटित आधुनिक सभ्यता, विज्ञान तथा टेक्नालाजी के मशीनी प्रभाव से जिसमें विश्वास और मान्यताएँ टूटकर बिखर गई हैं उसी के प्रतीक स्वरूप नायक भर की सृष्टि उपन्यासकार ने की है तो इससे हमें आश्चर्यचकित नहीं होना चाहिए। वैसे तो आधुनिक उपन्यास की यह परंपरा बन गई है कि उसका कोई प्रारूप नहीं होता, नायक नहीं होता और इस दृष्टि से 'साँझ सकारे' भी एक परिरूपरहित उपन्यास है। परंतु यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाय तो उसमें एक गहन ऐक्य, उस मजबूत धागे की तरह है जिसमें माला के मनके पिरोए जाते हैं।

जहाँ तक कथाक्रम का प्रश्न है उपन्यास में कोई व्यवधान नहीं आने पाया। हाँ कहीं कहीं वह कुछ शिथिल हो गया है किंतु इससे उपन्यास की स्वाभाविकता में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं हो पाता। आज के पारिवारिक और सामाजिक जीवन में ईमानदारी का अभाव, बढ़ती हुई अराजकता, सभी का गैरजिम्मेदारी से भरा हुआ व्यवहार, यह सब तो आज के हिंदी उपन्यास में आसानी से मिल जाता है पर मर्यादा को निभानेवाला उपन्यास 'साँझ सकारे' ही है जिसमें फूल हैं, चंदन है, सुंदरता है और लेखक ने बड़ी सुंदरता के साथ इन सबको धूल कीचड़ में से निकाल कर एक ओर खड़ा कर दिया है। और इस धूल और कीचड़ को प्रकट करने का भी

उपन्यासकार का ठेठ अपना ही रास्ता है। अनुराधा अपनी ननद शांति से कहती है—

'बबुई जी, पास पड़ोस में बहुत घूमती हो, किसी दिन कोई उठा ले जायगा तो न जाने कौन बेचारा घुट घुट कर जीवन भर पथ पर आसरा देखता कुँवारा ही मर जायगा।

'च च भाभी, बड़ी सहानुभूति है, बेचारे से। भैया उधर कलकत्ते में हैं, इधर बेचारी को बेचारों ने घेर लिया।''' ''अरे रे रे यह क्या हो रहा है? मजदूरनी नहीं आई क्या?'

'आई तो थी, उसकी तबीयत ठीक नहीं थी, इसलिये मैंने उसे एक महीने की छुट्टी दे दी।'

'माँ से पूछा?'

'इसमें अम्मा जी से पूछने की क्या जरूरत? तुमही तो असली मालकिन हो। तुम्हें जब मालूम हो गया तो फिर गम काहे का।'

एकाएक शांति बैठ गई और वह भी अपनी भाभी का हाथ बँटाने लगी। बीच बीच में बोलती जाती, 'भाभी घबराना मत। भैया नहीं हैं तो मैं हूँ और यारी तुमसे लग गई है, तुम्हारे लिए जानी। जान भी हाजिर है।'

अनुराधा भी मुस्करा मुस्कराकर कहती रहती, 'मुझे गड़ासा नहीं चलवाना है। राम जाने, कितनों की जानें रोज दिन दहाड़े लूटती फिरती हो, डाकू कहीं की।'

और केशर अपने साले राधाचरण से कहता है—'क्यों जनानों के बीच में कितना मजा मिल रहा है। आप भी पूरे जनाने ही हैं। मैदान में आइये. उधर क्या बैठे हैं।'

'वाह रे मरदानें'—उठते हुए राधाचरण ने कहा—'बहुत बड़े मर्द बनते हैं, लेकिन हैं वास्तव में बड़े बेशर्म। अभी सात दिन पहले डंका बजाकर तुम्हारी बहन को सब ले गये, लेकिन जरा भी शर्म नहीं आई।'

यही नहीं, भावज और देवर का जो सहज, स्वाभाविक हँसी-मजाक इस उपन्यास में आया है

वह अन्यत्र मिलना कठिन है। उदाहरण के लिये—

'बनारस के लोग केवल बात भर करना जानते हैं, और वह भी हवाई। कहाँ अभी कल तक तो कहते थे कि पास हो जाने पर भाभी तुम्हें सिनेमा दिखाऊँगा, और क्या क्या करूंगा। सिनेमा तो दूर की बात है, छोटी सी मिठाई की बात भी कैसी चालाकी से कतर गए। आदमी ऐसे होते ही हैं—कतरब्योंत वाले।'

'और भाभी औरतें''' क्यहावँ, क्यहावँ''' तारों के पलना पर सोया मेरा ललना''' चरखों, चरखों''' रोटी-दाल-सब्जी''' और फिर टाँय टाँय फिस'''मुँह बनाते हुए चंदर ने कहा—

'और आदमी बायँ बायँ फिस' मुँह बनाती हुई अनुराधा कह रही थी कि चंदर ने झपटकर उसकी गोद से लड़के को ले लिया और उछालने लगा।

अनुराधा बोली—'अभी सोया है, बड़ी मिहनत से सुलाया है, बबुआ जी, उठ जाएगा, बड़ा परेशान करेगा।'

'तो मैं खिला लूंगा, तुमसे नहीं कहूँगा, मेरा लड़का है न।'

'सेती में बाप बनना आसान नहीं।'

'तुम तो भाभी मुझे निरा मजदूर समझती हो। खैर यह भी भाग्य ही है कि तुम्हारी जैसी खूबसूरत औरत की मजदूरी करता हूँ।'

इस उपन्यास की सबसे अद्भुत विशेषता यह है कि यह पूरी तरह से भारतीय परिवेश और संस्कृति से ओतप्रोत है। इसमें वाराणसी के मध्यमवर्गीय परिवार के निरंतर बदलते हुए स्वरूप की व्यथा है और यह कहानी केवल कृष्णकांत के परिवार की ही नहीं, वाराणसी के मध्यमवर्गीय परिवार की, उत्तर भारत के प्रत्येक मुफस्सिल नगर के परिवार की कथा है। भारतीय

संस्कृति की पृष्ठभूमि में विकसित एक संपूर्ण परिवार किस प्रकार विपदाओं को झेलता हुआ भी, सुगठित रहकर दुःख को सुख में बदल देता है, इसका वर्णन उपन्यास में अत्यधिक सरस है और प्रस्तुतीकरण मार्मिक भावप्रवण के साथ हुआ है।

आज जब उत्तर भारत में संयुक्त परिवार वैज्ञानिक और टेक्नोलोजी प्रदत्त वेगवान आधुनिक उपलब्धियों के कारण खील खील होकर बिखर गया है, उस समय संयुक्त परिवार के उज्ज्वलतम पक्ष को प्रस्तुत करना अपने में बड़े साहस का कार्य है और लेखक ने यही कर दिखाया है। 'सांझ सकारे' के प्रत्येक पृष्ठ से यह भाव उभरता सा दिखाई पड़ता है कि संयुक्त परिवार आज भी, यदि परस्पर-विश्वास, सहयोग और सहकार पर आधारित हो तो बड़े से बड़े झंझावात को सहने की क्षमता रखता है। इस उपन्यास के पढ़ने से यह चित्र स्पष्ट हो जाता है कि संयुक्त परिवार में एक छोटा सा राज होता है। जहाँ पर विभिन्न रुचियों, विभिन्न दृष्टिकोणों और विभिन्न स्वभावों के लोग थोड़ी सी जगह में जीवन भर रहते हैं और उसके नियम होते हैं—प्रेम और नैतिकता। कृष्णाकांत के संयुक्त परिवार में यह झलक बार बार स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ती है। चंदर, शांति, अनुराधा, केशर, कृष्णाकांत, राधाचरण और कृष्णाकांत की पत्नी सभी एक दूसरे के प्रति आदरभावना और परस्पर सहायता के लिये दृढ़प्रतिज्ञ हैं। दैनिक जीवन की छोटी से छोटी बात इस परिवार के प्रत्येक सदस्य को प्रसन्नता और प्रेम से भर देती है, दुःखी और पीड़ाग्रस्त बना देती है, यहाँ तक कि केशर में यह भावना अति को पहुँच जाती है जो अपनी बहन शांति के दुःख को दूर न कर सकने के कारण गृह त्याग कर देता है। इस परिवार के प्रत्येक सदस्य की एक दूसरे के प्रति आस्था, विश्वास और उदार भावना बार बार टोक टोक

कर हमसे कहती जान पड़ती है कि दोष संयुक्त परिवारप्रणाली में नहीं है, आज के साक्षर व्यक्ति में है जो भारतीय सांस्कृतिक वातावरण में पैदा होता है—पर जिसको अपनी किशोर और युवावस्था पश्चिम की चकाचौंध सभ्यता में गुजारनी पड़ती है, जिसका मस्तिष्क आधुनिकतम उपलब्धियों में फँसा होता है पर जिसके पैर अपने तथाकथित दकियानूसी परिवार में रहते हैं। अपने इसी विभाजित व्यक्तित्व के कारण वह संयुक्त परिवार को तोड़कर अपना निज का परिवार बसाता है। पर यह उपन्यास तो हमसे यह कहता जान पड़ता है कि जो व्यक्ति संयुक्त परिवार में पैदा होता है, उसकी छाया में बड़ा होता है, उसको सहज स्वाभाविक ढंग से सामुदायिक प्रशिक्षण प्राप्त हो जाता है, वह मानवीय संबंधों के विज्ञान से परिचित हो जाता है। उदारता, नैतिकता, व्यावहारिकता, प्यार और उत्सर्ग की भावना उसमें सहज स्वाभाविक ढंग से पनपती और विकसित होती है। और इस अर्थ में साँझ सकारे' भारतीय या पारिवारिक जीवन का सच्चा सांस्कृतिक उपन्यास बन गया है और जिसका दावा लेखक ने किया भी है।

भारतीय संस्कृति 'साँझ सकारे' में से जैसे छन-छन कर प्रकाशित और प्रभासित मालूम पड़ती है। इसका पहला नमूना है उपन्यास के विभिन्न अध्यायों का नामकरण। प्रथम अध्याय का नाम है—'सावन भादों मोरे दो नयना बरसें साँझ सकारे।' इस अध्याय में कृष्णकांत के छोटे पुत्र चंदर के फर्स्ट पास होने पर उसके समारोह मनाने की कथा है। एक पुराने परिवार में जिसकी परंपरा अतिथि सत्कार की रही है, जिसके घर से कभी कोई अतिथि खाली हाथ नहीं लौटा, किंतु जो अब अत्यधिक दीन हीन अवस्था को प्राप्त है पर अपनी इस गरीबी में रहकर भी जो अपनी शान को बनाये रखने के लिये घर फूँक तमाशा देखता है। यह ऐसा परिवार है जो चंदर के प्रथम आने की प्रसन्नता को मनाने के लिये सौ दो सौ रुपए भी नहीं जुटा सकता और जिसके लिए चंदर की भाभी अनुराधा का आभूषण उसके अत्यधिक आग्रह से रखा जाता है अपने घर की प्रतिष्ठा को बचाने, दीपशिखा को ज्योतिर्मय रखने के लिये, उसके बड़े पुत्र केशर की पत्नी अनुराधा और उनकी पत्नी अपने और

व्यक्तिगत रूप से जोड़ी हुई और बची धनराशि इस समारोह को मनाने के लिये देती हैं; क्योंकि वे मानती हैं कि भूखे रहकर भी घर के दीप को उसकी शान को गिरने नहीं देना है, इस बार दुर्दिन में भी उसको अक्षुण्ण बनाए रखना है। इसी अध्याय में इस बात का पता भी चलता है कि उनका बड़ा लड़का केशर, जिसके पिता के घर पर कभी राजाओं के लड़कों को भी पढ़ना पड़ता था, वह विपत्ति का मारा कलकत्ते में एक माल ढोनेवाली कंपनी में क्लर्क का काम कर रहा है।

दूसरे अध्याय का शीर्षक है—'जाऊँ कहाँ तजि चरण तिहारे।' इस अध्याय का शिल्प बहुत ही आकर्षक है। एक पृष्ठ पर केशर के नाम अनुराधा के लिखे पत्र हैं तो दूसरे पृष्ठ पर केशर की डायरी के पन्नों को छापा गया है। इस अध्याय में यह क्रम बराबर रखा गया है। एक ओर पत्र और दूसरी ओर डायरी का पन्ना। इन पन्नों में केशर के दस अगस्त, सत्रह सितंबर, सत्रह नवंबर और बाईस दिसंबर को लिखे गए विचार दिये गए हैं जो अपनी पत्नी के पत्रों के प्रतिक्रिया स्वरूप उसके मन में उठे हैं। डायरी पृष्ठ डायरी की भाँति ही छापे गये हैं। इसमें ऊपर तिथि दी गई है और नीचे किसी महान् व्यक्ति के उपदेश वाक्य। इन पत्रों और डायरी के पृष्ठों के माध्यम से लेखक ने कृष्णकांत के जर्जर परिवार की कहानी अनुराधा के माध्यम से कहलवायी है। केशर को अनुराधा अपने और नन्हें मुन्ने के बारे में बहुत कम बताती है। वह चंदर और शांति की समस्याओं को सामने रखती है। चंदर को अर्थाभाव के कारण पढ़ने में कठिनाई है, और शांति का विवाह भी इसी कारण नहीं हो पा रहा है।

तीसरा अध्याय है—'तीन लोक मम पुरी

सुहावनि।' इसमें कलकत्ते में केशर को किस प्रकार अत्यधिक कठिनाइयाँ उठाकर माल ढोनेवाली कंपनी में एक क्लर्क की नौकरी मिली। इसकी पूरी कथा है। कृष्णकांत ने अपने भोलेपन में अपने एक सेठ मित्र पर विश्वास करके केशर को उसके साथ कलकत्ते इस आशा से भेजा था कि वह जूट मिल का चीफ मैनेजर हो जायगा। बंगला, मोटर सभी कुछ होगा और सैकड़ों नौकर चाकर उसके संकेत पर चलेंगे। यह वही सेठजी थे जिनकी इज्जत और मान मर्यादा को बचाने के लिये कृष्णकांत आज से बीस वर्ष पहले अपनी जान पर खेल गए थे। किंतु आज वही सेठ केशर को केवल पचास रुपये पर नौकर रखना चाहते थे। इसमें माल ढोनेवाले मैनेजर के रूप में एक ऐसे व्यक्ति की भी कथा दी गई है जो केशर के प्रति ममता की दृढ़ता और कर्तव्य के रूखेपन से उसको मंझधार से उबार लेते हैं और जिसके कारण ही वह अपनी बहिन शांति के विवाह में काफी आर्थिक मदद लेकर पहुँच जाता है।

चौथा अध्याय है--'अचल होहि अहिवात तुम्हारा।' इस अध्याय में उत्तर भारत के मध्यम परिवारों के शादी विवाहों की संपूर्ण कथा खोल कर कही गयी है। पुत्री को ब्याहने में संपूर्ण परिवार को कितना तिरस्कृत होना पड़ता है, कितना बड़ा आर्थिक बोझ उनके कंधों पर आ पड़ता है और कितनी उचित और अनुचित बातें वर पक्ष विवाह के अवसर पर कन्या पक्ष को सुनाता है और जिसको खून का घूंट पीकर भी इसलिये सहना पड़ता है कि कहीं वर पक्ष बारात को बिना कन्या के लौटा न ले जाय। बड़े मार्मिक ढंग से, शांति के विवाह के माध्यम से लेखक ने अंधविश्वास, दुराग्रह और परंपरागत रूढ़ियों को चित्रित किया है।

पाँचवें अध्याय का नाम है--'केशव कहि न जाय का कहिए।' इसमें लड़की का विवाह करने

के बाद कन्या पक्ष अर्थाभाव के कारण कितना खोखला हो जाता है, उसकी पृष्ठभूमि में अनुराधा के भाई राधाचरण द्वारा कृष्णकांत के परिवार को आर्थिक सहायता देने की कथा है, जिसको अनुराधा पसंद नहीं करती क्योंकि वह नहीं चाहती कि यह बात उसके भाई को भी मालूम हो जाय कि घर की आर्थिक प्रतिष्ठा चौबीस घंटे कच्चे धागे से लटकती रहती है।

छठे अध्याय का शीर्षक है—'आज सुहाग की रात।' इसमें शांति के ससुराल पहुँचने और वहाँ पर सास, श्वसुर और पति से प्राप्त दुर्व्यवहार की कहानी है। इसके साथ ही आज के उच्छृंखल युवक की झलक भी शांति के पति रमेश के रूप में दिखायी पड़ती है जो इतनी सरल, सीधी, है। वह शांति से प्रेम केवल इसलिये नहीं कर पाता क्योंकि वह आधुनिकता के रंग में रंगी नहीं है और इसी कारण वह दूसरे दिन ही पढ़ने के बहाने प्रेमिका से मिलने प्रयाग चला जाता है।

सातवें अध्याय का शीर्षक है—'कागा नाहीं जाने।' इसमें ससुराल में शांति के दुर्भाग्य की कहानी है और उसके भाइयों द्वारा ससुराल में उससे मिलने की कथा है। उसके साथ, उसके पति रमेश ने जो दुर्व्यवहार किया है उसका भेद शांति के बड़े भाई केशर पर तब खुलता है जब बहिन की ससुराल से लौटता हुआ रेलगाड़ी में उस पत्र को खोलकर पढ़ता है जो शांति ने अपनी भाभी अनुराधा को लिखा है। इसका आघात केशर पर इतना अधिक पड़ता है कि वह घर छोड़ कर चला जाता है और इसकी सूचना पत्र द्वारा केवल अनुराधा को देता है।

आठवें अध्याय का शीर्षक है—'पायो नाम चारु चिंतामणि।' यह अध्याय राधाचरण और चंदर द्वारा केशर की खोज से आरंभ होता है। और अंत होता है अनुराधा द्वारा राधाचरण के बारबार कहने पर भी ससुराल को न छोड़ने पर क्योंकि अनुराधा का मानना है कि वह अपनी ससुराल को दुःखी छोड़कर कैसे जा सकती है।

उसी के शब्दों में—'इस घर से अपना दुःख दर्द मिटाने के लिये मैं नहीं, मेरी लाश ही जा सकती है।'

नवें अध्याय का शीर्षक है 'दुःख के दिन अब बीतत नाहीं।' इसमें भगोड़े केशर की कथा है कि किस तरह वह प्रताड़ित होकर मथुरा पहुँचता है और कैसे आठ-दस दिन चक्कर लगा कर उसे अखबार बेचनेवाले हाकर का काम मिलता है और कैसे यह काम भी अपनी मान मर्यादा के विरुद्ध बातें सहन न करने के कारण छूट जाता है।

दसवां अध्याय है—'हे हरि हरो जन की पीर। यह अध्याय इस परिवार के दुर्दिनों को अच्छे दिनों में बदलने की कहानी है। चंदर अपनी मान-मर्यादा को ताक पर रखकर, पढ़ना-लिखना छोड़कर, व्यापार आरंभ कर देता है। शांति और उसके पति को भी यह परिवार अपने ही नगर में बुला लेता है और इस व्यापार में साझीदार बना लेता है। केशर की अनुपस्थिति में अपने पति के आदेश का पालन करती हुई अनुराधा जैसे परिवार' की रीढ़ की हड्डी बन जाती है। चंदर को जब कभी व्यापार के लिये पैसे की आवश्यकता पड़ती है तो उसको अनुराधा किसी न किसी तरह सुलझा देती है और यह परिवार आर्थिक संकटों से मुक्ति पाता चला जाता है।

ग्यारहवाँ अध्याय है—'कासे कहूँ जियरा की बात' इस अध्याय में केशर की हाकर वाली नौकरी छूट जाने की कथा है, प्रकाशन के क्षेत्र में जो अन्धेरगर्दी हो रही है उसकी झलक भी इस अध्याय में देखने को मिलती है। जबकि केशर को प्रकाशक के यहाँ नौकरी मिल जाती है। किस प्रकार यह प्रकाशक लेखकों की कमाई को

हड़पता है, इसका बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुतीकरण हुआ है। नैतिकता की आड़ में केशर को आगरे के लेखक रवींद्र के साथ प्रकाशक द्वारा दुर्व्यवहार से आघात पहुँचता है जिसने अपने तीव्ररोग में इलाज करने के लिये अपनी रायल्टी की रकम माँगी है। केशर रवींद्र की कृतियों के प्रति अत्यधिक श्रद्धा भाव रखता है और इसलिये जब प्रकाशक रवींद्र को उसकी रायल्टी देने से इनकार कर देता है तो केशर अपने पिता की बीमारी का बहाना बना कर प्रकाशक से अपना हिसाब चुकता कर, जो २५० रु० होता है, रवींद्र को देने के लिये मथुरा से आगरा जाता है। वहाँ रवींद्र को स्वस्थ देखकर वह आश्चर्यचकित होता है और रवींद्र के इस भेद को जताने पर कि वह प्रकाशक की परीक्षा ले रहा था, केशर आश्वस्त होता है। यहीं पर केशर को यह ज्ञान भी होता है कि उसने गृहत्याग कर भगवान् बुद्ध की तरह कोई बड़ा त्याग नहीं किया है—जैसा कि वह अब तक समझता आया था। उसका स्थान उसका घर है, उसकी पत्नी, भाई और पिता हैं। और वह अपने घर को लौट जाता है। इसी अध्याय में चंदर के विवाह और केशर के पुत्र मुन्ने का मुंडन संस्कार करने की योजना भी है। चंदर अपने विवाह को कराने में बड़ी भारी आनाकानी करता है क्योंकि उसकी मान्यता है कि जब तक उसके बड़े भाई केशर घर लौट कर

नहीं आ जाते, वह विवाह किस प्रकार करा सकता है। किंतु अनुराधा के जोर डालने पर वह इसके लिये तभी राजी होता है जब उसके साथ ही मुन्ने का मुंडन संस्कार हो। चंदर का विवाह उसी मैनेजर की लड़की से रचाया जाता है जिसने केशर को शांति के विवाह में आर्थिक सहायता दी थी।

पुस्तक का अंतिम अध्याय है—'लेके डोलिया कहाँर'। इसमें सारे परिवार का पुनर्मिलन है। विवाह के लिये चंदर का तिलक हो रहा है। अनुराधा अपने संपूर्ण हृदय पर नियंत्रण कर अपने अनुपस्थित पति केशर के इस उत्तरदायित्व को मन मसोस कर निबाहने के लिये तैयार होती है कि तिलक रस्म की पूजा में केशर के स्थान पर वह बैठेगी और तभी केशर का प्रवेश होता है। इससे सारा परिवार खुशी से झूम उठता है।

उपन्यास में आधुनिकतम विचारों को यथास्थान दिया गया है। अपनी बात को समझाने के लिये कभी कभी उक्तियों, महान् पुरुषों और महाकाव्यों के उद्धरणों से उपन्यासकार अपनी बात सरलता से समझा पाता है। इस शिल्प का लेखक ने खुल कर उपयोग किया है और इसकी भी विशेषता यह है कि ये उद्धरण और उक्तियाँ सभी भारतीय हैं।

उपन्यास की लेखनशैली रोचक और आकर्षक है, भाषा पर लेखक का पूरा अधिकार है। छपाई, सफाई, साज सज्जा अच्छी है। प्रत्येक अध्याय के शीर्षक पृष्ठ बड़े कलापूर्ण चित्रों से चित्रित हैं।

उपन्यास की पृष्ठभूमि वाराणसी है। वाराणसी और उसके घाटों का जो वर्णन इस उपन्यास में हुआ है वह उपन्यासकार की इस नगरी से और उसके जीवन से नैसर्गिक संबंध और ममत्व को प्रकट करता है। कथानक, चरित्रचित्रण

तथा भाषा की दृष्टि से उपन्यास में पगपग पर लेखक की वाराणसी के प्रति उसके अगाध प्रेम और गहरी अनुभूति की स्पष्ट झलक दृष्टिगोचर होती है। समूचे उपन्यास में तद्भव शब्दों का जाल बिछा हुआ है जो उपयुक्त वातावरण की सृष्टि करने में सहयोग देते हैं। भाषा में स्थानीय शब्दों की भरमार है। इसमें लोकगीतों का प्रयोग भी हुआ है लेकिन इतना अधिक नहीं कि उपन्यास को नीरस बना दे। नागरिक जीवन का चित्रण लेखक ने बड़े ही स्वाभाविक ढंग से किया है। 'साँझ सकारे' उपन्यास निराशावादी स्वर से प्रारंभ होता है किंतु उसका अंत आशावादी स्वर में परिणित हो जाता है। उपन्यास का सांकेतिक संदेश है-आदर्श संयुक्त परिवार और उसके लिये उपन्यासकार ने एक नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है।

अखिल भारतीय हिंदी आशुलिपि प्रतियोगिता का परिणाम

केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद् द्वारा अक्तूबर, १६७१ में आयोजित अखिल भारतीय हिंदी आशुलिपि प्रतियोगिता का परिणाम आज घोषित हुआ। इसमें दिल्ली के श्री गोपालदत्त विष्ट संसद रिपोर्टर ने २३० शब्द प्रति मिनट की गति में सफल होकर प्रथम स्थान प्राप्त किया। अखिल भारतीय द्वितीय एवं तृतीय स्थान क्रमशः श्री जगदीश नारायण शर्मा और श्री शरदचंद्र चतुर्वेदी ने २०० शब्द प्रतिमिनट की गति में प्राप्त किए। वे दोनों भी संसद में रिपोर्टर हैं। श्री गोपालदत्त विष्ट ने पिछले वर्ष २२० शब्द प्रति मिनट के गति वर्ग में प्रथम स्थान प्राप्त किया था। यह उनके अनवरत परिश्रम का फल है कि वे हिंदी आशुलिपि में इतनी ऊँची गति पर सफलता प्राप्त कर सके। श्री विष्ट को चल शील्ड के अतिरिक्त २० रुपए का नकद पुरस्कार और स्वर्ण पदक भी प्रदान किये गये।

१८० शब्द प्रति मिनट के गति वर्ग में श्री सुरेंद्र कुमार गर्ग (दिल्ली), १५० शब्द प्रति मिनट में श्री बुद्ध ईश्वर देव (दिल्ली), १२० शब्द प्रति मिनट में श्री बद्रीलाल आहूजा (देहरादून) तथा १०० शब्द प्रति मिनट में श्री सत्यपाल शर्मा (देहरादून) प्रथम हैं।

१५० शब्द प्रति मिनट के गति वर्ग में श्री पारसनाथ तिवारी (छपरा, सारण) को प्रोत्साहन पुरस्कार मिला। १८० शब्द प्रति मिनट के गति वर्ग में सर्वश्री ओमप्रकाश बख्शी (दिल्ली), बद्रीप्रकाश श्रीवास्तव (देहरादून), तथा भूपसिंह कौशिक (दिल्ली) प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त किये। १०० शब्द प्रतिमिनट के गतिवर्ग में सर्व श्री हरीमोहन सक्सेना (भोपाल) श्याम मोहन गुप्ता (लखनऊ) तथा किशनस्वरूप गोयल (दिल्ली) को प्रोत्साहन पुरस्कार दिया गया।

इस वर्ष २४० शब्द प्रति मिनट की गति पर डिक्टेशन दिया गया था परंतु उसमें कोई सफलता प्राप्त नहीं कर सका।

यह प्रतियोगिता दिल्ली, भोपाल, लखनऊ, रतलाम, कानपुर, देहरादून, छपरा (सारण) और कोटा केंद्रों पर हुई थीं। प्रतियोगिता के विजेताओं को केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद् की ओर से मार्च मास में आयोजित समारोह में पुरस्कृत किया गया।

'मानस चतुश्शती समारोह' संबंधी गोष्ठी

मानस चतुश्शती समारोह के क्रम में सभाकक्ष में १४ मार्च को एक गोष्ठी संपन्न हुई जिसमें अनेक विद्वनों ने अपने अपने विचार व्यक्त किये। गोष्ठी में मुख्य अतिथि के रूप में उत्तर प्रदेश राजस्वपरिषद के अध्यक्ष श्री जनार्दन दत्त शुक्ल भी उपस्थित थे। श्री शुक्ल ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा "गोस्वामी तुलसी दास ने अपने दर्शन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों को प्रधानता दी हैं। जब कि अन्य दर्शनों में इन चारों में से किसी एक को प्राधान्य प्राप्त है। आपने गोस्वामी जी के दर्शन को नये संदर्भों के साथ जोड़ते हुए कहा कि आज जब हम बंगला देश में विजयी हुए हैं तथा अनेक क्षेत्रों में उत्थान का कार्य कर रहे हैं तो ये महत्व-पूर्ण कार्य हमें इस बात का संकेत करते हैं कि भारत एक ऐसे नये मोड़ पर खड़ा है जहाँ से रामराज्य का उदय दृष्टिगत हो रहा है। हमारी यह विजय हमारी सांस्कृतिक शक्ति का परिणाम है और मानस हमारी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसलिये मानस चतुश्शती समारोह ऐसे समय में विशेष महत्वपूर्ण हो जाता है। आपने कहा कि जिस प्रकार हजारों वर्ष पूर्व हमने विश्व के समक्ष एक महापुरुष भगवान बुद्ध के रूप में रखा था उसी प्रकार आज फिर हम संसार को एक महान व्यक्ति दे सकते हैं और वे हैं गोस्वामी तुलसी दास।

अपने विचारों को दूसरी ओर मोड़ते हुए श्री शुक्ल जी ने कहा कि आज हमारे लिये समन्वय वाद की मुख्य रूप से आवश्यकता है और गोस्वामी जी का रामचरित मानस इस दिशा में सैकड़ों वर्षों से मार्ग दर्शन करता आ रहा है। रामचरित मानस समन्वयवादी, और संतुलित समाजवादी होने के कारण भी विशेष महत्वपूर्ण है। अतः उसके प्रचार और प्रसार का यही उचित समय है। इसके प्रचार-प्रसार से सामाजिक दृढ़ता आयेगी आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार होगा। शिक्षा क्षेत्र की चर्चा करते हुए शुक्ल जी ने कहा कि आज शिक्षाजगत में नैति-कता का अभाव होता जा रहा है। रामचरित मानस नैतिकता का अपूर्व ग्रंथ है इसलिये भी उसका महत्व बढ़ जाता है।

इस गोष्ठी में उत्तर प्रदेश हिंदी समिति के सचिव श्री काशीनाथ उपाध्याय भ्रमर ने कहा कि मानस चतुश्शताब्दी के संबंध में अनेक योजनाएँ आ रही हैं। किंतु जनता को प्रेरणा देने के लिये क्या किया जाय ऐसा कुछ अभी तक सामने नहीं आया। बहुत ही सुंदर एवं प्रभावकारी यह होगा कि काशी स्थित तुलसी घाट पर गोस्वामी जी की एक ऐसी विशाल प्रतिमा स्थापित की जाय जो कम से कम ४० फीट ऊँची हो। ऐसी विशाल प्रतिमा स्थायी तो होगी ही साथ ही उसका दर्शन कर के लोग अपने को धन्य मानेंगे।

गोष्ठी की अध्यक्षता की संस्कृत विश्व विद्यालय के वाइस चांसलर श्री बलराम उपाध्याय ने। अध्यक्ष पद से आपने कहा कि मूल रूप से मानव कल्याण के लिये तुलसी साहित्य का प्रचार-प्रसार अति आवश्यक है। मानस का भारत की विभिन्न भाषाओं में तथा विदेशी भाषाओं में अनुवाद कराया जाना चाहिए।

जिन अन्य विद्वानों ने अपने महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये उनमें उल्लेखनीय हैं—डा० वासुदेवसिंह डा० मोहन लाल तिवारी, डा० शंभु नाथ सिंह, पं० विद्या निवास मिश्र तथा डा० नगेंद्र उपाध्याय।

मंगला चरण किया पं० लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी' ने और गोस्वामी जी के पद का पाठ किया श्री हरीराम द्विवेदी ने।

समीक्षा

समीक्षा के लिये पुस्तक की दो प्रतियाँ भेजना आवश्यक होगा। समीक्षा यथासंभव शीघ्र प्रकाशित की जायगी। यह आवश्यक नहीं होगा कि प्रत्येक प्राप्त पुस्तक की समीक्षा की जाय। प्रत्येक पुस्तक का प्राप्तिस्वीकार पत्रिका में किया जायगा।

पाकिस्तान की पराजय

लेखक—आनंद जैन,

प्रकाशक—हिंद पाकिट बुक्स प्रा० लि० दिल्ली,

मूल्य ३ रु०

श्री आनंद जैन मूल रूप से एक प्रतिष्ठित पत्रकार हैं। आप बांगला देश की मुक्ति के लिये हुए भारत-पाक संग्राम में 'नवभारत टाइम्स' के संवाददाता रहे। ३ दिसंबर को आरंभ होकर १७ दिसंबर तक चलनेवाले इस महासमर में आपका अधिकांश समय मोरचे पर ही बीता था। अतः यह पुस्तक अपने आप में एक प्रमाणिक इतिहास लिए हुए है। भारत, पाक के बीच हुए अब तक के सभी युद्धों का संक्षिप्त विवरण भी इसमें दिया गया है। ऐसी पुस्तकों के लिये जिस प्रकार की भाषा चाहिए वैसी ही भाषा इस पुस्तक की भाषा है, मतलब यह कि पत्रकारिता की शैली में पुस्तक लिखी गई है। युद्ध संबंधी अनेक चित्र भी दिए गये हैं। मुख पृष्ठ पर विजय प्राप्त करनेवाले तीनों सेनापतियों तथा प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी एवं जवानों का सामूहिक चित्र है जो बहुत आकर्षक है। बांगला देश में हमारी सेना ने बांगला देश की मुक्ति वाहिनी के साथ मिलकर शत्रु को किस प्रकार आत्म-समर्पण के लिये वाध्य किया, किन किन भयानक स्थितियों में हमारे जवान साहस पूर्वक युद्ध करते रहे, विभिन्न दुर्भेद्य मोर्चों को तोड़ने के लिये किस प्रकार बल के साथ ही साथ बुद्धि का प्रयोग किया गया आदि बातें रोचक ढंग से दी गई हैं। बंग मुक्ति की गाथा अब तो इतिहास का विषय बन गई है। इस संबंध में अनेक पुस्तकें लिखी जायँगी किंतु आज की यह पुस्तक जो विषय को देखते हुए एकदम टटकी कही जायगी, आगे के लेखकों के लिये संदर्भ प्रस्तुत करेगी। अतः श्री जैन बधाई के पात्र हैं।

पुस्तक की सजावट आकर्षक है।

—चंद्रशेखर मिश्र

विषकन्या

ले०—श्रीमती शिवानी

प्रकाशक—हिंद पाकेट बुक्स प्रा० लि०

जे० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२, पृ० २००।

मू० ३.००।

यह कहानी संग्रह है। इसमें विषकन्या, ज्येष्ठा, शपथ, घंटा, चिर स्वयंवरा मास्टरनी धुआँ, गूँगा, प्रतीक्षा और पिटी हुई गोट लाटी ये ग्यारह कहानियाँ संगृहीत हैं। इनमें प्रथम कहानी, जिसके नाम से पूरे संग्रह का नामकरण हुआ है, एक बड़ी कहानी है। इसकी प्रमुख पात्रा कामिनी से यह कहानी सार्थवती हुई है। जुड़वाँ बहनों के रूपसाम्य से उत्पन्न भ्रम ही इसका कुतूहल नामक प्राणतत्व है। 'ज्येष्ठा' कहानी ज्येष्ठानक्षत्र में उत्पन्न नायिका की दुर्भाग्य गाथा है, जिसमें नारी के प्रकृतिवैचित्र्य का रहस्य अंकित हुआ है।

'शपथ' में यह दिखाया गया है कि परिहास भी कभीकभी अभिशाप होकर परिहास-रसिक पर वज्रपात कर जाता है। इसी प्रकार अन्य कहानियों में भी जीवन के किसी-न-किसी मार्मिक मोड़ द्वारा पाठक के मन को छू जानेवाले तत्त्व बड़ी सावधानी एवं कुशलता के साथ यथास्थान नियोजित हुए हैं। शिवानी के कथालेखन की सबसे बड़ी विशेषता उनका वर्णन शिल्प है, जो कथा से पृथक् अपना स्वतंत्र मनोमोहक अस्तित्व रखता है। इससे कहानी का वाह्य कलेवर भी उनकी कथा-नायिकाओं-सा अत्यंत आकर्षक हो उठता है। लेखिका की भाषा भाव के साँचे में ढली हुई है। अपने आभ्यंतर और वाह्य हृदय विलोभनीय रूपों के कारण लेखिका हिंदी, कथा-साहित्य में अपना प्रशंसनीय स्थान सुरक्षित कराने में समर्थ हैं। मुद्रण, मुखावरण, कागज आदि की दृष्टि से भी प्रकाशन आकर्षक है। संकलन स्वागताई है,

श्री लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी'

सभा भवन के विस्तार की योजना

नागरी प्रचारिणी सभा के पास संप्रति जो भवन है उसका शीघ्र ही विस्तार किया जायगा। क्योंकि सभा की भावी योजनाओं को देखते हुए यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जितना स्थान सभा के पास है, उतने में काम नहीं चल सकता। इस योजना को कार्यान्वित करने में दो लाख रूपये अनुमानतः व्यय होंगे। इस संबंध में सभा के प्रधान मंत्री एवं संसद सदस्य श्री सुधाकर पांडेय ने बताया है कि भवन विस्तार की योजना शीघ्र ही अपना विकसित रूप धारण कर लेगी।

हिंदी विश्वकोश

श्री पांडेय ने बताया है कि केंद्र सरकार ने हिंदी विश्वकोश के प्रथम तीन खंडों के संशोधित एवं परिवर्धित संस्करणों के प्रकाशन के लिये १ लाख ३९ हजार २०० रुपये का अनुदान दिया है। ज्ञातव्य है कि इसके पूर्व प्रकाशित १२ खंडों के लिये १६ लाख रुपये मिले थे। इस बार केंद्रीय सरकार प्रकाशन का ७५ प्रतिशत ही दे रही है किंतु अब वह बिक्री के रुपये नहीं लेगी। प्रकाशन की योजना को दृष्टिगत रखते हुए अनुमान है कि इस पर १ लाख ८६ हजार ६०० रुपये व्यय पड़ेंगे। शेष ४५ हजार रुपये की मांग प्रांतीय सरकार से की गई है। श्री पांडेय जी ने बताया है कि सभा के प्रकाशनों के रख रखाव के लिये केंद्र सरकार ने ५० हजार रुपये देने को कहा है।

आगमी योजनाएँ

१९४५ के बाद से सभा की त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट" का प्रकाशन स्थगित रहा। अब उसका प्रकाशन पुनः प्रारंभ किया जा रहा है। हर वर्ष कम से कम दो खंडों का प्रकाशन हो जायेगा। हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास के दो खंड शीघ्र ही प्रकाशित हो रहे हैं। हिंदी साहित्य संबंधी अत्यधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ 'काव्य प्रभाकर' (राय बहादुर स्व० जगन्नाथ प्रसाद भानु लिखित) संशोधित रूप में प्रकाशित हो चुका है।

मानस विचारगोष्ठी

मानस चतुश्शती समारोह के क्रम में आयोजित विचारगोष्ठी में अनेक विद्वानों ने भाग लिया। यह गोष्ठी रामनौमी के दिन सभाकक्ष में ठाकुर जयदेवसिंह की अध्यक्षता में संपन्न हुई।

मानस के प्रतिपाद्य विषय पर प्रकाश डालते हुए ठाकुर जयदेवसिंह ने बताया कि राम और उनकी अवतार लीला ही तुलसी का प्रतिपाद्य विषय है। गोस्वामी जी स्वयं कहते हैं—

एहि महँ आदि मध्य अवसाना
प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना

गोस्वामी जी की लोक मंगल भावना की व्याख्या करने के पश्चात् आपने उनकी निर्गुण एवं सगुण उपासना की विषद व्याख्या की। पद व्याख्या—

सगुनहिं अगुनहिं नहि कछु भेदा
गावहिं मुनि पुरान अरु वेदा

के ईद गिर्द मड़राती रही। इसी क्रम में आपने बताया कि रामानुज जैसे विद्वान ने भी गुण का अर्थ भ्रामक लगाया है। इसे उन्होंने दोष का प्रतियोगी माना है जो उचित नहीं है।

वृहदारण्यक में निर्गुण और सगुण का मूल मिलता है। वहाँ मूर्त-अमूर्त, मर्त्य-अमर्त्य, साकार-निराकार और निर्विशेष तथा सविशेष के रूप में निर्गुण सगुण को बताया गया है। निर्गुण अर्थात् जिसका विशेष गुण न हो, जो सबका गुण हो सारा विश्व उसी का सविशेष रूप है। निराकार का वास्तविक अर्थ है—वह जो सब आकार ग्रहण कर सकता है। है, एक में सीमित नहीं है। तुलसी के राम तो निर्गुण के ही एक रूप हैं। भक्त के प्रेमवश निर्गुण ही सगुण हो जाता है। जो गुण रहित है वह सगुण कैसे हो जाता है, इस संबंध में तुलसीदास का कथन है, हिम और उपल जैसे जल से भिन्न प्रतीत होते हैं परंतु हैं जल ही।

अंत में श्री जयदेवसिंह ने मानस के काव्यत्व की बड़ी सरस चर्चा उठाई और बताया कि तुलसी का मानस एक अनूठा ग्रंथ है।

इस अवसर पर श्री लालबहादुर पाठक ने मानस के कुछ अंश का सस्वर पाठ किया। श्री चंद्रशेखर मिश्र ने कवितावली से दो छंदों का पाठ किया और डा० शंभुनाथ सिंह ने अपना हनुमानाष्टक प्रस्तुत किया। विचार गोष्ठी का संचालन श्री श्रीनाथसिंह ने किया और धन्यवाद दिया पं० करुणापति त्रिपाठी ने।

दिल्ली में मानस दिवस

मानस चतुश्शती समारोह के क्रम में इस बार रामनौमी के पवित्र पर्व पर 'मानस दिवस' का आयोजन किया गया। इस प्रकार के आयोजन देश विदेश में अनेक स्थानों पर हुए। मानस चतुश्शती समारोह समिति ने देश की राजधानी में स्थित मावलंकर सभागार में एक भव्य आयोजन किया जिसमें अनेक विद्वानों ने भाग लिया। आयोजन की अध्यक्षता की उपराष्ट्रपति श्रीगोपाल स्वरूप पाठक ने।

अध्यक्षीय भाषण में उपराष्ट्रपति महोदय ने कहा कि रामचरित मानस से सुंदर और मधुर एक भी काव्य दिखाई नहीं पड़ता। राम कथा एक ऐसी कथा है जिसका प्रचार न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी दिखाई पड़ता है। रामचरित मानस ने संगीत एवं शिल्प दोनों को प्रभावित किया है। जब तक भारत है भारतीय संस्कृति है तब तक रामचरित मानस की देश में पूजा होती रहेगी।

समिति के सभापति एवं केंद्रीय पर्यटन मंत्री श्री कर्णसिंह ने कहा, 'पिछले चार सौ वर्षों से हमारा देश जिस ग्रंथ से प्रभावित होता रहा है, वह अद्भुत ग्रंथ है 'रामचरित मानस'। इस

काव्य ग्रंथ ने करोड़ों व्यक्तियों को प्रोत्साहन दिया है तथा नई शक्ति प्रदान की है। रामचरित मानस समग्र मानव जाति का महान् ग्रंथ है। हम दुखों का सामना किस प्रकार करें इसकी प्रेरणा हमें रामचरित मानस के राम से मिलती है। राम का जीवन उतार चढ़ाव का जीवन था। आज हमारे सामने जो नई चुनौतियाँ आ रही हैं हम उनका मुकाबला मानस द्वारा प्राप्त प्रेरणा से कर सकते हैं।

समिति के महामंत्री श्री कृष्णचंद्र पंत का कहना था कि रामचरित मानस हमें इस बात की प्रेरणा देता है कि देश में ऐसी सामाजिक और आर्थिक राजनीतिक व्यवस्था कायम हो जिसमें हर बच्चे को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिये तथा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समुचित साधन और पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध हों। किंतु यह तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य का पालन करे और देश के लिये त्याग करे। गोस्वामी जी ने कहा भी है—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई

यह एक मानवतावादी संदेश है जिसकी प्राप्ति हमें रामचरित मानस से होती है। इस संदेश का प्रसार होना चाहिए। जिन लोगों के हाथों में शासन है, आर्थिक तंत्र है उन्हें मानस की मानवतावादी नीतियों के अनुसार आचरण करना चाहिए। यदि ऐसा हो तो निश्चय ही मानव जाति का उत्थान होगा तथा राम राज्य के रूप में सुख-समृद्धि की उपलब्धि हो सकेगी। भारत की भारतीयता तथा उसके जो महान आदर्श हैं, मानस उन्हीं की गाथा हैं। यही कारण है कि मानस चतुश्शती समारोह समिति ने अपने समक्ष यह उद्देश्य रखा है कि भारतीय संस्कृति को सुदृढ़ बनाने के लिये, विभिन्न भाषाओं में प्रचलित जो भक्ति साहित्य है, जिसमें त्याग है

आदर्श है, उसका व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार किया जाय। समिति का कार्य केवल हिंदी न होकर भारत की अन्य भाषाओं तथा विश्वकी प्रमुख भाषाओं तक व्याप्त है।

आपने उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पिछले वर्ष में दिये गये एक लाख रुपये के अनुदान की चर्चा करते हुए कहा कि अन्य प्रांतीय सरकारों को भी इसका अनुसरण करना चाहिए। उनका यह योगदान सराहनीय कार्य होगा। केंद्रीय शासन को तो इस कार्य में पूरा सहयोग करना ही चाहिए। श्री पंत ने कहा कि वर्ष १९७३-७४ मे इस संदर्भ में काफी शोध कार्य देश के विभिन्न भागों में विभिन्न विद्वानों द्वारा किये जायँगे। उत्तर प्रदेश सरकार काशी में तुलसीघाट (जहाँ गोस्वामी जी ने अपना पार्थिव शरीर त्यागा था) पर भव्य निर्माण कार्य करा रही हैं।

देश की राजधानी दिल्ली में भव्य मानस-भवन का निर्माण कराने के लिये समिति कृत संकल्प है। यह स्मारक गोस्वामी जी की गरिमा के अनुकूल होगा। इसमें भारतीय संस्कृति और भक्ति साहित्य संबंधी सुंदर संग्रहालय और शोध

संस्थान स्थापित किया जायगा। समिति का यह भी प्रयास है कि हर प्रदेश, नगर तथा गाँव में राष्ट्रीय समिति की शाखाएँ स्थापित की जाँय तथा जो अन्य संस्थाएं इस संदर्भ में कार्य कर रही हैं उनके साथ समन्वय स्थापित किया जाय।

विभिन्न विश्व विद्यालयों में 'तुलसी चेयर' की स्थापना का भी निश्चय किया गया है। इस दिशा में काशी विद्यापीठ ने कार्यारंभ भी कर दिया है। हमारा निवेदन है कि अन्य विश्व-विद्यालयों में भी ऐसा कार्य किया जाय।

नागरी प्रचारिणी सभा के प्रधान मंत्री एवं संसद सदस्य श्री सुधाकर पांडेय ने अपने भाषण में कहा, "गोस्वामी श्री तुलसीदास ने रामचरित मानस की रचना करके राम का पुनर्जन्म किया। यदि हमें गोस्वामी जी जैसा महाकवि न प्राप्त हुआ होता तो रामकथा विद्वानों के जटाजूट में खोई रहती और जन मानस तक पहुँच ही न पाती। विश्व में गोस्वामी तुलसीदास जैसा महान कवि आज तक हुआ ही नहीं।

पूर्णता के पथ पर—

नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित
राष्ट्रभाषा का गौरवग्रंथ

साहित्य के माध्यम से आए शब्दों की विशाल राशि का अद्यतन प्रामाणिक संकलन। व्याकरण निर्देश, प्रामाणिक व्युत्पत्ति, अर्थसंग्रह, अर्थच्छाया, ग्रंथ की पृष्ठसंख्या के निर्देश के साथ सोदाहरण प्रयोगों से संवलित। पूर्ण शब्दसंख्या अनुमानतः २,५०,००० के लगभग। मूल्य प्रतिखंड रु० २५–००

प्रथम आठ खंड प्रकाशित, नवाँ खंड शीघ्र प्रकाश्य।

प्रथम खंड 'अ' से 'ईहित' तक	शब्दसंख्या १८,०००
द्वितीय खंड 'उ' से 'क्वैलिया' तक	,, २०,०००
तृतीय खंड 'दातव्य' से 'छ्वाना' तक	,, २१,०००
चतुर्थ खंड 'ज' से 'दस्तंदाजी' तक	,, १६,०००
पंचम खंड 'दस्त से 'न्हावना' तक	,, १६,०००
षष्ठ खंड 'प' से 'बसुर' तक	,, १६,०००
सप्तम खंड 'फ' से 'मध्वृच' तक	,, १६,०००
अष्टम खंड 'मन' से 'ल्हीक' तक	,, २०,०००

★

सभा के नवीन प्रकाशन

हितचौरासी और प्रेमदासकृत ब्रजभाषा टीका
लेखक—डा० विजयपाल सिंह तथा डा० चंद्रभान रावत १६)

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास—खंड १०
संपादक—आचार्य रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' तथा
श्री शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' काशिकेय ३०)

मधुस्रोत (आ० रामचंद्र शुक्ल की अप्रकाशित कविताएँ) ६)

हिंदी और फारसी सूफी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन
लेखक—डा० श्रीनिवास बत्रा ३०)

हिंदी और मराठी के ऐतिहासिक नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन—
ले०—प्र० रा० भुपटकर ३०)

शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाले ग्रंथ

बिहारी सतसई—(लालचंद्रिका टीका से युक्त)
सं० श्री सुधाकर पांडेय, मूल्य लगभग ५१)

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास—खंड ८—सं० विनयमोहन शर्मा, मूल्य ३०)
" " " " खंड ७, रीतिकाल (गीतिमुक्त)
—सं० डा० भगीरथ मिश्र ३०)

हिंदी शब्दसागर—खंड ९ अनुमानित मूल्य २५)

रीतिपरिवेश—श्री करुणापति त्रिपाठी " १५)

जसवंतसिंह ग्रंथावली—सं० प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र " ८)

सोमनाथ ग्रंथावली (दो खंडों में)—सं० पं० सुधाकर पांडेय " ४०)

नवीन संशोधित एवं परिवर्धित

नागरी प्रचारिणी सभा
काशी

इस सर्वाधिक लोकोपयोगी कोश का संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण अभी अभी प्रकाशित हुआ है जिसमें शब्दसंख्या तथा आकार आदि में पर्याप्त वृद्धि हुई है। शब्दसंख्या साठ हजार। मूल्य ३५) मात्र

स्वत्वाधिकारी—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के लिये शंभुनाथ वाजपेयी द्वारा नागरी मुद्रण,

मई, १९७२

सभा की दिल्ली शाखा में स्व० जगन्नाथप्रसाद 'भानु' रचित 'काव्यप्रभाकर' के नवसंस्करण का प्रकाशनोद्घाटन।

मंच पर दाहिने से श्री सेठ गोविंददास, सभा के अध्यक्ष पंडित कमलापति त्रिपाठी, श्री के० सी० पंत और डा० रत्नाकर पांडेय बैठे हैं।

सभा के प्रधान मंत्री श्री पं० सुधाकर पांडेय (प्रस्तुत ग्रंथ के संपादक) भाषण करते हुए।

वाराणसी

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

संपादकमंडल
करुणापति त्रिपाठी
डा० नागेंद्रनाथ उपाध्याय
मोहकमचंद मेहरा
संपादक—सुधाकर पांडेय
सहसंपादक—श्रीनाथ सिंह

दिल्ली प्रतिनिधि—
डॉ० रत्नाकर पांडेय,
४२, अशोक रोड,
नई दिल्ली।
फोन—
३८८१७०

लखनऊ प्रतिनिधि
डा० हरेकृष्ण अवस्थी,
एम० एल० सी०,
४, बादशाह बाग,
लखनऊ।
फोन—२४५५६

वैचारिकी

इसमें संदेह नहीं कि हिंदी को राष्ट्रभाषा पद मिलने के बाद से उसके प्रकाशनों एवं पाठकों की संख्या में पहले से वृद्धि हुई है। प्रकाशनों को हर प्रकार से उत्तम बनाने की ओर भी ध्यान दिया जाने लगा है जिसके परिणाम स्वरूप अब पुस्तकों की छपाई, बँधाई और साज सज्जा में परिवर्तन होता जा रहा है। किंतु पाठ्य पुस्तकों के अलावा अन्य प्रकार की पुस्तकों के पढ़ने की रुचि में उतनी वृद्धि नहीं हो पाई है जितनी अपेक्षित है। पाठ्य पुस्तकों को पढ़ना तो एक लाचारी है। जब १०-२० पैसे का अखबार प्रायः लोग दूसरों से माँग कर पढ़ना चाहते हैं, या इसी के लिए सवेरे किसी चाय की दूकान में जाना पसंद करते हैं तो इसी से अनुमान लगा लेना चाहिए कि देश में ऐसे कितने लोग होंगे जो खरीद कर पुस्तकें पढ़ना या उनका संग्रह करना पसंद करते होंगे। यह सच है कि आज के आदमी का जीवन पहले से कहीं अधिक व्यस्त हो चला है किंतु यह बात उन थोड़े से लोगों पर भी लागू होती है जिनमें नई-नई पुस्तकें पढ़ने की रुचि होती है। यही कारण है कि हिंदी में होनेवाले प्रकाशनों की बिक्री जितनी होनी चाहिए थी, उतनी नहीं हो पा रही है? जहाँ तक पाठ्य पुस्तकों की बात है उसके संबंध में हम बिना किसी संकोच के इस सत्य को प्रकट कर देना चाहते हैं कि प्रायः वे ही पुस्तकें पाठ्य क्रम में रखी जाती हैं जिन्हें विश्वविद्यालयों के तत्विभागीय शिक्षक तैयार करते हैं। ज्ञान की जगह अर्थ प्रधान हो चला है। इस कारण विभागीय शिक्षकों की पुस्तकें, जब तक वे अपने पद पर रहते हैं। तब तक तो चलती ही रहती हैं और उनके हटते ही प्रायः दूसरी पुस्तकें उनका स्थान ले लेती हैं। यदि बाहर का कोई प्रकाशक किसी अच्छे लेखक से उसी विषय

भी कोई विद्वतापूर्ण पुस्तक प्रकाशित करता है तो उसकी उतनी बिक्री नहीं होती जितनी विभागीय अध्यापक की पुस्तकें पाठ्य क्रम में निर्धारित होने के कारण बिकती हैं? अच्छी से अच्छी पुस्तकें छाप कर भी आज की प्रकाशन संस्थाएं उनकी बिक्री के लिये चिंतित रहती हैं।

राजधानी से लेकर देश के छोटे-मोटे स्थानों तक में इस विषय पर अनेक बार विचार गोष्ठियाँ हो चुकी हैं किंतु समस्या आज भी जहाँ की तहाँ ही है। प्रकाशन संस्थाओं के प्रचारक यत्र-तत्र अपने प्रकाशनों को बेचाने के लिए दौड़ते रहते हैं। साधारण पाठकों के सामने भी उनकी समस्याएँ हैं। महंगी तो हर क्षेत्र में आई हुई है। अतः पुस्तकों के दामों में वृद्धि होना स्वाभाविक है किंतु पाठक तो जीवन की अन्य समस्याओं को सुलझा लेने के बाद ही पुस्तक खरीदेगा। आज हिंदी ही नहीं, भारत की प्रत्येक भाषा में ग्रंथों के मूल्य के संबंध में कोई नियम नहीं है। यह भी हिंदी प्रकाशनों के विक्रय के समक्ष एक समस्या है जिसे हल किया जाना चाहिए। इस सत्य को सभी जानते हैं कि यदि सरकारों, विद्यालयों और पुस्तकालयों द्वारा पुस्तकें न खरीदी जायँ तो उनकी बिक्री और भी कम हो जायगी।

आज के युग में यातायात के साधनों में बराबर वृद्धि होती जा रही है, विज्ञान उत्तरोत्तर प्रगति करता जा रहा है, विश्व की दूरी और देरी दोनों कम होती जा रही हैं। अतः हिंदी के प्रकाशनों की देश में जो न्यूनाधिक खपत हो रही है उसके अलावा भी हमें पुस्तकों के निर्यात के संबंध में सोचना होगा। जिस प्रकार हमारे देश के विश्वविद्यालयों में विश्व की अनेक भाषाओं की पढ़ाई होती है, उसी प्रकार अन्य देशों के कितने ही विश्वविद्यालयों में हिंदी भी पढ़ाई जाती है। उसके लिए भारत से शिक्षकों के साथ ही पुस्तकों की भी माँग होती है। निश्चय ही यह हिंदी और हिंदी में प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों के विस्तार का शुभ लक्षण हैं। क्या कारण है कि भारत में अन्य देशों की पुस्तकों का आयात हो और भारत से हिंदी की पुस्तकों का निर्यात कम हो। इस संदर्भ में भी हमारे देश के प्रकाशकों को सोचना होगा। यदि हिंदी को विश्व की अन्य उच्च-भाषाओं की पंक्ति में बैठाना है तो हमें यहाँ के प्रकाशनों का स्तर भी हर प्रकार से ऊँचा करना होगा। तभी विदेशों में हिंदी की पुस्तकों की अधिक खपत हो सकेगी।

अभी पिछले वर्ष रामचरितमानस की कई हजार प्रतियाँ मारीशस तथा कुछ अन्य देशों में, जहां भारतीय निवास करते हैं, भेजी गई थीं किंतु यह निर्यात बाहर निवास करनेवाले भारतीयों की धार्मिक आस्था के कारण माना जायगा। यदि वे यहाँ होते तो भी मानस को एक धर्म ग्रंथ की भाँति पढ़ते ही। अतः अन्य प्रकार के भारतीय ग्रंथों का भी बाहर प्रचार होना चाहिए। यदि देश के लोगों में पुस्तकें खरीद कर पढ़ने की रुचि बढ़े, पुस्तकों का स्तर ऊँचा हो और उनकी साज सज्जा तथा छपाई आदि आधुनिकतम हो तो कोई कारण नहीं है कि हिंदी के प्रकाशनों की बिक्री कम हो।

—सुधाकर पांडेय

हमारी शिक्षानीति

श्री सुधाकर पांडेय (संसद सदस्य)

नागरीप्रचारिणी सभा के प्रधान मंत्री एवं संसद सदस्य श्री सुधाकर पांडेय ने गत १२ अप्रैल को लोक सभा में शिक्षा मंत्रालय के संबंध में भाषण करते हुए कहा, उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रोफेसर नूरुल हसन साहब का शिक्षामंत्री के रूप में स्वागत करना चाहता हूँ। इसलिए स्वागत नहीं करना चाहता कि वह शिक्षामंत्री हैं। इसलिए स्वागत करता हूँ कि शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने अपना जीवन और अपने जीवन का उज्ज्वलतम पक्ष बिताया है और वहाँ पर यश प्राप्त किया है। जब से वह शिक्षामंत्री हुए हैं, इस बात का प्रयत्न कर रहे हैं कि सारी चीजों की जाँच पड़ताल की जाय और उसके लिए अध्ययनमंडलों की स्थापना की है, रिव्यूइंग कमेटियों की स्थापना की है, स्वयं भी जानकारी हासिल करना चाहते हैं कि शिक्षा की प्रगति और उसका अभ्युदय किस प्रकार होगा और किस तरह से २५ वर्षों से जो हमारा गति का रथ रुक गया था, हमारी प्रगति की गति धीमी पड़ गई थी, उसे किस प्रकार गति दी जाय। यह सर्वविदित है कि हमारी शिक्षानीति, राष्ट्रीय शिक्षानीति स्थिर है। अब प्रश्न केवल इस बात का है कि हम एक संकल्पात्मक दृष्टि लें और संकल्पात्मक कार्य करें ताकि उन आदर्शों को, उन परिकल्पनाओं को और उन चीजों को हम पूर्ण कर सकें जिनकी देश को आवश्यकता है। कोई भी देश जहाँ शिक्षा न हो बड़ा और अभ्युदयशाली नहीं हो सकता, क्योंकि ज्ञान जिस गति से संसार में बढ़ रहा है और जिस गति से ज्ञान की गरिमा जीवन को अभ्युदय की ओर ले जाने के लिए अपेक्षित है, आज के युग में उस गति को देखते हुए यह आवश्यक है कि भारत जैसे महान् राष्ट्र को और महान् बनने के लिए शिक्षा की व्यवस्था में बराबर ओजस्वी सुधार, परिष्कार किए जायँ और जिन बातों की आकांक्षाएँ हमारी हैं, जो हमारी परिकल्पनाएँ हैं, राष्ट्र जिनकी अपेक्षा करता है, शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें पूरा किया जाय।

यह सबको मालूम है कि कांग्रेस के चुनाव घोषणापत्र में हमने यह संकल्प रखा है कि सन् १९७५ तक हम ११ वर्ष के बच्चों को अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा देंगे और सन् १९८० तक निश्चित रूप से हम १४ वर्ष के बच्चों को अनिवार्य रूप से माध्यमिक शिक्षा देंगे। इस संकल्प के क्षेत्र में कुछ शिथिलता दिखाई पड़ रही है। अभी समाचारपत्रों में शिक्षा मंत्रालय की कमेटी की जो कुछ बातें आ रही हैं उनसे आशा बँधी है, किंतु शिक्षामंत्री से मैं यह आग्रह करूँगा कि इस कार्य को तीव्र गति से करें। क्योंकि प्राइमरी स्कूलों को देखने का अवसर प्रायः हम लोगों को प्राप्त होता रहता है और उन स्कूलों की स्थिति, जिनकी चर्चा मैं पहले भी कर चुका हूँ, इतनी दयनीय है, इतनी विपन्न है, इतनी घृणास्पद है कि उसमें आदमी क्या जानवर के बच्चे भी नहीं पढ़ सकते। अच्छा यह हो रहा है कि प्रत्येक ब्लाक में और प्रत्येक जिले में एक माडेल स्कूल की स्थापना करने की बात हो रही है। लेकिन इसका कार्यान्वयन शीघ्रातिशीघ्र होना चाहिए और इसके बीच में कोई वैधानिक

या राज्य और संघ के बीच किसी प्रकार का मतभेद हो तो उनको समाप्त कर देना चाहिए क्योंकि हमारी प्रगति के अवरोध में बहुत सी चीजें तो ऐसी हैं जिन्हें आपस में विचार विनिमय के द्वारा राज्य और केंद्रीय सरकार तय कर सकती है। किंतु दुर्भाग्य यह है कि कुछ लोगों ने यह मान रखा है कि शिक्षा नीति सीमित हो और उसके संबंध में राज्य और केंद्र की लड़ाई का भी प्रश्न उठा दिया जाय, क्षेत्र का प्रश्न भी उठा दिया जाय। इसके कारण भी प्रगति में अवरोध हुआ है। अगर ऐसी अवरोध की स्थिति हो और संविधान में संशोधन की अनिवार्यता हो तो वह किया जाय या और कोई तरीका निकाला जाय जिससे इस क्षेत्र में किसी तरह का व्यवधान उपस्थित न होने पाए।

जहाँ तक उच्च शिक्षा की बात है, यू० जी० सी० ने बड़ा अच्छा कार्य किया है। सारे विश्वविद्यालयों के लिए धन की व्यवस्था उसने की है। पर केवल धन से आत्मा की स्थापना नहीं हो सकती। काम बहुत बढ़ गया है। उसके कारण मुझे ऐसा लगता है कि वह केवल धन के वितरण में ही अपना सारा समय गंवा देता है और उसे इतना अवकाश नहीं रह गया है कि शिक्षा के प्रतिमानीकरण का जो कार्य उसे मूलतः सौंपा गया था, उसे कर सके। तो या तो यू० जी० सी० का विस्तार होना चाहिए और यदि विस्तार नहीं होता है तो उसी प्रकार की किसी और एजेंसी की स्थापना शिक्षा मंत्री महोदय को करनी चाहिए जो कि ज्ञान की उच्चता को बढ़ा सके।

दूसरी बात विश्वविद्यालयों के संबंध में यह कहनी है कि राजनीतिक प्रभाव प्राप्त करने का यत्न तो राजनीतिज्ञ शिक्षा संस्थाओं में करते ही हैं, और लोग भी करते हैं, उनसे उन्हें मुक्ति दिलाई जाय, किंतु साथ ही जो देश के गुरु हैं,

कपिल हैं, कणाद हैं, विश्वामित्र हैं, वशिष्ठ हैं, उनसे भी मैं आग्रह करना चाहूँगा कि समाजवाद में किसी की महंतई नहीं चल सकती। यदि शिक्षा की प्रगति इस कारण नहीं हुई है कि राजनेताओं में यह योग्यता नहीं थी कि वह शिक्षा का संचालन कर सकें तो यह भी मानने से इनकार नहीं करना चाहिए, इन वशिष्ठ और विश्वामित्रों को कि जितनी गंदी राजनीति विश्वविद्यालयों में इन्होंने स्थापित की है और विभागाध्यक्षों ने जिस प्रकार की अपनी महंतई स्थापित की है, उस महंतई का जवाब भी आप को इतिहास में ढूढ़े नहीं मिलेगा। तो शिक्षा मंत्री महोदय को यह भी प्रयत्न करना होगा कि इन विश्वविद्यालयों में अध्यापकों के कारण जो राजनीतिक गंदगी आ गई है वह दूर हो क्योंकि एक बार जो अध्यापक हो जाता है वह जन्म-जन्मांतर के लिए अध्यापक हो जाता है और ज्ञान का जो विकास हो रहा है, उसे ग्रहण करने की क्षमता उसमें नहीं है। इसलिए मेरा तो यह कहना है कि इन अध्यापकों के लिए भी एक प्रकार की ट्रेनिंग की व्यवस्था करें क्योंकि इंटरमीडिएट तक तो आप ट्रेनिंग की व्यवस्था करते हैं अध्यापकों के लिए, किंतु विश्वविद्यालयों में जिस दिन आदमी पी. एच० डी० हो जाता है और नौकरी मिल जाती है, वह जैसा चाहता है वैसा लड़कों को पढ़ाता है, जैसे चाहता है वैसे पी० एच० डी० देता है, जैसे चाहता है वैसे लोगों को नौकरी का पुरस्कार बाँटता है और यह सब होता है शिक्षा संस्थाओं की स्वायत्तता के नाम पर। वह स्वायत्तता जो मृत्यु की उपासना करती है, जो देश को अगति की ओर ले जाती है, वह स्वायत्तता जो देश का सर्वनाश करती है, क्योंकि शिक्षा का सर्वनाश हो जायगा तो देश का सर्वनाश हो जायगा, ऐसी स्वायत्तता के ऊपर शिक्षा मंत्री जी को अगर अंकुश भी लगाना पड़े तो उसका देश के लोग स्वागत करेंगे। दूसरी बात इन विश्वविद्यालयों के संबंध में मुझे यह कहनी है कि इन विश्वविद्यालयों में देश की गरीब जनता की कमाई का लाखों-करोड़ों रुपया व्यय होता है।

इनके जो अनुसंधान होते हैं, वे विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में ही रह जाते हैं। उनका सदुपयोग जनता नहीं कर पाती। कृषि के क्षेत्र में कुछ काम हुआ, जनता ने उसका लाभ उठाया, लेकिन ज्ञान के क्षेत्र में जो काम होता है, उसका जनता लाभ नहीं उठा पाती। जैसे एक बार पटवारी की भाषा कचहरी में बन गई, उसी तरह से विश्वविद्यालयों की खोज की भाषा बन गई है, जो साधारण जनता के काम नहीं आती। साधारण जनता की कमाई के रुपए से जो खोज की जाती है, वह उस भाषा में होती है जो साधारण जनता की समझ की भाषा से बाहर है। इसलिए आवश्यक है कि देश की भाषा में इसका विकास हो।

मैं केंद्रीय सरकार को बधाई देता हूँ कि उसने हर राज्य को एक करोड़ रुपया भारतीय भाषाओं में उच्च स्तर की साहित्यरचना के लिए दिया है, लेकिन उसकी क्या दुर्गति हो रही है, मैं जानता हूँ। मैं भी एक-आध जगह सदस्य हूँ और मैं जानता हूँ कि उसकी क्या दुर्गति होती है। इसकेलिए शिक्षामंत्रालय यह कहकर मुक्त होना चाहता है कि यह उसका उत्तरदायित्व नहीं है राज्य सरकारें इसके लिए उत्तरदायी हैं। उन्होंने कमेटी बना दी है, जिनमें वाइसचांसलर्स हैं, अच्छे लोगों को उनमें रखा गया है लेकिन इतना कहकर शिक्षामंत्रालय मुक्त नहीं हो सकता। वह देख रहा है कि जनता की कमाई लूटी जा रही है, साहित्य की रचना नहीं हो रही है, उस पर अपव्यय किया जा रहा है, धन का दुरुपयोग किया जा रहा है, समय से काम नहीं हो पा रहा है। आज कल एक सिद्धांत लोगों ने बना रखा है कि जब साहित्यरचना हो जायगी, तब भारतीय भाषाओं के माध्यम से उसकी पढ़ाई हो जायगी। यह तो इस प्रकार की बात है कि पानी में तैरने नहीं देंगे, जब तैरना सीख जाओगे तो नदी में ढकेल देंगे। कितने अधिक ज्ञान का विस्तार इन

विश्वविद्यालयों में हो रहा है यह मैं आपको बतलाता हूँ। ३०-३५ साल पुराना जो ज्ञान है, वही आज भी पढ़ाया जा रहा है, जो आधुनिक ज्ञान है, वह नहीं पढ़ाया जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में हायर सेकेंडरी स्टेज पर विदेशों में जितना विकास हुआ है, उसके मुकाबले में आप अपने देश में देखिए। वही यादवचंद्र चक्रवर्ती की किताब हमारे पिता ने पढ़ी, वही हमने पढ़ी, और उसी को कुछ उदाहरण बदल कर आज भी पढ़ाया जा रहा है।

नूरुलहसन साहब स्वयं एक शिक्षाशास्त्री हैं। उनसे कहूँगा कि यदि शिक्षा के क्षेत्र में आपको क्रांति लानी है तो टीचरों को पढ़ाने की व्यवस्था करें और तब तक पढ़ाते रहें जब तक उन्हें पूर्ण ज्ञान न हो जाय क्योंकि पढ़ाने के लिए टीचरों को पढ़ाने की व्यवस्था में कमी है। आज एक बार पढ़ने के बाद फिर पढ़ने की आवश्यकता टीचरों को नहीं पड़ती।

बहुत सी एकाडमियाँ स्थापित हुई हैं जो कला का प्रचार करती हैं, साहित्य का प्रचार करती हैं। उनके ऊपर एक जांच समिति बैठी हुई है, खोसला साहब के सभापतित्व में। दो-तीन साल उसको हो चुके हैं, लेकिन उसकी रिपोर्ट अभी तक नहीं आई है। शायद दो साल के बाद रिपोर्ट आ जाय, उसके बाद दो-तीन साल तक शिक्षा मंत्रालय उसपर विचार करेगा, इस तरह से सात-आठ साल का समय बीत जायगा। आज के विज्ञान के युग में, जबकि सारी चीजें तेज गति से बढ़ रही हैं, इन अकादमियों की तरफ शिक्षा-मंत्रालय का ध्यान नहीं जाता है, यह अच्छी बात नहीं है। समाजवाद की स्थापना के लिए उसके साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में भी अनन्य कार्य

करने होंगे और यह कार्य भी करना होगा जिससे आज के पढ़े-लिखे और अपढ़ लोगों के बीच जो एक बिलगाव की खाई आ गई है, वह समाप्त हो सके। हमारी साहित्यिक संस्थाएँ सांस्कृतिक संस्थाएँ सामाजिक संस्थाएँ, जो बाहर हैं, सरकार के संरक्षण में नहीं हैं, जिन्होंने गुमनामी के दिनों में बहुत सुंदर काम किया है, उनकी सहायता लेनी होगी। मैं भी एक ऐसी ही संस्था से संबद्ध हूँ—काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने हिंदी विश्वकोष की रचना की है शिक्षा मंत्रालय ने अगर इस काम को किया होता तो शायद आज तक भी वह रचना पूरी न हुई होती, उसपर बहुत ज्यादा लागत आती तथा जो भी रचना बनती वह निम्न प्रकार की होती।

आज कल एक बड़ी चर्चा सप्रू हाउस और नेहरू विश्वविद्यालय की चल रही हैं। बजाय इसके कि उस लाइब्रेरी का विकास हो, विस्तार हो, उसमें झगड़ा खड़ा हो गया है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, वह दो संस्थाओं की संपत्ति है। जब उस ज्ञान की रक्षा की बजाय शिक्षा मंत्रालय उसके झगड़े में पड़ेगा, तो वही स्थिति होगी जो हिंदी साहित्य सम्मेलन की हुई १०-१५ साल के बाद उनको कृष्णमुख होना पड़ा था। इसलिए मैं कहना चाहता हूँ कि शिक्षा मंत्रालय मुकदमेंबाजी के चक्कर में न पड़े, बल्कि नवनिर्माण पर नजर रखे और मुकदमेबाजों को कहे कि जनाब, हमारा पिंड छोड़िए ताकि शिक्षा का, विकास हो।

मैं अंत में प्रोफेसर साहब को धन्यवाद देता हूँ। धन्यवाद इसलिए देता हूँ कि उनके पहले मौलाना आजाद से लेकर आज तक शिक्षा एक ऐसी खेती रही है जिसपर कोई ध्यान नहीं दिया गया है, लेकिन अब निश्चित रूप से प्रोफेसर साहब उसपर ध्यान देंगे, जिससे न केवल कांग्रेस दल का बल्कि सारे भारत का मुख उज्ज्वल होगा।

समाजवाद के लिए हिंदी आवश्यक

माननीय राष्ट्रपति महोदय के भाषण का स्वागत करते हुए संसद सदस्य एवं नागरी प्रचारिणी सभा के प्रधानमंत्री श्री सुधाकर पांडेय ने गत ३ अप्रैल को संसद में कहा—उपाध्यक्ष जी, मैं राष्ट्रपति जी के भाषण और उसमें जो उल्लिखित विकासमूलक और मंगलमूलक तत्व हैं उनका अभिनंदन करता हूँ। सारे देश की जनता ने समाजवाद के घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किया है और देश में समाजवाद के लिए एक भावोदय हुआ है। भाव का उत्पन्न होना दुनिया में सामान्य बात नहीं है किंतु उसके लिए भाषा की अपेक्षा होती हैं। श्री अच्युत पटवर्धन जैसे विचारक ने अभी हाल ही में काशी में सार्वजनिक रूप से कहा है कि यदि कोई दल, सर्वाधिक समाजवादी दल, इस समय देश में है तो वह कांग्रेस ही है। किंतु जब १९३६ में, समाजवादी दल की कांग्रेस में स्थापना हो रही थी तो पंडित जवाहरलाल नेहरू ने आचार्य नरेंद्रदेव जी और जयप्रकाश नारायण जी के नाम संदेश भेजा कि यदि समाजवाद आना है, तो जनता की भाषा का उपयोग और प्रयोग करनां होगा परंतु दुर्भाग्य यह रहा है कि स्वतंत्रता के बाद शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में जितना ध्यान देना चाहिए था उतना नहीं दिया गया। कोई भी देश प्रगति नहीं कर सकता यदि उसकी अपनी भाषा और संस्कृति नहीं होगी। इस देश की संस्कृति सदा से समाजवादी रही है क्योंकि भारत ही एक ऐसा देश है जो सदा से भेद में अभेद देखता रहा है। यह हमारी मूल संस्कृति की चेतना है और इस संस्कृति की चेतना को कुछ संप्रदाय वाले हिंदू के नाम पर और कुछ मुसलमान के नाम पर संकीर्ण करते रहे हैं। यह संकीर्णता की भावधारा है क्योंकि जहाँ संकीर्णता होगी वहाँ अगति होगी, जहाँ संकीर्णता होगी वहाँ पर मृत्यु की उपासना होगी। जीवन की उपासना वहाँ होती है जहाँ अभेद की दृष्टि होती है, जहाँ अभेद की जय होती है। अभेद की दृष्टि तब तक नहीं आ सकती जब तक सांस्कृतिक पक्ष की ओर ध्यान न दिया जाए। किंतु देश का यह दुर्भाग्य रहा है कि इन २५ वर्षों के भीतर हम कोई स्पष्ट शिक्षानीति नहीं बना पाए। यही एक ऐसा विषय है कि जितने भी कमीशन बने हैं, चाहे वे राज्य स्तर पर बने हों और चाहे भारतीय सरकार के स्तर पर बने हों, चाहे वह आचार्य नरेंद्रदेव कमीशन रहा हो और चाहे वह संपूर्णानंद कमीशन रहा हो, चाहे वह राधाकृष्णन कमीशन रहा हो और चाहे वह कोठारी साहब कमीशन रहा हो, किसी भी कमीशन की बात नहीं सुनी गई और किसी भी कमीशन की बात को कार्यान्वित नहीं किया गया, उसकी जो उपलब्धियाँ हैं उनको कार्यान्वित नहीं किया गया।

गाँवों में जब हम जाते हैं तो यह देखते हैं कि प्राइमरी पाठशालाओं की ऐसी स्थिति हो गई है कि उनमें जानवर और चिड़ियाँ भी चैन से नहीं रह सकतीं। पेड़ों पर बने हुए घोंसले अधिक अच्छे हैं, अपेक्षाकृत उन प्राइमरी पाठशालाओं और उन स्कूलों के जिनमें भारत के भविष्य विधाता होनेवाले बच्चे शिक्षा प्राप्त करते हैं। यह सही है कि वह विषय राज्य का विषय है किंतु हम यह जानते हैं कि जहाँ भी प्रगति में कोई चीज बाधक होगी, चाहे राज्य प्रगति में बाधक हो, व्यक्ति प्रगति में बाधक हो, या बल प्रगति में

बाधक हो, उस अवरोध को हमें हटा देना चाहिए, यदि हम वास्तव में समाजवादी हैं। यदि इस बात की आवश्यकता है कि शिक्षा को केंद्र का विषय होना चाहिए तो उसके बनाने में किसी प्रकार की चिंता नहीं करनी चाहिए, किसी प्रकार की परवाह नहीं करनी चाहिए और निश्चय ही जो हमारे नौनिहाल हैं उनके लिये शिक्षा के क्षेत्र में ओजस्वी ढंग से कार्य करना चाहिए।

कतिपय प्राइमरी पाठशालाओं के लिये कुछ कहा जा रहा है और हमारे घोषणापत्र में भी प्राइमरी पाठशालाओं के लिये कुछ कहा गया है लेकिन वह तप्त तवे पर जल की बूँद छिड़कना मात्र है और उससे कोई उल्लेखनीय काम नहीं होने वाला है।

दूसरी बात मुझे यह कहनी है कि समाजवाद अगर हमें ले आना है, तो माध्यम की पवित्रता की बात गांधी जी भी कहते थे और हम लोग भी कहते हैं लेकिन जिस मशीनरी के माध्यम से समाजवाद ले आना है, उससे एक नहीं हजार वर्ष तक भी हम लोग समाजवाद का नारा देते रहें तो वह माध्यम कभी भी किसी भी प्रकार समाजवाद नहीं लाने देगा। वह जनता के बीच में जिस प्रकार मध्यस्थता, दलाली कर के हमारी प्रगति को रोके हुए है, जिस प्रकार सरकारी कर्मचारियों का जो तंत्र है, वह तंत्र और यंत्र हमारी प्रगति में मूलतः बाधक है क्योंकि योजना बनाने में हम उनकी सलाह लेते हैं, लेकिन जब कार्यान्वयन की बात आती है तो उसका कार्यान्वयन कभी नहीं होता। परिणाम यह होता है कि दिनोत्तर व्ययभार योजना पर बढ़ता जाता है और बहुत सी योजनाओं के व्यय-भार बढ़ने के कारण हमारा गरीब देश साधन उपलब्ध नहीं कर पाता। परिणाम यह होता है कि हमारी योजनाएँ खटाई में पड़ जाती हैं और जो प्रगति होनी चाहिए वह नहीं हो पाती। जब हमारे

भीतर किसी प्रकार की कोई कमजोरी नहीं है तो जो अवरोध किसी भी प्रकार हमारे बीच में आता है उस अवरोध को समाप्त करने में किसी-प्रकार भी हमें हिचकना नहीं चाहिए, किसी प्रकार की चिंता नहीं करनी चाहिए, नहीं तो १९६७ में जिस तरह से जनता ने आकाश दिखलाया था हमारे ऊपर, और विरोधियों ने समझ लिया था कि जनता का उन्हें प्यार प्राप्त हो रहा है और जनता के वे भाग्य विधायक हो गए हैं, उसी प्रकार का धक्का १९७६ में फिर से खाना पड़ सकता है। इसलिए मैं शासन से निवेदन करना चाहता हूँ क्योंकि शासन अपना है, देश की जनता का है, कि इस टी० बी० के कीटाणु से देश की जनता की रक्षा करनी चाहिए व्यवधानों के रूप में टी० बी० के जो कीटाणु हैं इनसे देश की और समाज की रक्षा की जाए, नहीं तो प्रगति नहीं होगी।

तीसरी बात की ओर मैं आप का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ कि बहुत से विदेशी लोग या बहुत सी विदेशी संस्थाएँ हमारे देश में नाना प्रकार का प्रचार और प्रसार करती हैं और इन संस्थाओं में अंतराष्ट्रीय संस्थाएँ भी बहुत सी हैं और वे हमारी सहायता भी करती हैं, हमारी मदद भी करती हैं। ये वे लोग हैं जो हमारे हितों के विरोधी हैं। सामान्य जनता के हितों के विरोधी और सारे संसार की सामान्य जनता, जो कि सुख, शांति और चैनपूर्वक रहना चाहती है, उसके हितों के विरोधी हैं। मैं विशेषकर अमेरिकन संस्थाओं की बात करना चाहता हूँ जिन के माध्यम से हमारी गरीबी, हमारी दरिद्रता का प्रचार और प्रसार किया जाता है। अभी २६ तारीख के अखबार में छपा था कि इंटरनैशनल रोटरी ने कोई हमारा मानचित्र छापा जिसमें हमारे देश का बहुत अंग नहीं दिखाया गया है। यदि विदेशी माध्यम के प्रचार को और यह जो 'कोका कोला' के विज्ञापन आप देखते हैं, हमारी विजय पर जो विज्ञापन निकले हैं उनको

आप देखें तो वे भारत की गरिमा को ठेस पहुँचाने-वाले हैं। भले ही उनमें कोई बात साफ न लिखी हो। मेरा कहना यह है कि इन संस्थाओं का पता लगाया जाना चाहिए।

एक बात और कहना चाहता हूँ कि हम ने प्रिवीपर्स समाप्त कर दिया, राजाओं के विशेषाधिकार हम ने समाप्त कर दिए। यह हमने बहुत अच्छा किया और इसको बहुत पहले हो जाना चाहिए था, किंतु देश की हजारों वर्ष की कलात्मक वस्तु और हमारे ग्रंथ, ज्ञान विज्ञान के ग्रंथ, उनके संग्रहालयों में पड़े हुए हैं और उनका ये व्यापार करते हैं। बहुत से तो सड़ तक जाते हैं क्योंकि उनकी कोई उचित व्यवस्था नहीं कर पाते हैं। उनको शासन को अपने हाथ में लेना चाहिए। कानून बना कर हमारे ज्ञान, विज्ञान, कला और संस्कृति की चीजें जो कि जनता के हाथों से बनी थीं, जनता की गाढ़ी कमाई से जो बनी हैं, निश्चित रूप से उनके संरक्षण और सुरक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए क्योंकि वही शासन बड़ा होता है, वही लोग बड़े होते हैं, वही सरकार बड़ी होती है, जो कला और संस्कृति को प्रोत्साहन देती है। वास्तव में वह गरीब लोगों की कमाई रही है। राज दरबार में जो साहित्यकार और कलाकार रहते थे, वे अपने पेट के लिए अपने जीवनयापन के लिए अपनी कला को इन राजाओं के मनोरंजन के निमित्त बेचते रहे हैं और उन्हीं का संग्रह उनके पास है, जिस को अगर कोई देखना चाहे, या सुनना चाहे तो देख और सुन नहीं सकता है। तो सरकार से मेरी प्रार्थना है, आग्रह है कि इन कलाकृतियों को, जिनका व्यवसाय बड़े व्यापक पैमाने पर हो रहा है, अमेरिका में भी हो रहा है और बहुत तेजी से होता है, उसको रोके। मैं समझता हूँ कि लाखों करोड़ों रुपए की चोरबाजारी हो रही है और इसको रोकने के लिये विधेयक तो आनेवाला

ही है वह विधेयक पर्याप्त नहीं होगा। इसलिये मेरा कहना यह है कि इन राजा महाराजाओं के संग्रहालयों को राष्ट्र की संपत्ति घोषित कर दिया जाए और उन्हें निश्चित रूप से ले लेना चाहिए।

अंत में मैं सरकार से यह अनुरोध करूँगा कि समाजवाद की यदि स्थापना करनी है, तो वह भारतीय भाषाओं में ही होगी और उसके उन्नयन के लिए कार्य करना होगा। अगर उसके उन्नयन के लिए कार्य नहीं करते हैं और वोट लेने की भाषा को, जन जीवन की भाषा को शासन की भाषा नहीं बनाते हैं तो निश्चित रूप से हम अपने साथ और अपनी जनता के साथ फरेब करते हैं।

इन शब्दों के साथ मैं राष्ट्रपति के अभिभाषण का अभिनंदन करता हूँ और सरकार से जो मैंने अनुरोध किया है, मैं विश्वास करता हूँ कि सरकार उस पर अवश्य विचार करेगी।

ओडिआ कहानी में नवचेतना

किशोरचंद्र पांडेय

आधुनिक ओडिआ कहानी के जन्मदाता फकीर मोहन सेनापति हैं जो ओडिआ साहित्य में वैसा ही महत्व रखते हैं जैसे हिंदी साहित्य में भारतेंदु हरिश्चंद । सन् १८९८ में उनकी 'रेवती' नाम की कहानी ओडिआ पाठकों के सामने आई और तभी से ओडिआ कहानियों के विकास का धारावाहिक इतिहास हमें देखने को मिलता है।

बहुत प्राचीन काल से हमें यह देखने को मिलता है कि भारतीय साहित्य की भावधारा समस्त भारत में समताल रख कर ही चलती है ऐसा कहीं नहीं हुआ कि किसी साहित्य में कहीं कोई अलग प्रकार की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती हो। हाँ बंगला साहित्य पर आधुनिकता का प्रभाव अवश्य पहले पड़ा है। इसका मुख्य कारण यही है कि बंगला के लोग अंग्रेजी साहित्य के साथ पहले परिचित हुए और उन्हें सर्व प्रथम उनकी संगति मिली। हिंदी में आधुनिक कहानी कला के विकास का रूप हमें प्रेमचंद्र के हिंदी साहित्य के प्रांगण में आने के बाद ही मिलता है। इसी समय ई० १९१५ की सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित गुलेरीजी की कहानी (उसने कहा था) में आधुनिक कहानी कला का चरमोत्कर्ष देखने का मिलता है। किंतु ओडिआ कहानी के लेखक बीसवीं सदी के प्रारंभ में ही उन्नत कहानी कला के साथ परिचित थे इसका आभास हमें कई प्रारंभिक कहानियों में मिल जाता है।

१९०४ को उत्कल साहित्य नामक पत्रिका में 'साहित्य क्षुद्र गल्प' नामक लेख से यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि उस समय के कहानीकार आधुनिक कहानी के आदर्शों से पूर्णरूपेण परिचित थे। आधुनिक ओडिआ कहानियों का काल विभाजन हम इस प्रकार कर सकते हैं।

१९००-१९३५, १९३५-१९४७, १९४७-१९६०, १९६० से ओडिआ कहानियों में कुछ नया रूप और नया दृष्टिकोण आ जाता है जो हर भारतीय भाषा की कहानियों में दृष्टिगोचर होता है।

१९०० से १९३५ तक ओडिआ की कहानी कला ओडिआ प्रथम कहानीकार तथा उनकी भावधारा से परिपुष्ट समाजोन्मुखी थी। उन पैंतीस वर्षों में वांछानिधि पटनायक, चंद्रशेखर नंद चिंतामणि महांति, कांतकवि लक्ष्मीकांत, गोदावरीश मिश्र, दिव्यसिंह पाणिग्राही, दयानिधि मिश्र आदि प्रमुख समाज सचेतन कथा शिल्पी आदर्शवाद तथा समाज संस्कार भावधारा को लेकर आगे बढ़े थे। इसके बाद के कहानी साहित्य में हमें श्रेणी संघर्ष, राजनैतिक, दार्शनिक भावधारा से ओत प्रोत कहानियाँ देखने को मिलती हैं। गोदावरीश मिश्र की कहानी 'मागुणि र शगड' श्रेणी संघर्ष का एक बहुत सुंदर उदाहरण हैं।

इसके बाद दूसरी पीढ़ी हमारे सामने आती है। इसमें प्रमुख कहानीकार हैं गोदावरीश महापात्र, नित्यानंद महापात्र, कालिंदी चरण पाणिग्राही राजकिशोर राय, कान्हुचरण महांति गोपिनाथ महांति, सच्ची राउतराय, अनंतप्रसाद पंडा इनमें कई लेखकों की कहानियाँ आज भी ओडिआ साहित्य को परिपुष्ठ कर रही हैं।

भारतीय स्वतंत्रता के साथ जनता की बहुत सी आशाएं, आकांक्षाएं मिली हुई थीं। लोगों

में पूरा भरोसा था कि भुखमरी अन्याय, अत्याचार शोषण, बेकारी से कुछ हदतक मुक्त हो जायेंगे। बहुत तो ऐसे भी थे जो रामराज्य का सपना भी देख रहे थे। जनता के प्रतिनिधि कहलानेवाले तथाकथित नेता डंके की चोट पर यह ऐलान कर रहे थे कि अगर उनको वोट मिले तो जनता के लिये वह आसमान के चाँद तक को भी तोड़कर उनके हाथ में थमायेंगे। जनता भी आशा और निराशा मिश्रित नेत्रों से आसनासीन नेताओं की ओर देख रही थी। यह हाल १९५७ तक चलता रहा। सिर्फ ओडिआ के ही नहीं समस्त भारतीय भाषा के साहित्यकार इसी आशा और निराशा में डूबे हुए थे। इधर सांप्रदायिक खींचातानी में भी जनता कम आश्वस्ति अनुभव नहीं कर रही थी। इस अवधि में ओडिशा के श्रेष्ठ कथाकार श्री सुरेंद्र महांति प्राणबंधु कर, विभूति भूषण त्रिपाठी, श्रद्धाकर सुपकार, मनमोहन मिश्र, राजकिशोर राय आदि का नाम उल्लेखनीय है। यहां तक आते जाते ओडिआ कहानियां आधुनिक परिपाटी से बिल्कुल सुव्यवस्थित हो गई थीं। श्री सुरेंद्र महांति जी की बहुत सी कहानियों में इसी तरह की आशा निराशा, नवीन और नित्य नूतन जीवन की साधना में सपनों की सफलता, द्वंद्वात्मक मानसिक स्थितियों का प्रकाशन, आदि का जिक्र हमें मिलता है। श्री राजकिशोर राय की अधिकांश कहानियों में युक्ति युक्त आदर्श-वाद चलती हैं। देश की दुरवस्था और भुखमरी तथा पीड़ित जनता के प्रति उनके पात्रों में सहानुभूति नजर आती है।

१९५५ के बाद जनता की आशा जब धीरे धीरे टूटने लगी, तथाकथित नेताओं पर से जब भरोसा टूटने लगा, जनसाधारण में फैले हुए खादी परस्त लोगों के प्रति जब घृणाभाव बढ़ता गया तब व्यक्ति चेतना जोर पकड़ने लगी।

साहित्यकारों में आत्मचेतना का भाव घर करने लगा। इसलिये वैयक्तिकता का आभास साहित्य में नजर आने लगा। तथा कथित आदर्श समाज का भाव बिल्कुल शिक्षित लोगों में नहीं रहा। इसलिए आदर्श के नाम पर पढ़े लिखे लोगों में चिढ़ हो गई। दूसरी बात यह कि भारतीय बुद्धिजीवी यह स्पष्ट रूप से देख चुका था कि हमारी परंपरा की रूढ़ियाँ मुमुर्ष हो गई हैं। पाश्चात्य भावधारा ने उन रूढ़ियों को बिल्कुल अवहेलित बना दिया है। और वे भारतीय जनता के गतिशील प्रवाहों को रोक कर उलटे रोड़े बन बैठी हैं। ऐसी हालत में साहित्यकार रूढ़िग्रस्त भावधरा से ऊबकर, सामाजिक परंपरा की कड़ियों को तोड़कर, स्वच्छंद होकर अपने व्यक्ति की ओर ही देखने लगा। बुद्धिजीवी साहित्यक के लिए सामाजिक आधार छिन गया। वह इसलिए हुआ कि उसके सामने सामाजिक आदर्शों की स्थिरता दिखाई नहीं पड़ी। उधर पाश्चात्य भावधारा का तेज बहाव इधर टूटती हुई भारतीय परंपरा ने भारतीय जनता को संसयग्रस्त बना दिया। इसलिये साहित्य में भी इसी द्वंद्वात्मक और संसयग्रस्त मनःस्थिति के साथ साथ मार्क्सवाद का भी जिक्र पाया जाता है।

ओडिशा की साठोत्तर कहानियों में धीरे-धीरे बहुत परिवर्तन परिलक्षित होता है। इसका कारण देश की लक्ष्यहीन परिस्थिति है। आजादी मिली लेकिन सपने सफल नहीं हुए। भूख, बेकारी और, खुदगर्जी के कारण शिक्षित समाज अशांति और बेबसी में दिन काटने लगा। विज्ञान में वैभव प्राप्त करनेवाले देशों का प्रभाव शिक्षित जनता पर तेजी से पड़ने लगा। वस्तुवाद पर विश्वास करने-वाले देशों के बाहरी आवरण को देखकर उसी प्रकार के जीवन प्रवाह में अपने को बहा देना ही भारतीय शिक्षित युवक ने अपना श्रेय माना और इस प्रवाह में बहकर उसने अपने को दिशाहीन बना दिया। उसके सामने न

कोई सामाजिक उत्तरदायित्व रहा, न वह अपने को समझ सका। इस तरह द्वंद्व, संघर्ष ही नतीजे के स्वरूप इसके हाथ लगा।

भौतिकवाद के व्यापक प्रभाव के कारण मानसिक और शारीरिक तत्व ही मनुष्य के सामने मुख्य विषय बनकर रह गए। विज्ञान में इतनी उन्नति कर चुकने के बाद मनुष्य इस धरती को परिवार जैसा मानने लगा। उसके सामने दूरी का प्रश्न नहीं रहा फिर अपने व्यस्त जीवन में हर मुहूर्त को भी गुरुत्व देने लगा। यही कारण है कि प्रत्येक मुहूर्त मनुष्य के लिये मूल्यवान हो गया। इसलिए आज का साहित्य हर मुहुर्त को लेकर जीवन के किसी अंधेरे कोने में छिपे हुए सूक्ष्माति-सूक्ष्म भावों पर प्रकाश डालना चाहता है। इसलिए आज की कहानी में कथावस्तु नाम के लिए भी नहीं रह गई है। कथाहीन कथा ही आज की कहानी कला है। आज किसी लाइट पोस्ट को लेकर भी कहानी लिखी जा सकती है। इस वैभक्तिक भावधारा के पीछे विज्ञान की ध्वंसात्मक भावधारा क्षणभंगुरता, अर्थनीति की अव्यवस्था आदि बहुत से कारण हैं। जीवन के प्रति यही अनिश्चतता, और अस्पष्ट आशंका हमारे कहानीकारों की कहानियों में दिखाई पड़ती है। इसीलिए अवचेतन अंधेरे में छिपे हुए अंधेरे कोनों को वह छानता जा रहा है।

बीसवीं सदी के इस दूसरे अर्ध में भारतीय नागरिक ने अपनी स्थिति को डाँवाडोल देखकर सामाजिक गोष्ठी से अपनी सत्ताको अलग देखना ही श्रेयस्कर समझा। इसलिए समाज के साथ अपने को वह मिलाकर नहीं देखता है।

यह स्थिति ओडिशा के कहानीकारों की ही नहीं भारतीय साहित्य के सभी लेखकों की है। जो हो इसी के आधार पर हमें ओडिशा के आधुनिक कहानी की विवेचना करनी है।

असामान्य शिल्प सिद्धि के अधिकारी श्री सुरेंद्र महांति की प्रकाशभंगी, उनका भाषा विन्यास और सौंदर्यबोध आदि की दृष्टि से उनकी कहानियाँ सचमुच ओडिआ साहित्य को समृद्ध कर रही हैं। आधुनिक जीवन का विकलांग रूप व्यर्थता, यौन विकार की उद्दण्डता आदि का मार्मिक चित्र हमें देखने को मिलता है। मुहूर्त, मरालर मृत्यु शीलभाजका, सबुजपत्र ओर धूसर गोपाल आदि कहानियों को पढ़ने से सुरेंद्र जी की व्यक्ति चेतना का स्पष्ट रूप हमारे सामने आ

जाता है। भविष्यत जीवन की वैभव-शाली विस्मृति को भोगने के बजाय वर्तमान के मुहूर्त का जो सामने है, आकंठ पान करने में परितृप्त होना आज के मनुष्य का श्रेष्ठ दर्शन बन गया है। इस सत्य के आधारपर मरालर मृत्यु कहानी लिखी गयी है।

आज की कहानियों में मनस्तात्विक फ्रायड की यौन प्रक्रियाओं का आभास भी हमें बहुत से कहानीकारों की लेखनी से मिलता है। आज के इस वस्तुबादी युग में यह दृष्टिकोण रखने वाली कहानियों का बोल-बाला भी है। सुरेंद्र महांति जी की मरालर मृत्यु, शाप आदि कहानियों में हमें इसका भी आभास मिलता है।

आज के इस यंत्र सभ्यता के युग में अन्नहीन श्रमजीवियों की संख्या कम नहीं है। कहा जाय तो ये ही लोग हैं जो भूखे प्यासे, तड़पते, विकार हीन होकर चुपचाप समाज के खूँखार पंजों का शिकार बने हुए हैं, किंतु आज के कहानी कार शायद ही इधर निगाह डालते है। ओडिआ कहानी कारों में श्री शांतनु कुमार आचार्य, बामाचरण मित्र आदि इस दृष्टि से प्रशस्ति के पात्र हैं। शाखा व साखी कहानी में शांतन, कुमार जी ने भूख से तड़पते हुए मरने वाले पात्र मोटू, का चित्र भी उसके प्रिय पाठकों के दिल की गहराई तक पहुँचा दिया। शांतनु कुमार जी ने दुर्वार कहानी में दुर्नीति अत्याचार आदि के विरुद्ध नारा उठाया है। इस दुराचार और अन्याय का अंत सिर्फ लेखनी से नहीं किया जा सकता। इसके लिए क्रांति चाहिए। चाहे, उस क्रांति में धन, जीवन, इज्जत आदि विपन्न हों। कहानी के अंत में उसके पात्र मुशा की मृत्यु हो जाती है। इस से यही पता चलती है कि इस तरह कितने क्रांति करनेवाले आयेंगे और क्रांति करते जायेंगे। चाहे पहले पहल उनको असफलता मिले पर आखिर जनता को इसमें सफल

सफलता मिलेगी। शांतनु बाबू ने अपनी कहानियों में प्रतीकात्मक ढंग से समस्या पूर्ण जीवन की वास्तविकताओं पर प्रकाश डाला है। 'मनमर्मर' और 'दुर्बार' कहानियों के रूप और गुण के व्यवधान के प्रति ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी कहानी-कार की प्रतिभा दिनोदिन विकसित होती जा रही है। आधुनिक नव युवक में जो ध्वंसात्मक प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं, बहुत सुंदर ढंग से इस का जिक्र उन्होंने किया है। आधुनिक ओडिआ कहानियों की दिशा उन्मोचन करने में शांतनु बाबू से बहुत कुछ संभावनाएँ अपेक्षित हैं।

बामाचरण मित्र जी की कहानियों में उनकी परिपक्व अभिज्ञता नजर आती है। वीभत्स और भयानक के अलावा व्यक्ति चेतना में किस तरह उन्नत और कोमल भावों का भी संचार हो सकता है, इसका वास्तविक और स्वाभाविक स्वरूप हमें बामाचरण बाबू ने अपनी स्वप्नसिद्ध कहानी में दिखा दिया है। लड्डू, हस्ते-पुर, निमंत्रण आदि कहानियों में मध्यवित्त परिवार के, गुमस्तागीरी करनेवाले साधारण सरकारी कर्मचारियों के जीवन का सच्चा और दयनीय चित्र उपस्थित करके उन के प्रति साधारण पाठकों की दृष्टि आकर्षित की गई है। अपराधी, मादलापांजी आदि कहानियों में इस प्रजातंत्र सरकार की थोथी विचार धारा के प्रति भी उन्हों ने व्यंग्य किया है। इस वस्तु वादी जीवन धारा में तथाकथित बड़े लोगों में जो अहमन्यता अपने उद्धत रूप को लेकर विकाराल

हो उठती है और उनकी आंतरिकताहीन खोखली हंसी में जो विद्रूप की भावना छाई रहती है ऐसे लोगों का वास्तविक जीवन किस तरह विपर्यस्त होकर बिखरा हुआ रहता है इसका जिक्र सुंदर मनोवैज्ञानिक ढंग से उन्होंने अपनी स्मृति रत्नाकर कहानी में किया है। अपने देश की परंपरा से संस्कृति से पारिवारिक रक्त संपर्क से हमें जो विश्वास ममता, स्नेह, सौहार्द्र मिला है और इसके धरातल पर जीवन जिस सरलता और सौंदर्य को लेकर चला है इसका मूल्यबोध बिना किए विदेशी समाज और सभ्यता की दुहाई देकर अपने देश के परंपरागत विश्वास, ममता और मातृ स्नेह को ठुकरा कर आज का युवक किस तरह संकीर्ण और हीन भावापन्न बन जाता है इसका सुंदर वर्णन अशांति नामक कहानी में उन्होंने किया है।

मनुष्य का जीवन सुख दुःख हंसी और रुलाई का एक स्रोत है। इस माने में साहित्य में जीवन के वास्तविक रूप का प्रतिबिंब खींचने में महापात्र नीलमणि जी बहुत सफल हुए हैं। व्यंग्य, विद्रूप, आनंद, चपलता आदि के साथ जीवन के भीतर अंतस्रोत आँसुओं की धारा भी बह रही है और वह कभी कभार उभर कर ऊपर आ जाती है। जीवन, देश, काल आदि, को लेकर उसका निरपेक्ष आवेदन सभी श्रेणी के लोगों को आकृष्ट करता है। उनके पात्रों को सभी प्रकार के पाठकों का स्नेह, सहानुभूति मिलने के साथ-साथ लेखक भी पाठक का बहुत आस्थाभाजन हो जाता है। १६६६ में प्रकाशित उनके कहानी संग्रह में व्यक्ति चेतना का पूर्व आभास हमें मिलता है। उनका एक पात्र चपला राय के जीवन की समस्या किसी गोष्ठी, किसी समाज या किसी जाति की नहीं है। उसका अपना विकृत नारीत्व आंतरिकता हीन, असामाजिक उच्चभोग और आकस्मिक मृत्यु व्यक्तिगत जीवन का

व्यापार होते हुए भी यह एक वास्तविक चित्र है। उनके पात्र अस्वास्थ्यकार परिस्थिति के प्रवाह में अभिशाप लेकर नहीं चलते हैं किंतु इस बीसवीं सदी की नस नस में और रग-रग में हानि कारक उद्रेक और उद्भ्रांत करनेवाली असामाजिक विकृत भावनाएं घर कर बैठी हैं। वह उन पात्रों के जीवन में झलक उठती है।

श्रीकृष्ण प्रसाद मिश्र, मनोज दास, किशोरी चरण, आदि कई लेखकों में फ्रायड के मनोविज्ञान का प्रभाव स्पष्ट नजर आता है। इस मनस्तत्व पर आधारित कई कहानियों में कहीं कहीं भयंकरता और वीभत्सता भी आ गयी है। असल में बात यह है कि भौतिकता की संपन्नता और तज्जनित सामाजिक अव्यवस्था आदि के कारण पाश्चात्य युग गोष्ठी के मानस जगत में जो घात प्रतिघात हो रहा है उसी को हमारे कई लेखक इस देश की युवगोष्ठि में भी आरोपित करना चाहते हैं। अन्न वस्त्र से पीड़ित इस देश के युवक के लिए उतना मानसिक रोगाक्रांत होना संभव नहीं है जितना युरोपीय या अमेरिकन युवक के लिए हो सकता है। हमारे देश में इसकी संभावनाएं होने पर भी हमारे कई फैशन परस्त कहानीकार पाश्चात्य कहानियों की नकल करके उन्हीं भावों को हमारे देश में भी देखना चाहते हैं। इस सिलसिले में यह कहने से अप्रासंगिक नहीं होगा कि अध्यापक कृष्ण प्रसाद जी की कहानियों को पाठ करने से इटली के आलबर्ट मोरविआ की रचनाओं की

याद आ जाती है। अवश्य कहानी कला की दृष्टि से सार्थक होने पर भी शीलता की दृष्टि से आधुनिक रुचिबोध को भी आघात पहुँचाती है।

श्री पूर्णानंद दानी अत्याधुनिक कहानीकारों में से एक हैं। उन्होंने अपनी जंजीर, नीशा आदि कहानियों में आज के दिशा हीन जीवन के आदर्शों से अपूर्ण बेकार और यौन पिपासा से पूर्ण नवयुवकों का सुंदर चित्र दिया है। कालेज की पढ़ाई के सिलसिले में श्रेणी की नवयुवतियों से प्रेम का आदान-प्रदान हुआ। मस्त होकर अपने कालेज का जीवन बिता दिया। किंतु जब कालेज की पढ़ाई खतम हो गई तब किंकरिष्यामि के दरिद्र-पंचाज्वर का जप आरंभ हो गया। उसके बाद जीवन के सामने शून्य के सिवा और कुछ बाकी नहीं रहा। इधर बेकारी और उधर सहपाठिनी की याद। दिशाहीन निराशा जनित व्याधिग्रस्त नवयुवक के लिए आत्महत्या करने की कोशिश के बिना और कुछ भी बाकी नहीं रह जाता है। जंजीर कहानी में बेकारी के कारण आवारा गर्दी करनेवाले युवकों का अच्छा चित्र दिया है।

कहानी लेखिकाओं में श्रीमती विणापाणि महांति, बीणादेबी आदि का नाम आता है। आधुनिक नारी के जीवन के सामने कई समस्याएँ हैं। मुख्य प्रश्न है—विवाह में दहेज की प्रथा इतनी बलत्तर हो गयी है कि मध्यवित्त परिवार के लोग अपनी कन्याओं को पढ़ालिखा कर किसी नौकरी में लगा देना ही श्रेय समझते हैं। ऐसी हालत में सुंदर गृहिणी बनने की अपने आगे के सोने के संसार को तरोताजा बनाकर रखने की आशा रखने वाली कन्याओं का सपना तो चूर चूर हो जाता है। उल्टे वे ही अपने पिता माता के और छोटे भाई बहनों का भरण-पोषण करने का साधन बन जाती हैं। इस तरह वे अपने जीवन को तिल तिल कर अपने पिता माता के

परिवार के लिये न्यौछावर कर देती है। कई तो ऐसी भी होती हैं कि अपने रूप सौष्ठव को लेकर, जब तक अपने जीवन का दिशा निर्णय न हो, असामाजिक क्रिया कलाप में व्यस्त रहती हैं। नौकरी की आशा रखने वाली कई गृहिणियाँ भी जाल बिछाकर अपने रूप की दीपशिखा में पुरुषरूपी पतंगों को जलाती हैं। इसका भी सुंदर चित्र वीना देवी जी ने अपने प्रतिपाद्य कहानी में दिया है।

इ० एम० फार्स्टर अपनी आसूपेक्ट आफ दी नमेल रचना में मनुष्य की दैनिक मृत्यु (daily death)के बारे में चर्चा करते हुए लिखा है। "आज के इस प्राचुर्य के भीतर मनुष्य एक विराट शून्यता की उपलब्धि कर रहा है। वह शून्यता उसके मनोराज्य की है, इसलिए मनुष्य का मनोराज्य आज द्वंद्वों में भरा हुआ है। और इस द्वंद्वग्रस्त मनुष्य के मन की प्रतिलिपि आज की कहानी है।" उन्हों ने यहाँ तक लिख दिया है कि विश्व के बारे में भगवान भी कहानी लिखने के लिए बैठे तो वह भी संघर्षमय होगी।

मनुष्य मन के घने काले अंधकार के भीतर जो अभेद्य विभीषिका नाच रही है, उसी को आधुनिक कहानी के जरिये प्रकाशित किया जा रहा है।

आज की ओडिआ कहानियों में दिखाई देने वाले विभावों का सारमर्म निम्न प्रकार है।

१—मानव जीवन, समाज और राजनीति के प्रति व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण !

२—अवचेतन मन के नग्न रूप और भावधारा को प्रमूर्त करने का प्रयास।

३—वस्तुगत वास्तविकता की विचित्रता को कला-पूर्ण ढंग से प्रतिपादन करने का प्रयास।

४—व्यक्तिगत जीवन के प्रत्येक भावपूर्ण मुहूर्तों का यथार्थ चित्र।

५—समाजवादी दृष्टिकोण का मार्मिक उन्मोचन।

६—विज्ञान की प्रगति और प्रभाव से एक आसन्न ध्वंश क्षणभंगुरता की मार्मिक आशंका।

७—अर्थनैतिक अवनति और जीवन धारण की मान वृद्धि जैसे विरुद्धात्मक परिस्थितियों में जीवन के प्रति एक अनिर्दिष्ट आशंका।

आधुनिक कन्नड़ उपन्यासों की मूल प्रवृत्तियाँ

—गुरुनाथ जोशी

उपन्यास को कन्नड़ में कादंबरी कहते हैं। कन्नड़ में कादंबरी साहित्य की सृष्टि 'पिलिग्रिम्स प्रोग्रेस', राबिनसन क्रूसो', शेक्सपीयर के नाटकों की वस्तु के आधार पर रचित कमलाक्ष पद्मगंधी की कथा' (रोमियो एंड जूलियट) बंकिम बाबू और हरिनारायण आपटे के उपन्यासों के अनुवादों से हुई। इस प्रकार कन्नड़ में जो उपन्यास अनुवादित होकर आये वे बहुतेरे ऐतिहासिक थे जिनमें देशाभिमान, स्वधर्माभिमान, धैर्य, साहस आदि भरे हुए थे। अतः उनमें विशेष रूप से राष्ट्रीयता थी और उनका असर केवल पाठकों पर ही नहीं पड़ा बल्कि लेखकों पर भी पड़ा। इसका नतीजा यह हुआ कि लेखकों को मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की प्रेरणा मिली। इसके अलावा, बीसवीं सदी में जो राष्ट्रीय आंदोलन हुए उन्होंने भी लेखकों पर पर्याप्त प्रभाव डाला। परंतु, 'मुद्राराक्षस' के कथानक के आधार पर लिखित 'मुद्रामंजूष' कन्नड़ का मौलिक उपन्यास माना जाता है और इसकी रचना १८२१ में केंपु नारायण से हुई जो मैसूर के तृतीय कृष्णराज के आश्रय में थे।

सन् १८२३ से लेकर अब तक कन्नड़ में जो उपन्यास आए उनकी संख्या अपार है। इन उपन्यासों में मूल प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं और उनका उदात्तीकरण भी परिलक्षित होता है। इस निबंध में आधुनिक कन्नड़ के कतिपय प्रसिद्ध उपन्यासों में पायी जानेवाली मूल प्रवृत्तियों पर संक्षेप में प्रकाश डालने की कोशिश की गई है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ये मूल प्रवृत्तियाँ ही मानवीय चरित्र, साहित्य, कला, धर्म समाज आदि की नींव की ईंटें हैं।

प्रो० आत्माराम शाह कहते हैं आहार, निद्रा, भय आदि तथा दारैषणा, पुत्रैषणा, वित्तैषणा आदि के रूप में भारतीय साहित्य में भी मूल प्रवृत्तियाँ स्वीकार की गई हैं। विलियम मैक्डूगल के अनुसार जो चौदह मूल प्रवृत्तियाँ हैं वे चौदह संवेगों के साथ व्यक्त होती हैं जैसे—क्रोध, जुगुप्सा, आश्चर्य, आत्महीनता, भूख, कामुकता, संतानरक्षा, वात्सल्य, स्नेह, एकाकीपन, भय, कातरता, गौरव, रचनात्मक आनंद, प्रभुत्व का सुख, आमोद, अनुकरण, चोरी आदि की मूल प्रवृत्तियाँ ये कन्नड़ उपन्यासों में पायी जाती हैं।

कन्नड़ में कई सुंदर ऐतिहासिक उपन्यास हैं जिनमें 'माधवकरुण विलास', अशांति पर्व, 'चेन्नबसवनायक', पौरुष परीक्षे', समरभूमि, माडि-माडिद्दवरु', 'शिल्पश्री' अधिक प्रसिद्ध माने जाते हैं।

'माधव करुणा विलास'—वेंकटेश तिर को कुलकर्णी 'नलगनाथ' रचित बृहत् उपन्यास में विजयनगर के संस्थापकों की गौरवगाथा है और यौनप्रवृत्ति, प्रजावात्सल्य, आत्मप्रदर्शन, सर्जना-परिग्रह तथा ओछी मूलप्रवृत्तियों के उदात्तीकरण का सुंदर चित्रण तथा निरूपण पाया जाता है।

'राजयोगी' में शुरू हुई कहानी 'अशांतिपर्व' में श्री० नेटगेरी कृष्णशर्मा से पूर्ण की गई है। विजयनगर साम्राज्य से संबंधित इन दोनों उपन्यासों में युयुत्सा, जुगुप्सा, परिग्रह, यौन प्रवृत्ति तथा

उसका उदात्तीकरण आदि प्रवृत्तियों का चित्रण अनूठा बना है।

'चेंन्नबसवनायक' के रचयिता ख्यातनाम मास्ति वेंकटेश अय्यंगारजी ने इस ऐतिहासिक उपन्यास में युयुत्सु, यौनप्रवृत्ति, परिग्रह प्रवृति का निरूपण करके शरणागति प्रवृत्ति को मनोहरता से दिखाया है।

'शांतला के० बी० अय्यर द्वारालिखित और हिरण्मय द्वारा हिंदी में अनुवादित ऐतिहासिक उपन्यास में संतानेषणा प्रवृत्ति का परिपाक बहुत अच्छा बन गया है। प्रतिकूलता तथा सर्जना प्रवृत्तियाँ भी अच्छी तरह प्रदर्शित हैं।

'शिल्पश्री' में त० रा० सुब्बराव ने आत्म-प्रदर्शन तथा सर्जना प्रवृत्तियों का मनोहर निरूपण किया है तो 'जगन्मोहिनी' नामक ऐतिहासिक उपन्यास में कोरटी श्रीनिवासराव ने यौनप्रवृत्ति के निरूपण के साथ वीरपूजा का सुंदर चित्रण उपस्थित किया है और 'राजद्रोही' में यौवनप्रवृत्ति का सुंदर उदात्तीकरण दर्शाया है।

पौरुषपरीक्षा' तथा 'समरभूमि' एवं माडि मडिदवरु ऐतिहासिक उपन्यासों में ख्यात क्रांति-कारी उपन्यासकार बसवराज कट्टीमनी ने युयुत्सु, संतानेषणा, परिग्रह, आत्मप्रदर्शन प्रवृत्तियों के सुंदर प्रभावशाली प्रतीक उपस्थित किये हैं। 'माडिमडिदवरु' उपन्यास को सोवियट नेहरू पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

'क्रांति कल्याण' बी० पुट्ट स्वामय्या जी द्वारा रचित समाजसुधारक, भक्तिभंडारी बसवेश्वर जी की जीवनी को ६ भागों में दर्शानेवाला और साहित्य अकादमी से पुरस्कृत उपन्यास में मानव की मूलप्रवृत्तियों का उदात्तीकरण ही उभरा हुआ है।

ऊपरोक्त ऐतिहासिक उपन्यासों के लेखकों ने और भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं, उनके

अलावा और भी लेखकों ने उत्तम ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं जिनमें प्राय: युयुत्सु प्रतिकूलता शरणागति, वित्तेषणा, दारेषणा, संतानेषणा, परिग्रह आदि प्रवृत्तियों का निरूपण पाया जाता है।

इधर दस बारह वर्षों में कन्नड़ साहित्य क्षेत्र में उपन्यासों की बाढ़ सी आई है। करीब हजार उपन्यासों की निर्मिति हुई। वे प्राय: सामाजिक उपन्यास ही हैं। कुछ पत्रिकाओं में धारावाही उपन्यास भी प्रकाशित होने लगे और अब भी हो रहे हैं। अत: उपन्यास एक लोकप्रिय साहित्यिक विधा बन गया है। यौन प्रवृत्ति प्रधान उपन्यास ही अधिक पाये जाते हैं और वे एक सुंदर स्त्री के चित्र से आभूषित आवरण को पाए हुए दिखाई देते हैं। मैं आज कुछ ही कन्नड़ के श्रेष्ठ उपन्यासकारों की कुछ हो उपन्यासों में पाई जानेवाली प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालूंगा।

अ० न० कृष्णराव कन्नड़ के श्रेष्ठ उपन्यासकार थे और उन्होंने पाननिरोध, अविभक्त कुटुंब आधुनिक शिक्षा, तलाक, स्त्री माता के रूप में, रांड के रूप में, काम की सडियल आदि विषयों को लेकर जो उपन्यास लिखे हैं उनमें यौनप्रवृत्ति और संतानेषणा विशेषरूप से पाई जाती है। परंतु उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'संध्याराग' है जो हिंदी में भी प्रकाशित है, उसमें मानव की ओछी प्रवृत्तियों का उदात्तीकरण विशेष रूप से हो पाया है।

श्री कृष्णमूर्ति पुराणिक के उपन्यासों में कौटुंबिक चित्र विशेष रूप से होने से वे अधिक लोकप्रिय बने हैं। खासकर स्त्रियों में संतानेषणा आत्मप्रदर्शन तथा यौनप्रवृति की उदात्तभावना गोचर होती है।

श्री रावबहादूरने 'ग्रामायण' में गाँवों को ओछी प्रवृतियाँ कैसे उजाडती हैं, सुंदर ढंग के दिखाया हैं।

श्री एस० एल० भैरप्पाजी ने 'वंशवृक्ष' गृहभंग', 'दूर सरिदरु' 'निराकरण' आदि सुंदर उपन्यासों में मानवीय मूल प्रवृत्तियों का सुंदर चित्रण उपस्थित किया है और वे आजकल बहुत लोकप्रिय बने हुए हैं। 'वंशवृक्ष' विशेष चर्चित उपन्यास में उन्होंने वंश की पवित्रता पर बल देते हुए, मानवीय मूलप्रवृत्तियों के बीच जब संघर्ष शुरू हो जाता है तब आदमी को कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं, सुंदर मनोहर रीत से दर्शाया है। पर 'दूर सरिदरु' नामक उपन्यास में यौन-प्रवृत्ति का सुंदर निरूपण उपस्थित करके, बौद्धिक साहचर्य ही स्त्री पुरुषों का सुंदर प्रेम है, कह कर प्रेम की समस्या पर विचार किया है। 'धर्म श्री' में मतांतर का संघर्ष दिखाया है।

समेतनहल्लि रामराय के 'सवति गंधवारणे' नामक उपन्यास में और इनामदार के 'चित्रलेखा' उपन्यास में यदुरंग के 'उय्याले' उपन्यास में क्रमशः संतानेषणा, यौनप्रवृति का सूक्ष्म विवेचन चर्चित है।

स्त्री लेखिकाओं में त्रिवेणी, एम० के० जयलक्ष्मी, वाणि, अनुपमा निरंजन, रा० के० इंदिरा उषादेवी, गीता कुलकर्णी आदि प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं और उनको रचनाओं में स्त्रियों की मूल प्रवृतियों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। त्रिवेणी के उपन्यास मनश्शास्त्र पर अवलंबित हैं और उनके 'कीलुगोंबे' और 'शरपंजर' प्रसिद्ध उपन्यास हैं और उनमें स्त्री-पुरुषों में लैंगिक ज्ञान का होना आवश्यक बता कर स्त्री-पुरुषों के आंतर्य और बाह्य जीवन के संघर्ष पर 'क्ष' किरण छोड़ दी है।

रा० के० इंदिरा के उपन्यास 'तुंगभद्रा', 'सदानंद', 'गेज्जेपूजे' प्रसिद्ध हैं जिनमें स्त्री जाति

की मूल-प्रवृतियों को अनुभव की कसौटी पर कस कर देखने का सफल प्रयत्न किया गया है। स्त्रियों में संतानेषणा, पलायन, सर्जना परिग्रह-संग्रह प्रवृतियाँ विशेष रूप से पायी जाती हैं।

उषादेवी के 'मुडियेरिद हूँ', 'मोग्गिन जडे', 'मुरिद सरपलि' उपन्यासों में मनोवृत्तियों की विपरीतता दर्शायी गई है।

उसिरु (उच्छवास) नामक उपन्यास में व्यासराव निंजूरने मेडिकल कालेजों में पढ़ने वाले विद्यार्थी-विद्यार्थिनियों की कामलीला का वास्तविक-यथार्थ चित्रण किया है। अनजान में एक 'यूनक' से विवाह करनेवाले एक युवा होनहार डाक्टर की वेदना को देख कर करुणा उत्पन्न होती है।

कन्नड के मूर्धन्य उपन्यासकारों में और सर्वप्रथम वृहत् उपन्यास लिखनेवाले हैं कुवेंपु और विनायक गोकाक। कानूरु सुब्बम्म हेग्गाडति कुवेंपु का उपन्यास है तो 'समरसवे जीवन' गोकाक का है। दोनों में समग्र जीवनदर्शन मिलता है और मानवीय करीब करीब सभी मूलप्रवृतियों की सुंदर अभिव्यक्ति मिलती है।

बसवराज कट्टीमनी और शिवराम कारंत दोनों कन्नड़ के आधुनिक उपन्यासकारों में मूर्धन्य हैं और वे कन्नड़ उपन्यास क्षेत्र के दो ध्रुव हैं। दोनों ने विदेशों का प्रवास किया है। उपन्यासकारों की हैसियत से दोनों संसार में प्रख्यात हैं। उनके कतिपय उपन्यासों में पाई जानेवाली मूल-प्रवृत्तियाँ कौनसी हैं, देखें।

बसवराज कट्टीमनी के ऐतिहासिक उपन्यासों पर पहले प्रकाश डाला गया है। उनके सामाजिक उपन्यासों को देखें तो पता लगेगा कि सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक अन्यायों के प्रति उनकी आवाज बुलंद है। सत्य की ध्वनि उच्च होती है।

कट्टीमनी ने 'जरतारी जगद्गुरु' में वीरशैव संप्रदाय में जो बुरे आचार हैं उनका खंडन

किया है और मठाधिपतियों को कामप्रवृत्ति का खंडन किया है तो 'मोहद बलेयल्लि' में सच्चे प्रेम की कहानी यौनप्रवृत्ति की कहानी बन गई है। 'साक्षात्कार' में अध्यात्म का स्वांग रचनेवालों की लैंगिक प्रवृत्ति का उद्घाटन किया गया है। 'प्रिय बांधवी' में नर्स की अनीति दर्शाने में यौनप्रवृत्ति दर्शित है। इन तीनों उपन्यासों में यौनप्रवृत्ति कामुकता का सुंदर चित्रण मिलता है। 'बीदियल्लि बिछवलु' में वेश्या समस्या है और 'खानवलिय नीला' में दरिद्रता के कारण नैतिक अधःपतन होना निरूपित है। 'द्रोहि' में तारा की कामुकता, बेलगिन गालि में व्यभिचार और चोरी डकैती का सुंदर चित्र उपस्थित किया है। 'जनिवार-शिवदार' में अंतर्जातीय विवाह के कारण, 'नो नन्न मुट्टबेड' में हरिजन समस्या पर प्रकाश डाला गया है और 'प्रपात' में रावा को परम साध्वी के रूप में चित्रित किया गया है। सब प्रवृत्तियों में यौनप्रवृत्ति अत्यंत बलवती है और उसके कारण होनेवाले अन्याय, अत्याचारों के प्रति कट्टीमनी का आक्रोश स्पष्ट लक्षित होता है। अन्याय, अत्याचार, पाखंड के प्रति जनता का ध्यान आकृष्ट कर, समाज में समता, सहानुभूति का राज्य स्थापित करना मानो उनके उपन्यासों का लक्ष्य है।

कन्नड़ उपन्यास के दूसरे ध्रुव, उपन्यास सम्राट् कहलानेवाले शिवराम कारंतजी के उपन्यासों में हम पाते हैं — व्यक्ति क्या है? इनका विश्लेषण करने की अपेक्षा अपनी जिंदगी में वह क्या है, औरों की यह कितना मदद करता है, जीवन संघर्ष में ठोस कौन है, थोथा कौन है, ठोस क्या है, थोथा क्या है, दिखाते स्वयं खड़ा रहना है औरों को खड़े रहने का मौका देना है कि नहीं, देखने की आसक्ति है। जो हो, कारंत जी के विडंबनात्मक उपन्यासों में 'देवदूत', 'गोंडारण्य', 'सन्यासिय बदुकु' जगदोद्धार ना' हैं और सामाजिक उपन्यासों में तीन बहुत प्रसिद्ध और बहु

चर्चित हैं। 'मरकि मरिएगे' जो हिंदी में कई वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ है। 'बेट्टद जीव' और 'अलिद मेले'। 'मरकि मरिएगे' में संतानेषणा, आत्मप्रदर्शन के साथ साथ सहनशीलता, स्थैर्य, स्वार्थपरता, असूया, कृपणता, स्पर्धा आदि, तथा सर्जना प्रवृत्ति का अद्वितीय चित्रण पाया जाता है।

'बेट्टद जीव' में ग्राम जीवन तथा नगरजीवन का निरूपण करते हुए मनुष्य तथा प्रकृति का संबंध, प्रकृति की विध्वंसक शक्ति, साहसिकता, विस्मरण गुण के साथ कतिपय मूल प्रवृत्तियों का जैसे संचप्रवृत्ति, सर्जनाप्रवृत्ति आदि का मनोहर निरूपण मिलता है।

'अलिद मेले' उपन्यास कतिपय समालोचकों की दृष्टि में कानूर सुब्बम्म हेग्गडति, ग्रामायण के बाद श्रेष्ठ उपन्यास है और इसका हिंदी अनुवाद गुरुनाथ जोशी ने किया है। नेशनल बुक ट्रस्ट के लिए जो आशा की जाती है शीघ्र प्रकाशित होनेवाला है। कारंत जी के 'सरसम्मन समाधि' में यौनप्रवृत्ति का जैसे निरूपण है वैसे अलिद मेले (मरने के उपरांत) में भी है। इस उपन्यास का रचनाविधान एकदम नया है। जासूसी उपन्यास की तरह इसकी शुरुआत होती है तथा प्रवास यौनप्रवृत्ति के अतिरिक्त वित्तेषणा का अपूर्व निरूपण इसमें पाया जाता है। जीवन में धन का स्थान, विरस दांपत्य, प्यार के नमूने, धर्म की रीत, कृतघ्नता, निस्वार्थता, धनलोभ के अलावा सर्जनाप्रवृत्ति, आत्मप्रदर्शनप्रवृत्ति का उत्कृष्ट चित्रण इस उपन्यास में पाया जाता है। कन्नड़ के एक श्रेष्ठ समालोचक श्री कुर्तकोटी ने इस उपन्यास के संबंध में समालोचना करते समय एक गंभीर प्रश्न उठाया है और वह यह है--स्त्री पुरुष के नैतिक और अनैतिक क्रियाओं का निर्णय करने का प्रमाण कौन सा। क्या वैयक्तिक इच्छाएँ ?

समीक्षा

समीक्षा के लिये पुस्तक की दो प्रतियाँ भेजना आवश्यक होगा। समीक्षा यथासंभव शीघ्र प्रकाशित की जायगी। यह आवश्यक नहीं होगा कि प्रत्येक प्राप्त पुस्तक की समीक्षा की जाय। प्रत्येक पुस्तक का प्राप्तिस्वीकार पत्रिका में किया जायगा।

रात की बाँहों में

(प्रकाशक-राधाकृष्ण प्रकाशन, रूपनगर दिल्ली-६ पृ० सं० १७५, मूल्य तीन रुपये पचास पैसे) की यह द्वितीयावृत्ति ही इस तथ्य का प्रमाण है कि पाठकों को इस प्रसिद्ध हिंदू-उर्दू लेखकों द्वारा लिखे गए भारत के दस प्रमुख नगरों के मधुर तिक्त नैश जीवन संबंधी संस्मरण और रेखाचित्र मनभावन प्रतीत हुए हैं। पुस्तक में

ख्वाजा अहमद अब्बास, मोहन राकेश, कृशनचंदर प्रयाग शुक्ल, सलमा सिद्दीकी, अमृतलाल नागर, शरदजोशी, वीरेंद्रकुमार जैन, कमलेश्वर और राजेंद्र यादव के क्रमशः बंबई, दिल्ली, श्रीनगर, हैदराबाद, नैनीताल, लखनऊ, भोपाल, अमृतसर, इलाहाबाद और कलकत्ता के रात्रि जीवन संबंधी संस्मरणात्मक अनुभव संगृहीत हैं। शिल्प की दृष्टि से इनके मूल में लेखकों का श्रीमोहन राकेश द्वारा सुझाया यह दृष्टिकोण रहा है—देश में प्रमुख शहरों की रातों की जिंदगी पर ऐसा कुछ लिखा जाए जो न कि कहानी ही कहला सके और न रेखाचित्र ही—उसमें कहानी-सी रोचकता रहे और रेखाचित्र सी चुस्ती और यथार्थता। जहाँ तक इस दृष्टिकोण के निर्वाह का प्रश्न है 'बंबई' या 'अमृतसर' संबंधी नैश जीवन के वर्णनों में कथात्मकता का अंश प्रधान है, जब कि श्रीनगर नैनीताल, हैदराबाद और कलकत्ता संबंधी वर्णनों में इसके सर्वथा विपरीत लेखकों का निजी व्यक्तित्व इतना भास्वर हो उठा है कि उन्हें संस्मरणों की संज्ञा देना ही उचित है। शेष नगरों संबंधी वर्णनों की मध्यवर्ती स्थिति है, उनमें कहानी और रेखाचित्र के तत्वों का समन्वय है।

आलोच्य पुस्तक इस दृष्टि से बड़ी उपयोगी है कि वह पाठकों को भारत के सभी भागों के प्रसिद्ध नगरों की रात्रिकालीन हलचलों, वहाँ के प्रमुख बाजारों तथा सैरगाहों संबंधी सूचनाएँ

प्रदान करते हुए कथा रस भी प्रदान करती है। प्रमुख कथाकारों द्वारा लिखित इन संस्मरणों, चित्रों में जिनमें कथात्मकता के साथ साथ लेखकों का निजी व्यक्तित्व भी झलक रहा है, स्थल स्थल पर पाठक के हृदय को गुदगुदाने तथा इसको अमर्ष और घृणा का उद्रेक करने की शक्ति है। इनसे सभी नगरों की यह मूलभूत समता भी उभरती है कि कुछ स्थानीय विशेषताओं के अतिरिक्त भारत के प्रत्येक कोने के नगर रात्रि में प्रायः एक जैसे ही हो जाते हैं–सभी में पूंजीपतियों की विकास-लीला तथा ह्विस्की के पैगों पर जन सामान्य को मूंड़ने की स्कीमें बनती हैं, प्रायः सभी नगरों में रात्रि के काले दुपट्टे की साया में नारी शरीर-विक्रय का घृणित व्यापार जोरों पर रहता है। इन सामान्य तथ्यों के अतिरिक्त विभिन्न नगरों की कुछ निजी विशेषताओं पर भी प्रकाश पड़ता है। मोहन राकेश की दृष्टि में दिल्ली ऐसा बेहूदा शहर है कि यहाँ कि कोई बात कायदे से नहीं होती। दिन कभी बीत नहीं पाता कि अचानक रात हो जाती है। यहाँ रात की जिंदगी (जन-सामान्य थी) शुरू होती है–कुत्तों के भौंकने और पहरेदारों के आवाज लगाने से। यत्र तत्र कीर्तनों का 'वृंदावन चंद भजो' स्वर कान के परदे फाड़ता रहता है तो कहीं कॉफी और कहीं ट्विस्ट के दौर चलते रहते हैं। श्रीनगर के पैलेस होटल में देश विदेश के ऐसे नये नवीन और शाहजादों का डेरा लगा रहता है जो औद्योगिक युग की देन है। वे एक रात की पार्टी पर ही इतने रुपये फूँक देते हैं, जिनसे श्रीनगर का एक पूरा मुहल्ला पल सकता है। कृशनचंदर द्वारा वर्णित पागल हुए कादिर का किस्सा बड़ा मर्मस्पर्शी है और धनिक वर्ग की घृणित अर्थ पिपासा पर करारी चोट करता है। हैदराबाद में सर्वत्र परदे का जोर है – 'रिक्शे में पड़े हुए परदे सिर्फ रिक्शों में नहीं टैक्सियों और कारों में भी और सिनेमा हालों में सिर्फ औरतों-वाली सीटों पर पड़ा हुआ परदा जो हाल में अंधेरा हो जाने पर ही उठता है।

नैनीताल के यॉट क्लब में अब भी झूठे राजा रानियों का ही बाहुल्य रहता है। नर नारी एक दूसरे को एक गौरवास्पद संबोधन से संबोधित कर प्रत्युत्तर में स्वयं को राजा या रानी संबोधित कराकर गौरवानुभूति कर लेते हैं। सिलमा सिद्दीकी के शब्दों में राजा और रानी किस्से कहानियों के सिवा अब बस नैनीताल ही में पाए जाते हैं। यहां हर दूसरा आदमी राजा साहब है और हर दूसरी औरत रानी जी है। लखनऊ में शरीफ बदमाश काली मोटरों में भले घर की स्त्रियों को पिस्तौल के जोर पर उठा ले जाने में संकोच नहीं करते। नेतागण स्वयं मिनिस्टरी और चीफ मिनिस्टरी पाने के लिये गई रात तक नाना प्रकार के षड्यंत्र रचते रहते हैं जब कि नाइट क्लबों में जुआ और चकले गुप्त रूप से चलते रहते हैं। भोपाल में 'रात सबकी अपनी होती है। आवारगी को इज्जत बख्श दी गई है। सब घर से बाहर रहते हैं। औरतें बुरकों में इधर से उधर जाती हैं। धीरे धीरे दुकानें भी बंद होने लगती हैं, पर कोई घर नहीं जाता। यहाँ बहुत से लोग बीबी बच्चों सहित नाव पर सवार होकर ताल से रात भर मछली पकड़ते रहते हैं जब कि दिन में कोई दूसरा धंधा करते हैं।' वीरेंद्रकुमार जैन की दृष्टि में अमृतसर रात की बाहों नहीं कुड़ियों की बाहों में रहता है। इलाहाबाद कमलेश्वर के शब्दों में अपने संस्कारों के दायरे से कभी भी बाहर न निकल पाने वाला शहर है। वह एक ऐसा शहर है जो अपने पुरातन मान मूल्यों को अब भी चिपकाए हुए हैं, जो कोई भी नया कदम उठाने में घबराता है। राजेंद्र यादव के अनुसार कलकत्ता एक शहर न होकर अपने बहुरंगी जीवन के कारण अनेक शहरों का समूह है। वहां घोर अनैतिकता और कट्टर धार्मिक नैतिकता गज भर की दूरी पर चलती रहती है।

'रात की बाहों में' के सभी 'रेखाचित्र-स्मरण' भाषा-शैली की दृष्टि से बड़े सजीव, प्रवाहमय और रोचक हैं। इनमें समाज के प्रायः उच्चवर्ग के लोगों के ही हास विलास का अधिक चित्रांकन हुआ है--दिन भर के थके माँदे तथा निर्धन लोगों का तो रात्रि का जीवन हो ही क्या सकता है?

हाँ सभी लेखक यथावसर उच्चवर्ग पर व्यंग्यात्मक प्रहार करने में नहीं हिचके हैं। रोचकता, व्यंग्यात्मकता सभी दृष्टियों से यह एक संग्रहणीय कृति है।

डा० राजपाल शर्मा

शंख और मूर्ख

लेखक—रोशनलाल सुरीरवाला, एम० ए० डिप-एल० एस-सी०।

नवमान प्रकाशन अलीगढ़।

मूल्य तीन रुपये, पृष्ठ संख्या।

यह पुस्तक विभिन्न प्रकार के राजनीतिक व्यंग्यों पर आधारित है। पुस्तक पर्याप्त रोचक है। पुस्तक की मुख्य विशेषता यह है कि लेखक ने जो कुछ लिखा है, बड़ी निर्भीकता के साथ लिखा है। वह किसी विशेष दल या इज्म से प्रभावित नहीं है। उसके मन में विभिन्न व्यक्तियों के प्रति जो व्यावहारिक प्रतिक्रिया

हुई है, उसे उसने बिना किसी हिचक के व्यंग्यात्मक रूप में रखा है। ये व्यंग्य समय समय पर पत्रों में प्रकाशित होते रहे हैं। पुस्तक को आद्योपांत पढ़ने के पश्चात् मात्र मनोरंजन ही नहीं होता बल्कि गुदगुदी और चिकोटी जैसी अनुभूति भी होती है।

पुस्तक पठनीय है। कितना अच्छा होता यदि पुस्तक का नाम 'शंख और मूर्ख' की जगह 'शंख और ढपोर शंख' रखा गया होता।

वंग भैरवी

लेखक—रवींद्रनाथ भूषण द्विवेदी,

प्रकाशक साहित्यालोचन-प्रकाशक १०६ शहराराबाग इलाहाबाद,

मूल्य चार रुपये, पृष्ठ संख्या ४६।

जैसा कि पुस्तक के नाम से ही व्यक्त हो जाता है, 'वंग भैरवी' में बंगला देश संबंधी वीर रस प्रधान कविताओं का संग्रह है। वंग भैरवी का कवि हिंदी का एक उदीयमान कवि है। आलोच्य पुस्तक की संपूर्ण कविताओं को पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यदि इसी तरह लगन लगी रही तो आगे चलकर इसका कवि और सुंदर एवं ओजमय काव्य देने में सक्षम होगा।

कुछ पंक्तियाँ तो काफी अच्छी हैं जैसे मुजीब की रिहाई पर लिखी गई कविता में—

जहाँ जहाँ आजादी की पौ फूटे,
उसकी ज्योति अभय हो।

× × ×

मेरे अग्नि गीत के अक्षर, गरम गरम हैं शोले।
इसकी पंक्ति पंक्ति तोपे हैं, शब्द-शब्द हथगोले॥

पुस्तक की छपाई ठीक है।

चंद्रशेखर मिश्र

सभा समाचार

१२ अप्रैल की सांध्य वेला में राजधानी (दिल्ली) स्थित कांस्टीट्यूशन क्लब में नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से आयोजित एक भव्य समारोह में उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री पं० कमलापति त्रिपाठी ने कहा, हिंदी प्रेमी यह संकल्प कर लें कि अपने सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत जीवन में हम हिंदी भाषा के माध्यम से ही कार्य करेंगे।

यह आयोजन जगन्नाथ प्रसाद भानु के काव्य प्रभाकर नामक ग्रंथ के प्रकाशनोद्घाटन के अवसर पर आयोजित था। जिसका उद्घाटन किया सेठ गोविंद दास ने। ग्रंथ का संपादन सभा के प्रधान मंत्री एवं संसद सदस्य पं० सुधाकर पांडेय ने किया है।

श्री त्रिपाठी जी धन्यबाद दे रहे थे। आपने परामर्श दिया कि हिंदी के साहित्यकारों और संस्थाओं को लड़ना-भिड़ना छोड़कर रचनात्मक कार्यों की ओर मुख्य रूप से ध्यान देना चाहिए। हमें इस अनुभव से लाभ उठाना चाहिए कि उतावलेपन से हमारी हानि हुई है। बाहर आंदोलन करने से अच्छा होगा कि हम अपने भीतर आंदोलन करें। सभा के महत्वपूर्ण प्रकाशनों की चर्चा करते हुए पंडित जी ने कहा, नागरी प्रचारिणी सभा काशी की अन्यतम संस्था है और मनोयोग के साथ हिंदी की सेवा कर रही है। उसीने हिंदी साहित्य संमेलन को जन्म दिया है इस संदर्भ में यह उचित ही कि 'भानु' के काम को सुधाकर ने अपनाया।

इस आयोजन में देश के अनेक माने जाने विद्वानों ने काव्यप्रभाकर के संपादन तथा प्रकाशन के लिये सभा और ग्रंथ के संपादक दोनों को धन्यवाद दिया।

सेठ गोविंद दास ने ग्रंथ का उद्घाटन करते हुए कहा हमें हिंदी भाषी राज्यों में हिंदी का प्रसार करना चाहिए। इस संदर्भ में स्वर्गीय प्रधान मंत्री नेहरू जी मुझसे प्रायः कहा करते थे, "हिंदी वाले हिंदी क्यों नहीं चलाते।" समारोह की अध्यक्षता की श्री कृष्णचंद पंत ने।

पूर्णता के पथ पर—

नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित
राष्ट्रभाषा का गौरवग्रंथ

साहित्य के माध्यम से आए शब्दों की विशाल राशि का अद्यतन प्रामाणिक संकलन। व्याकरण-निर्देश, प्रामाणिक व्युत्पत्ति, अर्थसंग्रह, अर्थच्छाया, ग्रंथ की पृष्ठसंख्या के निर्देश के साथ सोदाहरण प्रयोगों से संवलित। पूर्ण शब्दसंख्या अनुमानतः २,५०,००० के लगभग। मूल्य प्रतिखंड रु० २५–००

प्रथम आठ खंड प्रकाशित, ९वाँ खंड शीघ्र प्रकाश्य।

प्रथम खंड 'अ' से 'ईहित' तक	शब्दसंख्या १८,०००
द्वितीय खंड 'उ' से 'क्वैलिया' तक	,, २०,०००
तृतीय खंड 'दातव्य' से 'छ्वाना' तक	,, २१,०००
चतुर्थ खंड 'ज' से 'दस्तंदाजी' तक	,, १६,०००
पंचम खंड 'दस्त' से 'न्हावनो' तक	,, १६,०००
षष्ठ खंड 'प' से 'प्सुर' तक	,, १९,०००
सप्तम खंड 'फ' से 'मध्वृच' तक	,, १६,०००
अष्टम खंड 'मन' से 'ल्हीक' तक	,, २०,०००

★

★ नागरीप्रचारिणी सभा के नव प्रकाशित ग्रंथ ★

१. काव्य प्रभाकर—ले० जगन्नाथप्रसाद 'भानु', संपादक—सुधाकर पांडेय—५१—०० रु०

श्री जगन्नाथप्रसाद जी 'भानु' द्वारा विरचित यह ग्रंथ हिंदी के साहित्यशास्त्र का अत्यंत विस्तृत और प्रामाणिक आकर ग्रंथ है। इसमें साहित्यशास्त्र के सभी अंगों का सांगोपांग विस्तृत विवेचन किया गया है। इसका संपादन भी अत्यंत मर्मज्ञता के साथ विद्वान् संपादक ने किया है तथा एक विस्तृत भूमिका एवं ग्रंथ में आए कवियों का जीवनवृत्त देकर इसे और भी उपयोगी बना दिया है। हिंदी काव्यशास्त्र के अध्येताओं एवं शोधछात्रों के लिये यह ग्रंथ अत्यंत उपादेय एवं संग्रहणीय है।

---

२. भारतेंदु की खड़ीबोली का भाषाविश्लेषण :—

लेखिका डा० उषा माथुर मूल्य २५—०० रु०

भारतेंदु ने अपनी रचनाओं में जिस खड़ीबोली का प्रयोग किया है, विदुषी लेखिका ने उसका भाषावैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करके खड़ीबोली की विकास-परंपरा पर अत्यंत विद्वत्तापूर्ण प्रकाश डाला है। प्रत्येक स्थल पर लेखिका की भाषा संबंधी गहरी पैठ और सूझबूझ ने अत्यंत सुदृढ़ तथ्यों का आकलन किया है। पुस्तक शोधार्थियों के लिये अत्यंत उपादेय एवं पुस्तकालयों के लिये संग्रहणीय है।

---

३. जसवंतसिंह ग्रंथावली—संपादक श्री आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र—२०—०० रु०

जोधपुर नरेश महाराज जसवंतसिंह द्वारा रचित भाषाभूषण, दोवा और प्रबोध नाटक ये तीन साहित्यिक कृतियाँ तथा आनंदविलास, अनुभवप्रकाश, अपरोक्षसिद्धांत सिद्धांतबोध, सिद्धांतसार, भगवद्गीता टीका भाषा, भगवद्गीता भाषा दोहा और गीता माहात्म्य—ये आठ अध्यात्मविषयक कृतियाँ इस ग्रंथावली में संगृहीत हैं। जसवंतसिंह पर अब तक कोई गंभीर शोध कार्य नहीं हो पाया था। अतः शोधार्थियों तथा विद्वानों के लिये समान रूप से उपयोगी यह ग्रंथावली हिंदी साहित्य के एक बड़े अभाव की पूर्ति करेगी।

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

स्वत्वाधिकारी—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के लिये शंभुनाथ वाजपेयी द्वारा नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी से मुद्रित और प्रकाशित।

नागरी पत्रिका

जून, १९७२

नागरी प्रचारिणी सभा

वाराणसी

सभा के नवीन प्रकाशन

हितचौरासी और प्रेमदासकृत ब्रजभाषा टीका
संपादक-डा० विजयपाल सिंह तथा डा० चंद्रभान रावत १६)

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास—खंड १०
संपादक—डा० आचार्य रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' तथा
श्री शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' काशिकेय ३०)

मधुस्रोत (आ० रामचंद्र शुक्ल की अप्रकाशित कविताएँ) ६)

हिंदी और फारसी सूफी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन
लेखक—डा० श्रीनिवास बत्रा ३०)

हिंदी और मराठी के ऐतिहासिक नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन—
ले०—प्र० रा० भुपटकर ३०)

शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाले ग्रंथ

बिहारी सतसई—(लालचंद्रिका टीका मे युक्त)
सं० श्री सुधाकर पांडेय, मूल्य लगभग ५१)

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास—खंड ८—सं० विनयमोहन शर्मा, मूल्य १०)
" " " " खंड ७, रीतिकाल (रीतिमुक्त)
—सं० डा० भगीरथ मिश्र ३०)

हिंदी शब्दसागर—खंड ६ अनुमानित मूल्य २५)

रीतिपरिवेश—श्री करुणापति त्रिपाठी " १५)

सोमनाथ ग्रंथावली (दो खंडों में)—सं० पं० सुधाकर पांडेय " ४०)

नवीन संशोधित एवं परिवर्धित

नागरी प्रचारिणी सभा
काशी

इस सर्वाधिक लोकोपयोगी कोश का संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण अभी अभी प्रकाशित हुआ है जिसमें शब्दसंख्या तथा आकार आदि में पर्याप्त वृद्धि हुई है। शब्दसंख्या साठ हजार। मूल्य ३५) मात्र

वर्ष-५ अंक-१

जून, १९७२

वार्षिक दो रुपए

प्रति अंक पचीस पैसे

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

★

संपादकमंडल
करुणापति त्रिपाठी
डा० नागेंद्रनाथ उपाध्याय
मोहकमचंद मेहरा
संपादक—सुधाकर पांडेय
सहसंपादक—श्रीनाथ सिंह

दिल्ली प्रतिनिधि—
डॉ० रत्नाकर पांडेय,
४२, अशोक रोड,
नई दिल्ली।
फोन—
३८८१७०

लखनऊ प्रतिनिधि
डा० हरेकृष्ण अवस्थी,
एम० एल० सी०,
४, बादशाह बाग,
लखनऊ।
फोन—२४५५६

वैचारिकी

'हिंदी हमारे देश की राष्ट्रभाषा है', यह एक तथ्य है। जो लोग इस तथ्य को अस्वीकार करते हैं, उनके भी मन के किसी न किसी कोने में यह बात अवश्य होगी कि उनकी अस्वीकृति की नींव सच्चाई पर नहीं है। आज नहीं तो कल, उन्हें इस सत्य को स्वीकार करना ही पड़ेगा, देर सवेर वे भी इसे मानेंगे।

डाक तार विभाग ने प्रतियोगी परीक्षाओं में हिंदी माध्यम से भी उत्तर लिखने की अनुमति प्रदान करने का निर्णय स्वीकार किया है। यह छूट हिंदीभाषी राज्यों–बिहार, हरियाणा, हिमाचल-प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और केंद्र शासित दिल्ली प्रदेश के डाकतार कार्यालयों की परीक्षाओं के लिए दी गई हैं। अहिंदी भाषी क्षेत्रों में भी माँग होने पर ऐसी छूट दी जा सकती है। हम इस निर्णय का स्वागत करते हैं। यह कार्य और पहले ही होना चाहिए था। खैर—देर ही सही किंतु डाकतार विभाग ने यह एक अच्छा और राष्ट्रहित का निर्णय लिया है। निर्णय में यह भी कहा गया है कि "परीक्षाओं में प्रश्नों के उत्तर हिंदी या अँग्रेजी में से किसी एक में लिखे जा सकते हैं किंतु प्रश्न पत्र सभी प्रदेशों के अँग्रेजी में ही रहेंगे।" आखिर ऐसा क्यों? अँग्रेजी का व्यामोह कब तक चलता रहेगा? जब हिंदी में उत्तर लिखने का निर्णय ले लिया गया तो प्रश्नपत्रों को अँग्रेजी से मुक्त क्यों नहीं किया जा रहा है? युग की इस ईमानदारी की माँग को अधिक दिन तक नकारा नहीं जा सकता। एक न एक दिन स्वीकार करना ही पड़ेगा। जिस प्रकार हिंदी में उत्तर लिखने की छूट दी गई उसी प्रकार प्रश्नपत्रों का मुद्रण भी हिंदी में आज नहीं तो कल करना ही पड़ेगा। कोई भी सत्य असत्य के पर्दे में अधिक समय तक

छिपाया नहीं जा सकता। जब यह बात सत्य है तो प्रश्न पत्रों को अँग्रेजी की दासता से मुक्त करने में कौन सी आपत्ति है?

डाकतार विभाग के निर्णय में यह भी कहा गया है कि "अहिंदीभाषी क्षेत्रों में भी माँग करने पर प्रश्न पत्रों के उत्तर हिंदी में लिखने की छूट दी जा सकती है।" हमारा अनुमान है कि अहिंदी भाषी क्षेत्रों में भी जो लोग अंग्रेजी को बनाये रखना चाहते हैं, उनकी संख्या उनसे कम है जो हिंदी के देश-व्यापी, सार्वभौमिक रूप को सही सही समझते हैं। ऐसे लोग किसी खास अंचल या प्रांत की संकीर्ण भावना से ऊपर की बात सोचते हैं। किंतु गंदी और संकुचित राजनीति वाले आज भी उन पर हावी हैं। देश की शिक्षा नीति पर अपना विचार व्यक्त करते हुए मैंने एक दिन संसद में कहा था कि 'जहाँ संकीर्णता होगी वहाँ अगति होगी, जहाँ संकीर्णता होगी वहाँ मृत्यु की उपासना होगी। जीवन की उपासना तो वहाँ होती है जहाँ अभेद की दृष्टि होती है। इसलिए जो लोग राष्ट्रहित की भावना में विश्वास करते हैं, उन्हें बिना किसी हिचक के अपनी आवाज को सामने लाना चाहिए। इससे कम से कम इतना लाभ तो होगा ही कि संकीर्ण एवं स्वार्थी लोग इस बात से परिचित हो जायँगे कि सचाई को और अधिक समय तक झुठलाया नहीं जा सकता।

\+ + +

इस मास की २९ तारीख को संस्कृत के महाकवि श्री उमापति द्विवेदी का निधन हो गया। 'कविपति' उपनामधारी श्री उमापति द्विवेदी जी एक उच्चकोटि के कवि तो थे ही, साथ ही मूर्धन्य विचारक और मनीषी भी थे। संस्कृत हमारी देववाणी है। उसके बिना हमारा एक भी मांगलिक कार्य और जीवन का कोई भी संस्कार संपन्न नहीं होता। आज संस्कृत देश की आम भाषा भले न हो किंतु भारतीय आत्मा और संस्कृति का सच्चा दर्शन उसी भाषा में और विशेष रूप से संस्कृत में लिखे गये काव्यों में होता है। जहाँ यह सत्य है कि जब तक हम और हमारी संस्कृति है तब तक हमारी पूजा की भाषा निश्चय रूप से बनी रहेगी, वहीं यह आवश्यक है कि संस्कृत साहित्य के सृजन का क्रम बराबर चलता रहे। स्वर्गीय महाकवि श्री उमापति द्विवेदी ने 'पारिजात हरणम्' नामक महाकाव्य लिखकर संस्कृत महाकाव्यों की परंपरा को और आगे बढ़ाया है। इस महाकाव्य पर आपको सरकार की ओर से पुरस्कार भी मिल चुका है। 'कविपति' की एक दार्शनिक कृति 'चैतन्य-चिंतनम्' का मुद्रण उनके शिष्यों की देख रेख में हो रहा है। इस कृति की अभी से बड़ी प्रशंसा सुनी जा रही है। 'शिवास्तुति', वीर विंशतिका, आदि अनेक रचनाएँ प्रकाशित हैं, जिन्हे संस्कृत साहित्य में बड़ा आदर मिला है। संप्रति आपकी अवस्था ७४ वर्ष की थी फिर भी आप साहित्य सृजन में बराबर लगे रहे। आपके निधन से संस्कृत साहित्य को ऐसी ठेस लगी है जिसकी पीड़ा बहुत दिनों तक बनी रहेगी। हम भूत भावन भगवान शंकर से प्रार्थना करते हैं कि काशीवासी (जन्म स्थान देवरिया जनपद) उस महाकवि की आत्मा को शांति प्रदान करें।

× × ×

२९ मई को प्रातःकाल हमारे देश के महानतम अभिनेता पृथ्वीराज कपूर का देहावसान ६६ वर्ष की अवस्था में बंबई में हो गया। उनके निधन से भारतीय चल चित्र-कला जगत में जो अभाव हो गया है, उसकी पूर्ति अब संभव नहीं। भगवान ने इस कलाकार को अभिनय कला के साथ ही ऐसा विशाल एवं भव्य व्यक्तित्व दिया था जिसके बिना कुछ खास प्रकार के अभिनय किये ही नहीं जा सकते। अभिनय के साथ ही फिल्मी कलाकारों के 'पापा' नाट्य साहित्य की अच्छी एवं पैनी परख भी रखते थे।

वे प्रसाद के नाटकों को परदे पर उतारना चाहते थे किंतु काल ने हमें उनसे छीन लिया। एक बार 'नागरीप्रचारिणी सभा' के प्रांगण में आयोजित रंग मंच संबंधी गोष्ठी में उन्होंने जो भाषण किया था, उसकी बड़ी सराहना हुई थी। पृथ्वीराज कपूर तब से सिने संसार में अभिनय कर रहे थे जब चल चित्रों को भाषा नहीं मिली थी। उनका पूरा परिवार ही कलाकार है। आपने पृथ्वी थियेटर की स्थापना की जिसे बड़ी ख्याति मिली। आप फिल्म जगत में प्रवेश करने वाले प्रथम स्नातक थे। आपके निधन से फिल्म संसार का एक चमकता हुआ नक्षत्र डूब गया। भगवान से हमारी प्रार्थना है कि वह उनकी आत्मा को सद्गति प्रदान करे।

—सुधाकर पांडेय

स्वर्गीय 'सनेही' जी

हिंदी साहित्य को नई मधुरिमा से मंडित काव्य प्रदान करने वाले पंडित गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' एक लंबी अवधि तक अपनी सरस और भावमयी काव्य शैली का प्रतिनिधित्व करते रहे। ये फारसी और उर्दू के विद्वान थे, अतः आरंभ में इन्होंने काव्य-सर्जना उर्दू शायरी से ही प्रारंभ की थी और उसमें ये सहृदयों द्वारा काफी प्रशंसित भी हुए। आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपर्क में आने पर उनकी प्रेरणा से ये हिंदी की ओर अभिमुख हुए और इन्होंने व्रजभाषा को अपनाया। परिवर्तित समय के अनुकूल कालांतर में ये खड़ी बोली की ओर आकृष्ट हुए और कविता के लिये इन्होंने युगानुरूप नए विषयों को चुना। हिंदी-साहित्य की 'पड़ी' और 'खड़ी' दोनों बोलियों को इन्होंने समान रूप से संवारा है। व्रजभाषा के काव्यस्रोत को सूखने से बचाने और उसे प्रवहमान बनाए रखने में इनका प्रमुख हाथ रहा है। कानपुर और उसके आसपास आज भी व्रजभाषा में जो अच्छी कविताएं हो रही हैं, उसका श्रेय सनेहीजी को ही है। मुगल काल से ही उर्दू के मुशायरों की धूम रही है। सनेही जी ने उसके ही समानांतर हिंदी कवि संमेलन को प्रचलित किया, जिसका विकसित रूप हमें आज देखने को मिलता है। इनके कवि शिष्यों की एक लंबी सूची है। इनके शिष्यों में कुछ तो अपने युग के श्रेष्ठ कवि रहे हैं, जिनमें स्वर्गीय जगदंबा प्रसाद जी 'हितैषी' अन्यतम रहे हैं। अपने 'दीपक' नामक अन्योक्तिपरक कविता में इन्होंने बहुत पहले ही लिख दिया था—

'बुझने का मुझे कुछ क्लेश नहीं,
पथ सैकड़ों को दिखला चुका हूँ।'

'सुकवि' तथा 'रसराज' नामक मासिक पत्र, जिनमें समस्या पूर्तियाँ हुआ करती थीं, इन्हीं की प्रेरणा के फल थे। वादों और विवादों से परे रह कर इन्होंने स्वेच्छया स्वच्छंद रूप से काव्य रचा। खड़ी बोली में व्रजभाषा की सी माधुरी और उर्दू शायरी-सी तड़प लाने की शक्ति सर्वप्रथम इन्हीं की रचना में देखने को मिली। उर्दू की प्रकृति से पूर्ण परिचित होने के कारण ही ये खड़ी बोली की कविता में भी वही बाँकपन और सद्यः प्रभावशीलता लाने में पूर्ण समर्थ हो सके थे। काव्य-सुधानिधि, रसिकमित्र और साहित्य सरोवर नामक तत्कालीन पत्रों में इनकी रचनाएं बराबर प्रकाशित होती रहीं। आरंभ में ये 'त्रिशूल' नाम से कविताएं लिखते थे। बाद में इनके कई काव्य संग्रह प्रकाशित हो गए थे, जिनमें प्रेम पचीसी, कुसुमांजलि, कृषक क्रंदन आदि प्रमुख हैं।

स्थानीय समाचार पत्र द्वारा दो दिन पहले विदित हुआ कि २० मई को इनका देहावसान एक लंबी बीमारी के बाद ८१ वर्ष की

बय में हो गया। इस दुःखद समाचार से काशी का हिंदी साहित्य सेवी वर्ग तड़प कर रह गया।

इतना बड़ा प्रभविष्णु और अभिनंद्य व्यक्तित्व हमारे बीच से उठ गया, जिसकी रिक्तता को भरा नहीं जा सकता। ऐसे ही त्यागी, मनस्वी, निर्दंभ और स्वार्थपराङ्मुख व्यक्तियों के ही कारण हिंदी भाषा महान् गौरव की अधिकारिणी है। निर्दंभ और निर्मत्सर भाव से साहित्य देवता की आराधना करना ही ऐसी महान् विभूति के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। सस्ती ख्याति अर्जित करने के लिये यत्नशील 'अन्तः शैवा बहिः शाक्ताः सभामध्ये च वैष्णवाः' जैसे लोगों से राष्ट्रभाषा का गौरव प्रवर्द्धित होने की जगह ह्रस्व और खंडित ही होता है। अतः सनेही जी जैसे संत कवि के आदर्श को प्रतिष्ठित करने के लिये हिंदी वालों को कुछ ठोस काम करना होगा।

—लालधर त्रिपाठी

हिंदी साहित्य संमेलन : नयी दिशा की ओर

हिंदी साहित्य संमेलन पिछले २० वर्षों से न्यायालय तथा केंद्रीय ऐक्ट के अधीन चलता रहा है जिसमें उसकी स्वाभाविक जनतांत्रिक गतिविधि बंद सी हो गई थी। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि पिछले इक्कीस वर्षों में उसका कोई वार्षिक अधिवेशन नहीं हो सका। संमेलन की स्थापना सन् १९१० में हुई थी। तब से सन् १९५१ तक संमेलन के ३८ वार्षिक अधिवेशन संपन्न हुए थे। इन वार्षिक अधिवेशनों के माध्यम से संमेलन ने सारे भारत में हिंदी का जो व्यापक और महत्वपूर्ण प्रचार-प्रसार किया उससे सारा देश परिचित है। वार्षिक संमेलनों के न होने से हिंदी के प्रचार और प्रसार में बाधा पहुँची है तथा हिंदी की जो क्षति हुई है वह अपूर्णनीय है। इस गतिरोध का विशेष प्रभाव अहिंदीभाषी क्षेत्रों में हुआ जहाँ हिंदी के प्रति उनकी भावना तथा दृष्टिकोण में ही अंतर आ गया इसे राष्ट्रीय क्षति ही कहा जा सकता है।

बीस वर्ष के पश्चात् गत १६ मई ७१ को संमेलन की स्थायी समिति को संमेलन के नियंत्रण संचालन का भार प्राप्त हुआ, तब से अब तक स्थायी समिति के कई अधिवेशन हो चुके हैं। इन अधिवेशनों में संमेलन को पुनः नवजीवन प्रदान करने के लिए अनेक महत्वपूर्ण निश्चय किये गये हैं। सबसे प्रमुख बात है कि स्थायी समिति ने वर्षों से विवादास्पद पड़ी नियमावली के संशोधनों को अपनी स्वीकृति दे दी है तथा उन्हें अंतिम रूप देने के लिये विशेषाधिवेशन बुलाने का निश्चय किया है। स्थायी समिति शीघ्र से शीघ्र विशेष अधिवेशन कराने के लिए प्रयत्नशील है। इस अधिवेशन के पश्चात ही स्वीकृत नियमावली के अधीन नवीन स्थायी समिति का संगठन किया जा सकेगा। इस अंतरिमकाल में स्थायी समिति संमेलन की विविध प्रवृत्तियों को गतिशील बनाने का प्रयास कर रही है। संमेलन के विभिन्न विभागों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

प्रचार विभाग

पिछले वर्षों में संमेलन का प्रचार विभाग बिल्कुल निष्क्रिय सा ही रहा है क्योंकि वार्षिक अधिवेशन, निर्वाचन आदि के स्थगित हो जाने के कारण देश में बिखरी हुई अनेक हिंदीसेवी संस्थाओं, संमेलन से संबद्ध संस्थाओं तथा प्रांतीय संमेलनों आदि से संमेलन का संपर्क ही समाप्त सा हो गया था। संमेलन की कई अंगभूत संस्थाओं—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा तथा साहित्य सदन अबोहर आदि से संमेलन का संबंध न केवल ढीला पड़ गया था अपितु सहयोग परामर्श का मार्ग ही अवरुद्ध हो गया था। इस दिशा में अब संमेलन ने जागरूकता दिखलाई है। अभी हाल में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की एक महत्वपूर्ण बैठक संपन्न हुई जिसमें संमेलन द्वारा नामित प्रायः सभी सदस्य उपस्थित हुए। वर्धा समिति को अधिक सशक्त करने और संमेलन के साथ उसके संबंधों को अधिक घनिष्ट बनाने के उद्देश्य से एक उत्साही हिंदी सेवी को वर्धा समिति का मंत्री चुना गया है। साहित्य सदन अबोहर के संचालन के लिए भी स्थायी समिति शीघ्र ही नवीन व्यवस्था करेगी।

इसी प्रकार प्रांतीय संमेलनों और संबद्ध संस्थाओं से भी संपर्क स्थापित किया जा रहा है। विश्वास है कि शीघ्र ही बिखरी हुई देश की सारी हिंदी सेवी संस्थाओं से संमेलन का प्रगाढ़तर संबंध स्थापित हो जायगा।

संमेलन के पाक्षिक प्रकाशन 'राष्ट्रभाषा संदेश' को अधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न हो रहा है और इसकी अधिक प्रतियाँ मुद्रित कराकर उपयुक्त स्थानों तक पहुँचाने का यत्न हो रहा है।

परीक्षा विभाग

संमेलन की परीक्षाओं का अपना अलग महत्व रहा है--प्रचार और प्रसार की दृष्टि से भी और ज्ञान वृद्धि की दृष्टि से भी। संमेलन की आय का भी प्रमुख स्रोत संमेलन की परीक्षाएं रही हैं। हिंदी प्रचार की दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि देश के कोने कोने में संमेलन की परीक्षाओं की व्यवस्था की जाय और अधिकाधिक व्यक्तियों को इस ओर आकर्षित किया जाय। श्री प्रभात शास्त्री संमेलन के बड़े ही कर्मठ और उत्साही कार्यकर्ता रहे हैं। इसलिए स्थायी समिति ने परीक्षाओं के प्रसार के लिए श्री प्रभात शास्त्री को परीक्षा संयोजक नियुक्त किया और यह हर्ष का विषय है कि श्री शास्त्री जी के उद्योग से एक वर्ष में ही लगभग पाँच सहस्त्र परीक्षार्थियों की वृद्धि हुई है तथा परीक्षाओं के स्तर को ऊंचा करने का प्रयास हुआ है।

हम संमेलन की परीक्षाओं को मजाक नहीं बनाना चाहते इसलिए उनके स्तर को ऊंचा उठाने के लिए कई योजनाएं विचाराधीन हैं।

संवत् २०२७ (१९७०) के परीक्षार्थियों एवं केंद्रों का विवरण
(स्थायी समिति के कार्यभार से पहले)

कुल केंद्र ४३० (जिसमें ३ विदेशों में–मारीशस, ज्यावड़ी, रंगून)

प्रथमा	– ५३४६
मध्यमा	– ७१८६
उत्तमा प्र० खं०	– ५६६१
उत्तमा द्वि० खं०	– ३४५०
अन्य विशारद	– १०५२७
	योग–३२४१५

संवत् २०२८ (१९७१) के परीक्षार्थियों एवं केंद्रों का विवरण
(स्थायी समिति के कार्यभार लेने के बाद)

कुल ५११ केंद्र (जिसमें ३ विदेशों में–मारीशस, रंगून, ज्यावड़ी)

प्रथमा	– ७४६०
मध्यमा	– ८७६९
उत्तमा प्र० खं०	– ६९६०
उत्तमा द्वि० खं०	– ३६५३
अन्य विशारद	– ११२३४
	योग—३८०७६

एक योजना संमेलन की परीक्षाओं के पाठ्यक्रम को स्तरीय, संतुलित और वैज्ञानिक बनाने की है। इस ओर हमने महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं। बीस पच्चीस वर्ष पहले का पाठ्यक्रम कुछ थोड़े बहुत उलट फेर के साथ अभी तक ज्यों का त्यों चला आ रहा था। स्थायी समिति के कार्यभार ग्रहण करने के पश्चात् इस ओर विशेष ध्यान दिया गया तथा विश्वविद्यालयों के वरिष्ठ प्रोफेसरों तथा हिंदी विभागाध्यक्षों की समिति ने पाठ्यक्रम संबंधी अनेक संशोधन तथा परिवर्तन प्रकाशित किए हैं जिन्हें कार्यान्वित किया जा रहा है।

साहित्य विभाग

साहित्य सर्जना तथा प्रकाशन की दिशा में भी संमेलन की गतिविधि एकांगी और शिथिल सी रही है। गत बीस वर्षों में कोश निर्माण तथा कुछ विश्वविद्यालयों के शोध ग्रंथों के प्रकाशन के अतिरिक्त कोई विशेष रचनात्मक कार्य नहीं हो सका है। साहित्य विभाग की एक महत्त्वपूर्ण योजना पुराणों के अनुवाद की थी जो किन्हीं अज्ञात कारणों से बंद कर दी गई थी। स्थायी समिति ने कार्यभार संभालते ही पुराणों के अनुवाद का कार्य प्रारंभ कर दिया है और कई अनूदित पुराणों के मुद्रण का कार्य प्रारंभ हो चुका है। संप्रति ब्रह्म पुराण मुद्रित हो रहा है और अग्निपुराण तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण मुद्रित होने के लिए संपादित हो रहे हैं।

संमेलन परीक्षाओं के नवीन पाठ्यग्रंथों के प्रकाशन का कार्य भी साहित्य विभाग ने संभाल लिया है। अनेक मानक ग्रंथों के निर्माण तथा प्रकाशन की योजनाएँ भी विचाराधीन हैं।

संग्रह विभाग

संग्रहालय में पांडुलिपियों का एक विशाल भंडार है। कुल हस्तलिखित ग्रंथ संगृहीत हैं और मुद्रित ग्रंथ हैं। इन ग्रंथों की संख्या प्रति वर्ष बढ़ रही है। अनेक ऐसी पांडुलिपियां हैं जिन्हें संपादित कर मुद्रित करने की आवश्यकता है। मुद्रण योग्य पांडुलिपियों का चयन किया जा रहा है। अब तक कुल ७ महत्वपूर्ण ग्रंथों का मुद्रण स्वीकार किया जा चुका है। एतदर्थ केंद्रीय सरकार से १७२१९) रु० की वित्तीय सहायता की मांग की गई है।

हिंदी संग्रहालय अपने विशाल सुसज्जित भवन में स्थित है। इसमें संग्रहीत मुद्रित सामग्री इस प्रकार है—

मुद्रित ग्रंथ	—	४८८२८
फाइलें (जिल्दबंधी) मासिक पत्रिका	—	३०५७
साप्ताहिक	—	७२४
दैनिक	—	५३८
गजट	—	२५५

इसके अतिरिक्त सुप्रसिद्ध भारतीय विद्वान् स्व० मेजर वामनदास वसु का निजी संग्रह वसुकक्ष में ४७८९ ग्रंथ और फाइलें तथा श्री भारतीय और स्व० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल के निजी संग्रह की पुस्तकें और पत्रिकाओं की फाइलें भी हैं।

हिंदी संग्रहालय से संलग्न हिंदी पुस्तकालय में १३६४८ पुस्तकें हैं।

हिंदी संग्रहालय के अंतर्गत लगभग ८००० हस्तलिखित दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है जो कि ग्रंथदाताओं के नामानुसार 'सूरज सुभद्रा कक्ष' और 'रणवीर कक्ष' के अंतर्गत वैज्ञानिक विधि से

सुव्यवस्थित हैं। इनके अतिरिक्त साहित्यकारों के पत्रों, चित्रों, परिचय पत्रों और स्मृति योग्य अन्य सामग्री का भी संग्रह किया गया है। हस्तलिखित ग्रंथों की सूची का एक खंड प्रकाशित हो चुका है। अन्य खंड भी क्रमशः प्रकाशित होने के लिए भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के अनुदान से तैयार किये जा रहे हैं। साहित्य संमेलन की एक संस्था साहित्य संगम है जिसकी ओर विशेष ध्यान की आवश्यकता है। इसके कागज पत्रों को देखा जा रहा है और उसके लिए एक उपसमिति का गठन कर दिया गया है।

यह बड़े हर्ष का विषय है कि देश की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरागांधी तथा प्रदेश के मुख्य मंत्री पं० कमलापति त्रिपाठी भी संमेलन के कार्यों में विशेष रुचि ले रहे हैं। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरागांधी ने संमेलन के प्रधानमंत्री श्री सुधाकर पांडेय के एक पत्र के उत्तर में संमेलन को सुझाव दिया है कि अन्य भाषाओं के महत्वपूर्ण ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद करके उन्हें प्रकाशित करना चाहिए।

देश के प्रधानमंत्री का पत्र
संमेलन के प्रधान मंत्री को

प्रधानमंत्री भवन, नई दिल्ली
७ मई, १९७२।

प्रिय श्री पांडेय,

आपका २४ अप्रैल, १९७२ का पत्र प्राप्त हुआ, धन्यवाद।

आपको 'हिंदी साहित्य संमेलन', प्रयाग का प्रधान मंत्री चुना गया है, यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई। मुझे विश्वास है कि संमेलन आपके मार्ग दर्शन में प्रगति करेगा।

हिंदी के विकास एवं प्रचार के लिए यह आवश्यक है कि इसमें ज्ञान विज्ञान की प्रत्येक शाखा के लिए पुस्तकें लिखने को प्रोत्साहित किया जाए तथा अन्य भाषाओं के साहित्य का अनुवाद भी हिंदी में किया जाए। इससे हिंदी भाषियों के साथ-साथ दूसरे लोगों में भी हिंदी की पुस्तकों के प्रति रुचि बढ़ेगी।

भवदीया,
ह० (इंदिरा गांधी)

श्री सुधाकर पांडेय,
संसद सदस्य,
प्रधानमंत्री,
हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग।

स्थायी समिति ने श्रीमती गांधी के सुझावों को सधन्यवाद स्वीकार कर लिया है और एक लाख रुपये की पूँजी से अन्यभाषाओं के स्तरीय ग्रंथों के अनुवाद की योजना स्वीकार की है। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री पं० कमलापति त्रिपाठी ने सुझाव दिया है कि संमेलन को हिंदी के विद्वानों, साहित्यकारों एवं प्राध्यापकों को अहिंदीभाषी क्षेत्रों में पर्यटन के लिए भेजना चाहिए। इससे उन राज्यों में हिंदी के प्रति रुचि उत्पन्न होगी। स्थायी समिति ने एक लाख रुपए की पूँजी स्वीकार करके इस योजना को भी कार्यान्वित करने का निश्चय किया है।

मुख्य मंत्री का पत्र

४८०४/पी एस
विधान भवन'
लखनऊ
दिनांक १ मई, १९७२।

प्रिय पांडे जी,

आपका २८ अप्रैल का पत्र।

यह संतोष की बात है कि हिंदी साहित्य संमेलन पारस्परिक विवादों से मुक्त हो गया है और यह और भी अधिक संतोषजनक है कि उसकी बागडोर आपके सुयोग्य हाथों में आ गई है। संमेलन के सामने बड़ी जिम्मेदारी का काम है। हिंदी को सबल और सर्वप्रिय बनाना है जिससे वह देश के विभिन्न भागों में ही नहीं वरन् एशिया के पूर्वी देशों से भी सांस्कृतिक संपर्क का साधन बन जाय। हिंदी लेखकों और कवियों को अन्य भाषाओं के साहित्य से परिचय प्राप्त करना चाहिए। वैसा करने से हिंदी की क्षमता बढ़ेगी, वह सारे भारत की भाषा कहलाने का दावा कर सकेगी। लोग वहाँ जायें उनकी भाव विचार धारा को समझें और हिंदी में उसे उपलब्ध करायें यही बात पश्चिम एशिया के देशों के बारे में हो सकती है। तभी हिंदी एक प्रदेश की, एक देश की भाषा न रहकर भारतीय संस्कृति का प्रतीक बन सकेगी, जो स्थान पहले संस्कृत को प्राप्त था।

यदि हिंदी लेखकों, कवियों, प्रोफेसरों, अध्यापकों को भ्रमण के लिये वित्तीय या अन्य प्रकार की सुविधा दी जाय तो क्या इस दिशा में प्रगति हो सकेगी, यह सब हिंदी साहित्य संमेलन के विचार करने की चीज है। कोई योजना बननी चाहिए और उसके लिए प्रदेशीय सरकार तथा केंद्र से कहना चाहिए।

आपका

ह० (कमलापति त्रिपाठी)

श्री सुधाकर पांडेय,
संसद सदस्य,
प्रधानमंत्री हिंदी साहित्य-
संमेलन, प्रयाग।

स्थायी समिति ने एक प्रस्ताव द्वारा मालवीय नाट्यशाला के निर्माण का भी निश्चय किया है, इसमें एक साथ पाँच हजार व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था होगी। मालवीय नाट्यशाला की योजना सन् १९५०-५१ में तत्कालीन परीक्षामंत्री पंडित सीताराम चतुर्वेदी ने बनाई थी और उस समय इसके लिए कुछ धन भी एकत्र किया था। इसके लिए बजट में साढ़े तीन लाख रुपए का प्राविधान किया गया है। साथ ही साहित्य तथा आयुर्वेद विद्यालय के लिए भवन बनाने का भी निश्चय किया गया। आयुर्वेद विद्यालय के साथ एक आतुरालय के निर्माण का भी निश्चय हुआ है। इस मद में एक लाख दस हजार रुपए का प्राविधान बजट में किया गया है।

हमें हिंदी तथा अहिंदी प्रदेशों के वरिष्ठ और वयोवृद्ध साहित्य सेवियों का सक्रिय सहयोग प्राप्त है। पं० कन्हैयालाल मिश्र जैसे मनीषी और प्रतिभा संपन्न व्यक्ति का सर्वतोभावेन योग हमारे लिए गर्व और गौरव का विषय है।

एक विचार गोष्ठी

'हिंदी पुस्तकों का निर्यात'

यह विचार-गोष्ठी गत पहली अप्रैल को नई दिल्ली के इंपीरियल होटल में आयोजित की गई। गोष्ठी का उद्घाटन केंद्रीय उपशिक्षा मंत्री माननीय देवनंदन प्रसाद यादव ने किया। अध्यक्षता 'राष्ट्रीय पुस्तक न्यास' के अध्यक्ष श्री बालकृष्ण केसकर ने की। वक्ता थे—केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक डा० श्री गोपाल शर्मा, स्टार पब्लिकेशंस के 'नई दिल्ली के मैनेजिंग डायरेक्टर श्री अमरनाथ, एस० चांद एंड कंपनी के संचालक श्री श्यामलाल गुप्त, हिंद पाकेट बुक्स के मैनेजिंग डायरेक्टर श्री दीनानाथ मल्होत्रा, शिक्षा मंत्रालय की ओर से श्री अबुल हसन, विदेश मंत्रालय की ओर से श्री बी० पी० सिंह तथा सस्ता साहित्य मंडल की ओर से श्री यशपाल जैन।

माननीय उप शिक्षामंत्री ने इस विचार गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए आशा व्यक्त की कि ऐसे आयोजनों द्वारा हिंदी पुस्तकों के निर्यात के ऐसे ठोस प्रबंध किये जाएंगे जिससे न केवल विदेशों में हिंदी का प्रचार प्रसार एवं हिंदी के प्रति बढ़ रही विदेशियों की अभिरुचि को प्रोत्साहन मिलेगा, बल्कि इससे भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा का अर्जन भी होगा। उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका, पश्चिमी जर्मनी, रूस, जापान, हंगरी, इंग्लैंड, अफगानिस्तान तथा चीन जैसे देशों में हिंदी के प्रति जागृत अभिरुचि तथा वहाँ के विश्वविद्यालयों में 'हिंदी पठन' की अनिवार्यता को हिंदी विकास के पक्ष में शुभ लक्षण बताया और इस स्थिति से पूरा लाभ उठाने हेतु अधिक से अधिक हिंदी पुस्तकों के निर्यात की व्यवस्था का सुझाव दिया। संयुक्त राज्य अमेरिका की लाईब्रेरी आफ कांग्रेस में छपे हिंदी पुस्तकों के नवीन प्रकाशनों संबंधी सूची पत्रों को मंत्री महोदय ने उपयोगी बताते हुए कहा कि इससे उस अभाव की पूर्ति हो रही है जो अब तक हिंदी पुस्तकों के समुचित प्रचार और प्रसार के न होने से बना हुआ था। अपने भाषण के अंत में उन्होंने आशा व्यक्त की कि गोष्ठी में किये गए निर्णय को शीघ्र ही कार्यान्वित किया जायगा ताकि हिंदी को अंतर्राष्ट्रीय गौरव प्रदान करने का श्रेय 'प्रकाशक संघ' को प्राप्त हो।

श्री कृष्णचंद्र बेरी--गोष्ठी के निदेशक श्री कृष्णचंद्र बेरी ने निर्यात समस्या के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए कहा कि जिस प्रकार ईरान में उमरखैयाम की रचनाओं के आकर्षक संस्करण अनेक विदेशी भाषाओं में छपकर दुनियाँ में बिकते हैं उसी प्रकार रामचरित मानस तथा अन्य भारतीय कृतियों के सुन्दर संस्करण विदेशों के लिए उपलब्ध कराये जाने चाहिए।

श्री अमरनाथ ने १९६६ ई० में की गई अपनी विदेश यात्रा के अनुभव के आधार पर बताया कि वहाँ हिंदी पुस्तकों के प्रति अभिरुचि है, उनकी खरीद के लिए पर्याप्त बजट की व्यवस्था भी, और वहाँ विदेशी मुद्रा संबंधी कोई झंझट भी नहीं है। फिर भी विदेशियों को हिंदी पुस्तकें मंगवाने में कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है--मसलन एक स्थान से सभी पुस्तकें न पा सकना। सूचीपत्रों का रोमन लिपि में न होना, इत्यादि।

डा० गोपाल शर्मा ने 'हिंदी पुस्तकों के निर्यात' को सुनियोजित करने के लिए कई सुझाव दिये। सबसे पहले उन्होंने विदेशों में हिंदी पुस्तकों की खपत संबंधी 'आँकड़े' एकत्र करने की आवश्यकता पर बल दिया। दूसरा सुझाव उनका यह था कि आज संसार के अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। अतः हमें उनकी जानकारी प्राप्त करके उनकी आवश्यकता, रुचि और स्तर के अनुसार पुस्तकों का निर्यात करना चाहिए। विदेशों में हिंदी के पुस्तकालयों की संख्या जान लेने का भी उन्होंने सुझाव दिया। पुस्तकों के निर्यात के मामले में सावधानी बरतने पर भी उन्होंने बल दिया ताकि विदेशों में हिंदी की निकृष्ट व निम्न स्तर की ऐसी पुस्तकों का निर्यात न होने लगे जो भारत की बदनामी का कारण बने। शिक्षण संबंधी

हिंदी पुस्तकों को मनोवैज्ञानिक एवं आधुनिक ढंग पर लिखने पर भी उन्होंने जोर दिया। एक 'राष्ट्रभाषा' होने के नाते विदेशी लोग हिंदी में किस स्तर के प्रकाशनों की अपेक्षा रखते हैं, यह बताते हुए उन्होंने हिंदी पुस्तकों के निर्यात में सतर्क रहने की सलाह दी। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि विदेशों में बसे हिंदी लेखकों को पुस्तक लेखन के लिए आमंत्रित एवं प्रोत्साहित किया जाय। इससे निर्यात में वृद्धि होगी। विदेशों को निर्यात की जाने वाली पुस्तकों का कागज बढ़िया, छपाई उत्तम और पुस्तक की साज सज्जा पर भी जोर देना चाहिए। विदेशी प्रकाशकों के सहयोग से विदेशों में हिंदी पुस्तकों के प्रकाशन तथा तत्संबंधी कार्यालय खोलने का भी उन्होंने सुझाव दिया।

श्री श्यामलाल गुप्त ने कहा कि अमेरिका में १५०० करोड़ रुपये की पुस्तकों का वार्षिक उत्पादन होता है जिसमें ३०० करोड़ रुपये की पुस्तकें निर्यात की जाती हैं। उन्होंने हिंदी की पाठ्य पुस्तकों के निर्यात पर भी बल दिया और कहा कि अच्छी पाठ्य पुस्तकें तैयार की जायें तो इसकी अच्छी खपत हो सकती है। श्री गुप्त का सुझाव था कि हमारे दूतावास समय समय पर पुस्तकों की प्रदर्शनियाँ लगायें और पुस्तकें हवाई जहाज से पहुँचाई जायें ताकि वे शीघ्र पहुँच सकें।

श्री दीनानाथ मल्होत्रा ने सुझाव दिया कि पुस्तकों की डाक की दर कम होनी चाहिए ताकि विदेशों में बसनेवाले भारतीय सुगमतापूर्वक पुस्तकें मंगा सकें। उनका सुझाव था कि नियमित रूप से रोमन लिपि में एक ऐसी पत्रिका प्रकाशित की जाय जिसमें हिंदी पुस्तकों के साथ साथ अन्य भाषाओं की पुस्तकों की भी जानकारी रहे। हिंदी की उत्कृष्ट पुस्तकों की रोमन लिपि में विस्तृत सूची के प्रकाशन पर बल देते हुए दीनानाथ जी ने कहा कि आज कोई बड़ी सूची उपलब्ध नहीं

है जिससे विदेशों के पाठकों को पुस्तकों के चयन में सहायता मिल सके। उन्होंने यह भी कहा कि जो प्रतिनिधिमंडल विदेशों में भेजा जाय उसके साथ जानेवाली पुस्तकों का चयन बहुत सावधानी से किया जाना चाहिये। उनका सुझाव था कि विदेशों में प्रदर्शनी के साथ-साथ यदि प्रतिनिधिमंडल जाय तो उससे अधिक लाभ होगा। फ्रैंक फर्ट बुक फेयर की पद्धति का अनुकरण करके सभी भारतीय भाषाओं की पुस्तकों की प्रदर्शनी लगायी जाय तो उसके द्वारा कापीराइट का आदान-प्रदान भी किया जा सकता है। एयर इंडिया पुस्तकों के निर्यात पर ५० प्रतिशत की रियायत अपने माल भाड़े में दें।

शिक्षा मंत्रालय के बुक प्रोमोशन आफिसर श्री अबुल हसन ने बायर गाइड और विदेशों के लिए प्रचार सामग्री साहित्य पर बल दिया। उन्होंने कहा कि प्रवासी भारतीय लेखकों की कृतियां भी हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में प्रकाशित की जानी चाहिए ताकि निर्यात को बढ़ावा मिले। श्री अबुल हसन का सुझाव था कि निर्यात करनेवाले प्रसिद्ध व्यापारियों का भी पुस्तक प्रकाशकों को सहारा लेना चाहिए ताकि पुस्तकों के निर्यात में वृद्धि हो। अंत में श्री हसन ने कहा कि विदेशों में बसे हुए प्रवासियों की रुचि का सर्वेक्षण करके तदनुसार पुस्तकों का प्रकाशन यदि किया जाय तो पुस्तकों की खपत काफी संख्या में हो सकती है।

अध्यक्ष पद से बोलते हुए श्री यशपाल जैन ने कहा कि प्रवासी भारतीय हिंदी की पुस्तकों में बहुत ही रुचि रखते हैं। उनके बीच हिंदी की प्रकाशित पुस्तकों का समुचित प्रचार वैज्ञानिक आधार पर किया जाना चाहिये। हिंदी के प्रकाशकों को स्मरण रखना चाहिये कि उनकी पुस्तकों की साज-सज्जा, भीतर का मैटर, बाइंडिंग आवरण आदि उत्कृष्ट कोटि का हो, क्योंकि

विदेशों में उनकी स्पर्द्धा अंग्रेजी, फ्रेंच और जर्मन पुस्तकों से होगी। आज के बदले हुए युग में यदि आप विश्व के बाजार में प्रतियोगिता नहीं कर सकते तो आपको सफलता नहीं मिल सकती। श्री जैन ने प्रवासी भारतीय लेखकों की कृतियाँ भी इस देश में प्रकाशित करने पर बल दिया। उनका ख्याल था कि इससे व्यापार तो बढ़ेगा ही साथ ही सांस्कृतिक क्षेत्र में भी विचारों का आदान-प्रदान हो सकता है।

श्री लक्ष्मी चंद जैन ने अंत में प्रकाशक संघ की ओर से इस गोष्ठी में भाग लेने वालों के प्रति आभार व्यक्त किया और कहा कि इस विषय से संबंधित सभी पहलुओं पर खुल कर विचार-विमर्श किया गया है। अनुभवों के आधार पर उपयोगी निष्कर्ष निकाले गये हैं। इससे आशा है कि सरकार को पुस्तकों की निर्यात-संबंधी नीति निर्धारित करने में और प्रकाशकों को अपनी जिम्मेवारी समझने में सुविधा होगी।

विचार गोष्ठी की संस्तुतियाँ

१. हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य के निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे देशों में राष्ट्रीय व अंतराष्ट्रीय संस्थानों के माध्यम से प्रदर्शनियों का आयोजन किया जाय जहाँ भारतीय मूलक लोग काफी संख्या में बसते हों। फिलहाल यह कार्यक्रम मोरिशस, फिजी, त्रिनिडाड, गुयाना और नेपाल में प्रारंभ होना चाहिये।
२. पुस्तकों के निर्यात को बढ़ावा देने के लिए एयर इंडिया पुस्तकों के वर्तमान भाड़े को आधा करे।
३. अखिल भारतीय हिंदी प्रकाशक संघ के सहयोग से हिंदी पुस्तकों का बाजार खोजने के लिए और उसका सही मूल्यांकन करने के लिए ५ सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल उपरोक्त पाँचों देशों में भेजे जाने चाहिये। प्रतिनिधि मंडल को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह देश के प्रतिनिधि प्रकाशकों के प्रकाशनों के संबंध में पूरी जानकारी रखे।

प्रतिनिधि मंडल को शिक्षा मंत्रालय आवश्यक सभी सुविधाएं प्रदान करे।

४. पुस्तकों के निर्यात के लिए एक एक्सपोर्ट हाउस की स्थापना की जाय जिसे बैंकों द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त हो।

५. रोमन लिपि में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की निर्यात योग्य चुनी हुई पुस्तकों की सूची प्रकाशित की जाय। सूची की तैयारी के लिए विशेष रूप से सावधानी बरती जाय और इस बात का ध्यान रखा जाय कि उसमें प्रतिनिधि साहित्य अंतर्भुक्त हों।

६. विदेश मंत्रालय ऐसे सभी दूतावासों में अच्छे पुस्तकालय स्थापित करे जहां भारतीय अधिक संख्या में रहते हों। इन पुस्तकालयों में हिंदी के प्रमुख प्रकाशन रखे जायं।

७. हिंदी तथा भारतीय भाषाओं की पुस्तकों का निर्यात करने वाले प्रकाशकों की डायरेक्ट्री प्रकाशित की जाय। इसी डायरेक्ट्री का एक अंश और हो जिसमें हिंदी तथा भारतीय पुस्तकों का आयात करने वाले व्यापारियों के नाम व पते हों।

संपादक के नाम पत्र

शब्द कोशों में 'सैनी' शब्द

महोदय;

भूतकाल में राजा, महाराजा, सम्राटों एवं महान आत्माओं द्वारा जाति का रूप बन जाता था। ऐसा पूर्वकाल के इतिहासों में पाया जाता है। हिंदू के विश्वासों के अनुसार संसार में सबसे पहले श्री नारायण जी से ब्रह्मा जी का जन्म हुआ, ब्रह्मा जी के पुत्र का नाम अत्रेय और पौत्र का नाम समुद्र। समुद्र के पौत्र का नाम सोम (चंद्र) था। इन्हीं चंद्र से चंद्रवंश चला। सोम के बाद सातवीं पीढ़ी में ययाति का जन्म हुआ था, जो अपने समय में चक्रवर्ती राजा थे। ययाति के बाद यादव वंश प्रसिद्ध हुआ। जो महाराजा यादव की ४८ वीं पीढ़ी तक चलता रहा। यादव वंशी जाति में बरदत्ता का पुत्र शूर और शूर का पुत्र सैनी हुआ। टाड के ग्रंथ 'राजस्थान' के पृष्ठ १३ में लिखा है कि इन्हीं पिता पुत्र के नाम सैनी जाति प्रसिद्ध हुई। वह महान व्यक्ति जिसके नाम से सैनी जाति अब तक प्रसिद्ध है।

सैनी लोगों के उदय काल के बारे में विचार महाभारत की लड़ाई और सैनी लोगों की उत्पत्ति की तिथि लगभग एक ही मानी जाती है। अधिक संख्या में साहित्यकारों का मत है कि उत्पत्ति की तिथि लगभग ३००० बी० सी० है।

सैनी जाति की जानकारी के लिए निम्नलिखित साहित्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं जिससे बड़े प्रमाणों की जानकारी हो जायेगी।

१–शूर सैन जाति का इतिहास (उर्दू)
२–ओरिजन आफ दी सैनी कास्ट (अंग्रेजी)
३–सैनी क्षत्रिय डायरेक्टरी उत्तर प्रदेश प्रथम भाग (हिंदी)
४–सैनी क्षत्रिय डायरेक्टरी (इतिहास-परिचय)–(हिंदी

इतिहास को देखते हुए सैनी का अर्थ एक जाति है जो क्षत्रिय जाति में प्रमुखता रखती है। अतः निम्नलिखित शब्द कोशों में जो अर्थ गलत किया गया है, उसे सही दरज कराया जाये। (जो पुस्तकें स्टाक में हैं उन पर चिप्पियाँ लगाने का आदेश जारी होना जरूरी है।

१–बृहत हिंदी कोश, ज्ञान मंडल लि०, बनारस–पृ० १५३४।
२–नालंदा अद्यतन हिंदी कोश, आदर्श बुक डिपो ३८ वी० एल० बंगलो रोड, दिल्ली पृ० १००४
३–हिंदी शब्द सागर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० १०३२
४–प्रामाणिक हिंदी कोश, हिंदी साहित्य कुटीर, हाथीगली, बनारस–पृ० ११५३
५–संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी–पृ० १२१०
६–हिंदी राष्ट्रभाषा कोश, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग।

जगदीश सिंह सोलंकी पत्रकार द्वारा श्री मुल्कीराज सैनी (संसद सदस्य) १६३ साउथ एवेन्यू नई दिल्ली।

समीक्षा

समीक्षा के लिये पुस्तक की दो प्रतियाँ भेजना आवश्यक होगा। समीक्षा यथासंभव शीघ्र प्रकाशित की जायगी। यह आवश्यक नहीं होगा कि प्रत्येक प्राप्त पुस्तक की समीक्षा की जाय। प्रत्येक पुस्तक का प्राप्तिस्वीकार पत्रिका में किया जायगा।

सपनों की छाया

(प्रथम संस्करण)

लेखक–राजवंश, प्रकाशक : स्टार पब्लिकेशन, प्राइवेट लिमिटेड ४।५

बी० आसफ अलीरोड, नई दिल्ली–१

मूल्य दो रुपये मात्र।

इधर कुछ वर्षों से हिंदी में पाकेट बुक्स का प्रकाशन काफी जोर पर है। इससे कम से कम इतना तो अवश्य हुआ है कि हिंदी में अनेक नये कहानी तथा उपन्यास लेखक सामने आये हैं। ऐसे लेखकों में कुछ ने काफी ख्याति पा ली है, कुछ पा रहे हैं और कुछ पाने की आशा में लगे हैं। जो ख्याति अर्जित कर चुके हैं, उनका एक पाठक वर्ग भी बन गया है। उन्हें यह भी लाभ हुआ है कि अब कुछ समीक्षकों एवं विचारकों की दृष्टि भी उन पर जाने लगी है। परिणाम स्वरूप गोष्ठियों में तथा पत्र-पत्रिकाओं में उनकी चर्चाएं भी होने लगी हैं।

'सपनों की छाया' के लेखक 'राजवंश' जी के इस उपन्यास को आद्योपाँत पढ़ने पर ऐसा लगा कि लेखक वर्तमान लेखन बोध से अभी उतना परिचित नहीं हैं। कहीं कहीं इस ओर प्रयास करता है किंतु फिर दो-चार पग पीछे हट कर उसी पिटी लीक पर चलने लगता है। उपन्यास या कहानी का जो एक शाश्वत गुण, उसकी रोचकता है, सपनों की छाया में उसका अभाव नहीं है। पढ़ने में मन तो लगता है किंतु लेखक ने किसी ऐसे प्लाट का निर्माण नहीं किया है जो सर्वथा नवीन हो। पुस्तक के आरंभ में विज्ञापन के रूप में पुस्तक का 'क्रीम' प्रस्तुत है जो इस प्रकार है—

'तुम्हे कैसे भूल सकती हूँ श्याम! और फिर मुझे कौन स्वीकार करेगा? तुमने मेरे साथ प्यार का नाटक खेल कर मेरा सब कुछ छीन लिया। मेरी वह संपदा छीन लो जो नारी केवल अपने पति को देती है। अब मेरे पास बचा ही क्या है जो मैं किसी को दे पाऊंगी। और फिर मैं तुम्हारे बच्चे की माँ भी तो बनने वाली हूँ।"

इस टुकड़े में तो कोई खास बात नहीं है। फिर भी प्रयास ठीक है। पुस्तक की छपाई और साज सज्जा अच्छी है।

विजय बलियाटिक

पुष्प गुच्छ

लेखक–रामगती मौर्य

प्रकाशक–अभिनव साहित्य परिषद, उरुवा बाजार गोरखपुर।

मूल्य ३ रुपये ७५ पैसे। पृष्ठ संख्या १५६

आलोच्य पुस्तक कवि की विभिन्न छंदों में की गई अनेक रचनाओं का संग्रह है। कवि पुराने ढर्रे का है, या यों कहिए कि उस पर रीति कालीन कवियों की छाप है। कवि उन पुराने कवियों की कविताओं में खूब रमा है। रसों और छंदों का बोध भी उसे खूब है। यही कारण है कि उसके कई छंद भाषा और भाव दोनों की दृष्टि से काफी सुंदर बन पड़े हैं। उदाहरण के लिये ये छंद देखें--

परसों पियारी आय, परस्यो हमारो पाँय,
बिनय उचारयो अति, तऊ नहिं कान की।
कीनो ना विचार नेक, दीनो झिझकार पिय,
आये उठि द्वार, बाजी लगी अब प्रान की॥
तब से विकल कल पलहूँ न 'रामगती'
तापर अधीर करै पीर मैन बान की।
अब पछितात, भूख प्यास ना सुहाति आली,
रहि रहि सालै री निगोरी बात मान की॥

× × ×

रूसिबो हौं के तो चहौं गहौं के तो मौन मन,
तऊ मुख देखे, मुख चाहे मुसकान को।
करौं बंक केती भौंह, देखिहौं न सौंह करौं
तऊ दृग देखो चहैं, रूप के निधान को॥
केतो हूँ कठोर करौं, हियो जो बटोरि राखौं
तऊ सुधि आये अँग चाहैं पुलकान को।
'रामगती' वाकी गति देखि कै परात पीर,
कैसे हौं निबाहौं बीर स्याम संग मान को॥

अब काव्य क्षेत्र में ब्रजभाषा का चलन नहीं रहा। इस भाषा ने अपना एक गौरव मय समय देखा है। हिंदी साहित्य में उसे शिखर स्थान प्राप्त है। एक जमाना था जब ब्रजभाषा में ही कविताएं लिखी जाती थीं। अब वह बात तो नहीं रही किंतु इतना अवश्य है कि आज भी उसके प्रेमी जन हैं और उस भाषा में अच्छी अच्छी रचनाएँ हो रही हैं। आलोच्य पुस्तक के कवि का नाम भी ऐसे ही कवियों में लिया जायगा। पुस्तक को आद्योपांत पढ़ने पर मन प्रसन्न हो जाता है, चित्त कविताओं में रम जाता है। क्यों न रमे, उसमें शाश्वत रस की धारा जो बही है। इसलिये कवि बधाई का पात्र है। पुस्तक की छपाई आदि साधारण है। पुस्तक में प्रूफ संबंधी अशुद्धियाँ चावल में कंकड़ी की भाँति खटक जाती है।

--चंद्रशेखर मिश्र

परंपरा

लेखक-श्री गुरुदत्त; प्रकाशक-सुरुचि प्रकाशन, १८।२८, पंजाबी बाग, नई दिल्ली-२६ द्वारा स्टार पब्लिकेशन, पृ० २२० (पाकेट बुक)
मू० १·००।

राजनीति और समाज के आधुनिक परिवेश को दृष्टि में रखते हुए लेखक ने इस उपन्यास में रामकथा को नया कलेवर प्रदान किया है। यह कथा आज के बुद्धिवादी जनों के लिये भी ग्राह्य होगी। महाकवि हरिऔध ने जिस प्रकार प्रिय-प्रवास में कृष्ण को सामान्य मानव के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है, उसी प्रकार का प्रयास श्री गुरुदत्त भी उपन्यासों द्वारा कर रहे हैं। पौराणिकता के आवरण से मुक्त करके इन्होंने कृष्ण और राम के चरित्रों को सामान्य मानव धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है, किंतु इन चरित्रों की अनुकरणीयता और उज्ज्वलता

में किसी प्रकार की विकृति नहीं आने पाई है और न इनके पढ़ने से किसी प्रकार का विकर्षण ही पाठक के मन में आता है। यही श्री गुरुदत्त की सफलता का द्योतक है।

भाषागत दोष गुरुदत्त जी की रचनाओं में शुरू से रहे हैं और आज भी हैं, इन्हें दूर करने का प्रयास किया गया होता तो अच्छा था। मुद्रण, कागज और मुखपृष्ठ आकर्षक हैं।

पं० लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी

छोटी बहू

ले०—रोशनलाल सुरीरवाला
प्र०—नवमान प्रकाशन, अलीगढ़, मूल्य २.५०

तरुण पीढ़ी के लेखक श्री रोशनलाल सुरीरवाला लिखित 'छोटी बहू' प्रेमचंद युगीन शैली का सामाजिक-पारिवारिक उपन्यास है। लेखक ने अनेक सामाजिक समस्याओं, मुख्य रूप से प्रणय और विवाह की समस्या को उठाया है। एतदर्थ उसने अनेक प्रेमी युग्मों रेखा-राजेंद्र, सतिया-नरैना, शिबू लक्ष्मी, रेणु-नरेंद्र, रानी राजेंद्र की सृष्टि की है। उसका दृष्टिकोण परंपरावादी और सुधारवादी है। उसके अनुसार ग्रामीण भोले परिवारों में दांपत्य जीवन सुखी और शांत है, जब कि नई सभ्यता से प्रभावित आधुनिक परिवारों में दिखवा, फैशन और बनावटी प्रेम का ही बाहुल्य है। राजेंद्र रामेश्वरी आदर्श दंपत्ति है, जो अपने उदार मानवतावादी व्यवहार से भूले भटके लोगों का मार्गदर्शन करते हैं। लेखक ने विवाह से संबद्ध दहेज प्रथा और वेश्या समस्या को भी उठाया है। लक्ष्मी जैसी वेश्या सच्चा प्रेम और सामाजिक सौहार्द प्राप्त होने पर सुधर सकती है। सुंदर चाची एक ऐसी पात्रा है, जो हर परिवार में नहीं तो हर गाँव में पाई जाती है, जिसे पारिवारिक कलह बढ़ाने में ही आनंद की उपलब्धि होती है।

लेखक की भाषा परिमार्जित और संस्कार संपन्न है। यत्र तत्र आंचलिकता का प्रभाव आ

गया है। लेखक ने सूत्र वाक्यों का सुंदर प्रयोग किया है जैसे 'हिंदुस्तान में मनपसंद नौकरी और मनचाही पत्नी नहीं मिला करती', (पृष्ठ २५) 'अत्यधिक भीड़ और एकांत में विशेष अंतर नहीं होता', (पृ० २८), 'स्त्री ही घर को बर्बादी की ओर ले जाती है, स्त्री ही घर को निर्माण की ओर ले जाती है' (पृ० १०७)।

आपसे अभी और अच्छे उपन्यासों की आशा है।

शिक्षा और शिक्षण--प्रो० पी० लक्ष्मिक्कुट्टि अम्मा, प्रकाशक—केरल हिंदी साहित्य मंडल कोचिन-२५

मूल्य-८. ००

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद केंद्रीय सरकार के शिक्षा विभाग ने हिंदी अध्यापकों के परिशीलन और अभ्यास के लिए प्रशिक्षण महाविद्यालयों की स्थापना का निश्चय किया। इस योजना के अंतर्गत केरल के त्रिचूर नगर के राम वर्मपुरम् नामक शिक्षाकेंद्र में प्रथम हिंदी शिक्षण महा-विद्यालय की स्थापना हुई। इस संस्था के तत्वाव-धान में भारतीय दर्शन और संस्कृति के आधार पर शैक्षणिक सिद्धांतों का महत्व स्पष्ट करने के लिए अनेक ग्रंथों की रचना हुई। प्रस्तुत ग्रंथ इस योजना की महत्वपूर्ण कड़ी है।

प्रस्तुत ग्रंथ दो खंडों में विभक्त है। प्रथम खंड 'शिक्षा' से संबद्ध है। इसके अंतर्गत शिक्षा की परिभाषा, शिक्षा के रूप, उद्देश्य, शिक्षा संबंधी भारतीय दृष्टिकोण, लोकतंत्र और शिक्षा आदि की विवेचना की गई है। दूसरे खंड में 'शिक्षण' व्यवस्था पर विचार किया गया है। इसमें शिक्षण के स्वरूप, सिद्धांत, पाठ योजना, आधुनिक शिक्षा की नई प्रवृत्तियों, बुनियादी शिक्षा, गुरुकुल शिक्षा आदि पर चिंतन किया गया है। इस कृति में जीवन का संपूर्ण विकास करने वाली और भारतीय संस्कृति एवं मानव धर्म को

प्रकाशित करनेवाली शिक्षा के आदर्शों को शुद्ध भारतीय वातावरण में नवीन परिस्थितियों के अनुरूप कार्यान्वित करने का मार्ग बताया गया है।' आशा है प्रस्तुत रचना अध्यापकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

डा० वासुदेव सिंह

किनारे किनारे

(उपन्यास), लेखक—समीर,
प्रकाशक—स्टार पब्लिकेशंज, (प्रा०) लि०,
४।५ बी० आसफ अली रोड, नई दिल्ली—१
संस्करण प्रथम, पृ० सं० १२१, मूल्य २,०० रुपये।

रहस्य, रोमांच, डकैती, प्रेम, हिप्नोटिज्म, सी० आई० डी०, काला और भयानक झबरे बालों वाला कुत्ता, भूत प्रेत भूतों की हवेली सभी कुछ मिलेंगे आपको इस उपन्यास में। ठीक वैसे ही हां जैसे आधुनिक फिल्मों में कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा जोड़जाड़ कर भानमती का सुंदर सा कुनबा तैयार कर दिया जाता है। थोड़ा हास्य का पुट चाहिये तो वह भी तैयार, पिस्तौलबाजी, सीढ़ी और लिफ्ट की भाग दौड़, कारों की दौड़ क्या कुछ नहीं मिलेगा पाठक को। अमेरिका रिटर्न विनोद और सरिता की पहली भेंट, एयर पोर्ट की शुरुआत, रोशन का एक प्रेम की असफलता पर दूसरे से समझौता जैसे कोई फिल्म की कहानी चल रही हो। फर्क यही है कि जितना देर फिल्म पर्दे पर दिखाई जाती है किताब उससे पहले ही यानी उससे कम समय में ही खत्म हो जाती है। अब छोटी फिल्मों का युग भी है। आधुनिक रहस्य रोमांच से भरपूर फिल्मों की तरह इसमें सब कुछ है—फिर भी इसकी भाषा प्रवहमान सरिता की तरह रुकावट रहित है। गलतियां हैं प्रूफ की पर कम ही। सीता और सोमनाथ का प्रेमभाव, देवेंद्र, प्रदीप की रहस्यमय चर्चा और दलील, वर्मा की चालबाजी आकर्षक है जिसका रहस्य भेदन विनोद द्वारा होता है। हिप्नोटाइज्ड सीता के ऊपर पिस्तौल की गोली का बेकार जाना आश्चर्यजनक है। पुस्तक रोचक है और समय काटने के लिये दिलचस्प-फिल्म से अधिक दिलचस्प क्योंकि इसमें आर्केस्ट्रा की कर्णभेदक चिल्लाहट कान के पर्दे नहीं फाड़ पाती। पाकेट बुक के महत्व को देखते हुए यह एक औसत दर्जे की पाकेट बुक कही जा सकती है।

प्यासी नदिया

(उपन्यास), लेखक—लोकदर्शी
प्रकाशक—स्टार पब्लिकेशंज
(प्रा०) लि०, ४।५ बी० आसफ अली रोड,
नई दिल्ली—१, पृ० सं०—१२४, मूल्य २.०० रुपए

लोकदर्शी का यह एक सामाजिक उपन्यास है जो समाज की बुराइयों को आधुनिक सामाजिक परिवेश के साथ उपस्थित करता है और उनके दूरीकरण की ओर इंगित करता है। वैसे इसकी कहानी पाकिस्तान विभाजन के बाद की कहानी है जब पलक झपकते पहले का करोड़पति राह का भिखारी हो जाता है। धन की लिप्सा कितनी भयावनी हो सकती हैं और उसकी अंतिम परिणति कैसी होती है इसका आभास इस उपन्यास में सोनिया, जो एक अभिनेत्री थी, की माँ के चरित्र से देखा जा सकता है। इसमें एक ओर बाहर से क्रूर पर भीतर से उतना ही कोमल पशु दूसरी ओर मंगल. नगरपालिका का बार-बार सदस्य चुना जानेवाला सेठ ज्वालाप्रसाद और उसका पालित पुत्र, मोती भी है। अमीरी से गरीबी को भागने वाला हीरालाल भाग्य से फिर लाटरी से अब धनी बन जाता है—अपने बेटे अजय को काम करने के लिये प्रेरित करता है—और अपनी पत्नी और बेटे की अकर्मण्यता पर क्रुद्ध हो उन्हें निकाल बाहर करता है—परउनकी बराबर खोज खबर प्रच्छन्न रूप से रखता है। सोनिया का उद्बोधन और निर्देशन, अपढ़ गरीबों के सामाजिक कायापलट का फिल्मी रूप प्रस्तुत करता है। इसमें भी सोनिया का पिता जासूस है स्मगलर मोती, मंगल और ज्वालाप्रसाद तथा सबकी सरदार सोनिया की माँ भी है। धनवान की दुलारी बेटी रेखा और मोती का संबंध तथा उसकी परिणति थोड़ी बहुत हेर फेर के साथ आज की सामाजिक फिल्मों मे देखी जा सकती है फिल्मी कहानियों की तरह इसकी कहानी है रंगदार और समाप्ति भी। वैसे लेखक जिस सामाजिक परिवेश और सुधार की भावना के प्रदर्शन को लेकर चला है अपने संवादों और घटनाओं के साथ वह सफल है।

—'विश्वनाथ'

फिर भी—हिंदी चित्रपट की एक अनोखी भेंट

पिछले कुछ वर्षों से नये चलचित्रों के ज्वार ने निश्चल भारतीय सिने-जगत में उथल पुथल मचा दिया है। बनावटी बंधनों के अंकुश में जकड़े हुए हमारे सिनेमा-साधन और कलाकारों की योग्यता समर्थ निर्देशकों के मार्ग दर्शन में वास्तविकता और आधुनिकीकरण की ओर आकृष्ट हुए हैं। शिवेंद्र सिन्हा की प्रथम सिने-रचना 'फिर भी' इसी रूप छटा का ही एक नया पहलू है।

एक लंबे अरसे से चित्रपट पर हिंदुस्तानी के व्यापक प्रयोग ने हिंदी और हिंदुस्तानी के मध्य की विभाजन रेखा को धुँधला बना दिया था। 'चित्र लेखा' और 'जोगन' जैसी सिनेकृतियों के समान 'फिर भी' में भी हिंदी साधारण वार्तालाप का माध्यम है।

निचट निचुड़ और निरोधक जैसे शब्दों से हिंदी के लेखक या विद्यार्थी तो शायद ही अनभिज्ञ होंगे। परंतु चित्रपट पर इनको प्रचलित कर सर्व मान्य बनाने का ध्येय कम देखने को मिलता है। उदाहरण हेतु एक कलाकार के आत्मबोध का यह वर्णन है।

"लगता है किसी भी गहरे आध्यात्मिक बोध के लिए एक बार बाहरी जगत का सब कुछ खोना पड़ता है। और तब उस महा शून्य से जैसे एक मौन ध्वनि आकर कहती है कि हम अकेले असहाय अस्तित्वहीन नहीं बल्कि विशाल अनंत के ही एक अंश हैं। और जो कुछ है, जैसे भी है उसका कहीं न कहीं कोई अर्थ है"। यदि हिंदी को सही में हमें अपनी बोलचाल की भाषा बनाना है

...का प्रचार बहुत कुछ इसी रूप में करना होगा।

इस चल चित्र की शैली से यह विदित है कि शिवेंद्र सिन्हा को बम्बई सिनेमा के "बाक्स आफिस फार्मूले" में कोई आस्था नहीं है। अभिनय और निर्देशन में इन्होंने सदैव पतनोन्मुख प्रवृत्तियों का विरोध किया है। दिल्ली टी० बी०.से इनका त्याग पत्र देने का कारण यही था कि कला के क्षेत्र में इनको सरकारी हस्तक्षेप मान्य न था। तब से इनकी योग्यता फ्रांस और इंग्लैंड की नाट्यशालाओं और टी० बी० पर कई बार सफलतापूर्वक परखी जा चुकी है। १९६९ में जब शिवेंद्र स्वदेश लौटे तो उनके सामने अम्रिता शैरगिल की भाँति ही एक आदर्श था।

"मैं भारत की जनता और संस्कृति को समझना चाहता हूँ, दर्शाना चाहता हूँ और जहाँ तक सम्भव हो बदलना चाहता हूँ।"

'फिर भी' उनके जाने पहचाने शहरी मध्य वर्ग के एक हिंदू परिवार की कहानी है। बंबई जैसे 'आजाद' शहर में भी परंपरागत, पिछड़े हुए सामाजिक संबंध स्त्रियों को पुरुषों की भांति ही स्वतंत्र और स्वावलंबी जीवन व्यतीत करने से किस प्रकार रोकते हैं, यही कमलेश्वर की इस कहानी का तत्व है। उच्छृंखलता से परे प्रेम-शारीरिक प्रेम में कोई दोष नहीं बल्कि आवश्यक, गरिमापूर्ण और शांतिप्रद है—यही "फिर भी" का संदेश है।

भारतीय सिनेमा की प्रविधियों को पाश्चात्य देशों के उच्च स्तर के समीप लाने में भी 'फिर भी' का निश्चित योगदान है।

यह कहना तो अतिशयोक्ति होगी कि इस चलचित्र में सुधार के लिए स्थान ही नहीं है। शिवेंद्र सिन्हा की रचना शैली सत्यजित राय की स्वाभाविकता और सरलता से बहुत दूर है। परंतु यह निश्चित है कि "फिर भी" हिंदी चित्रपट पर एक नया बिंदु है।

—श्री प्रकाश

नाटक का शास्त्रीय स्वरूप

[लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी']

मानव शैशवावस्था से ही अनुकृति का प्रेमी होता है। बच्चे अनुकरण के द्वारा अपने जीवन को एक विशेष आदर्श में ढालते हैं। किसी की मुद्राविशेष का अनुकरण उन्हें अतिशय प्रफुल्ल बना देता है। कोकिल, मुर्गे, कुत्ते, बिल्ली, मोर, शेर आदि पशु-पक्षियों की बोलियों का अनुकरण करके और उन्हें दूसरों को सुनाकर अनुकारी को विशेष आनंद मिलता है। इस अनुकृति में जितनी ही वास्तविकता होती है, श्रोता के आनंद की मात्रा भी उतनी ही अधिक हो जाती है। मनुष्य की अनुकरण-प्रियता क्रमशः इतनी बढ़ गई कि वह न केवल वर्तमान सहज उपलब्ध दृश्यों और श्रव्यों तक ही संतुष्ट रहा, अपितु उसने अतीत का भी साक्षात्कार इसी अनुकृति के द्वारा कराने के लिए आगे डग बढ़ाए। मानव के इसी सुंदर प्रयास का फल नाटक है। इसी अनुकृति-विकास को दृष्टि में रख कर धनंजय ने कहा—

> अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते।
> रूपकं तत्समारोपाद्दशधैव रसाश्रयम्॥
>
> —दशरूपक १।७

नाटक वा रूपक में जितनी यथार्थता एवं स्वाभाविकता का ग्रहण होगा उतनी ही वह कृति सफल कही जायगी। दर्शक अपने स्थान पर बैठा यह भूल जाय कि वह नाटक देख रहा है। उसे ऐसा प्रतीत होना चाहिए कि वह नाटकस्थ मूल घटना का अवलोकन कर रहा है। अतः नाटककार को अत्यंत सावधानी से लेखनी चलानी होती है। नाटककार चारों ओर से बद्ध होता है, उसके स्वकीय व्यक्तित्व को सिर उठाने का कहीं अवकाश ही नहीं मिलता। नाटक में अपने व्यक्तित्व या स्वकीय रुचिविशेष का प्रदर्शन करने वाला नाटककार सदा ही असफल सिद्ध होता है। उसे जो कुछ भी कहलाना होता है, पात्रों के ही द्वारा और उन्हीं की वाणी में। अतः जिस नाटक में लेखक का व्यक्तित्व सर्वथा तिरोहित होगा, नाटक उतना ही श्रेष्ठ कहा जायगा। नाटक में सहजता वा स्वाभाविकता के रक्षण को ही दृष्टि में रख कर लक्षण ग्रंथकार आचार्यों ने पात्रों के प्रकृति-भेद के अनुसार उनके लक्षण निश्चित कर दिए थे, देशानुसार उनकी भाषा का स्वरूप भी समझाया था और अस्वाभाविकता लानेवाले दृश्यों का भी वर्जन किया था। भारत हो अथवा अन्य कोई देश, सर्वत्र कुशल नाटककार स्वाभाविकता के रक्षण में प्रवृत्त दिखाई पड़ेंगे। देश-कालानुसार पुरानी परिपाटी के परिवर्तन के साथ साथ स्वकालीन परिवर्तित समाज को दृष्टि में रख कर नाटककार अपनी कृति में स्वाभाविकता लाने का प्रयास करते हैं, इसलिए उन्हें प्राचीन आदर्शों को भुलाना पड़ता है। देशविशेष की संस्कृति, पात्र के सामाजिक स्तर, रहन-सहन-तदनुसार भाषा का स्वरूप और परिस्थिति-विशेष के अनुरूप उसके भावोद्गार तथा इतिवृत्त के सहज निर्वाह का अतीव गुरुतर दायित्व नाटककार को वहन करना पड़ता है। नेता और अन्य पात्रों के चरित्र का स्वाभाविक निर्वाह कथावस्तु वा वृत्त को प्रभविष्णु बनाते हैं, तथा पात्र चरित्र और वृत्त का सहज निर्वाह नाटक में रस-सृष्टि

करता है। इसी लिए नाटक के प्रमुख तत्व तीन माने गए हैं :

(१) नेता,
(२) वृत्त और
(३) रस

इन तीन तत्वों का प्रामुख्य अवश्य होता है, किन्तु इन्हीं तत्वों को देख कर किसी रचना को नाटक नहीं कहा जा सकता। नाटक का मुख्य गुण 'अवस्थानुकृति' है। उपर्युक्त तीनों तत्व तो श्रव्य काव्य में भी होते हैं, किंतु दृश्य काव्य में प्रत्यक्षानुभूति का होना आवश्यक है। अर्थात् गृहीत इतिवृत्त में आए पात्रों के कार्यों की अनुकृति अभिनेता करते हैं और वे अतीत की घटनाओं को अपनी अनुकृति या अभिनय द्वारा दर्शकों को प्रत्यक्ष कर दिखाते हैं। इस प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा दर्शकों को प्रत्यक्ष रसानुभूति होती है। यह रसानुभूति किसे होती है, इसी विषय पर आचार्य भट्ट लोल्लट, भट्ट शंकुक, भट्टनायक और अभिनवगुप्त ने अपने पृथक् पृथक् मत व्यक्त किए हैं। अभिनवभारती में आचार्य अभिनव गुप्त ने अपने पूर्ववर्ती तीनों आचार्यों के मतों का उल्लेख और उनका खंडन करते हुए अपने 'अभिव्यक्तिवाद' का प्रतिपादन किया है।[1] उन्होंने बड़ी विद्वत्ता के साथ तर्कमयी शैली में यह बताया है कि रसाभिव्यक्ति वस्तुतः दर्शक के हृदय में होती है, रसानुभूति न इतिवृत्तगत रामादि पात्रों में होती है और न उनके अनुकारी अभिनेताओं में।

प्रत्यक्षानुभूति के ही कारण दृश्य काव्य में श्रव्य काव्य से रमणीयता की मात्रा अधिक मानी गई। यथा—

'काव्येषु नाटकं रम्यम्।'

अब हमें नाटक-रचना के प्राचीन और अर्वाचीन विधान पर थोड़ा विचार कर लेना होगा। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, नाटक की सार्थकता पूर्णतया यथार्थता के प्रत्यक्षीकरण में

है। दर्शक को कहीं भी ऐसा आभासित नहीं होना चाहिए कि अमुक दृश्य किंवा अमुक स्थल पर लेखक ने कृत्रिमता ला दी है। अतः नाटककार का सर्वात्मना यह यत्न होना चाहिए कि किसी भी स्थल पर अयथार्थता का प्रवेश न हो जाय। इस दोष को दूर करने के लिए ही नाटक के अर्वाचीन विधान में प्राचीन विधान की बहुत सी बातें हटा देनी पड़ी हैं। यह यथार्थता इतिवृत्त अंक-विभाग, दृश्य-रचना, कथोपकथन, पात्रानुकूल भाषा-प्रयोग, गीति-विधान, चरित्र-चित्रण आदि में सर्वत्र व्याप्त होनी चाहिए। इस दृष्टि से हमें दोनों विधानों से पूर्णतया अवगत होना चाहिए।

नाटक का प्राचीन रचनाविधान

भारतीय साहित्यशास्त्र में नाटकरचना का पूर्ण, व्यापक और सुस्थिर विधान है। साहित्यशास्त्र पर उपलब्ध प्रथम ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' तो नाटक के ही रचनाविधान पर निर्मित है। उस ग्रंथ की महनीयता से स्वतः स्पष्ट है कि भारतीय विद्वान् साहित्य-क्षेत्र में नाटक को कितना महत्वपूर्ण स्थान देते थे। नाटक के अंग प्रत्यंग पर जो ठोस एवं विवृत विमर्श हमारे प्राचीन आचार्यों ने प्रस्तुत किया है उसे देख कर आश्चर्य होता है। नाट्य, रूप, रूपकादि दश भेद, नृत्य, वस्तु, अवस्था, संधि, प्रयोजन, विष्कंभ, अंक, नायक, नायिका, रस, भाव, भाषा आदि के भेदोपभेद और सब के लक्षण जिस तत्परता और विचार-

गांभीर्य के साथ लिखे गए हैं, वह पश्चिमी आलोचना-क्षेत्र में दुर्लभ है। हम नाटक के भारतीय रचना-विधान क कुछ प्रमुख बातों को देकर उसकी सामान्य रूप-रेखा प्रस्तुत करने का यत्न करेंगे।

नांदी पाठ

जिस प्रकार प्रत्येक कार्य आरंभ करने के पूर्व मंगलाचरण को स्थान देना भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है, उसी प्रकार नाटक के आरंभ में भी मंगलाचरण के रूप में नांदी पाठ अनिवार्य माना गया है। इसीलिए हमें संस्कृत और प्राकृत के प्रत्येक नाटक में नांदीपाठ किसी न किसी रूप में अवश्य मिलता है। इस परंपरा के उल्लंघन का साहस किसी भी नाटककार ने नहीं किया है।

रूपक तथा उपरूपक

ऐसी किसी भी कृति को, जिसमें अभिनय की प्रधानता हो और जिसमें वस्तुगत पात्रों का अभिनेता पात्रों पर आरोप किया जाय, रूपक कहा गया और अपेक्षाकृत साधारण कृतियों को उपरूपक। इनके भेदोपभेदों पर विचार करने पर हमें प्राचीनों के चिंतन की अथाह गंभीरता का पता मिलता है। नाट्यशास्त्र और दशरूपक ने तो रूपक के दस भेद ही कहे हैं,[१] किंतु नाट्यदर्पण में भेदों की संख्या बारह हो गई है।[२] इसी प्रकार नृत्य के सात भेद बताए गए हैं, जो भाण के ही समान होते हैं:-

---

१-नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यंकेहामृगा इति ॥
दशरूपक, १।८॥

२-नाटकम्प्रकरणंच नाटिका प्रकरण्यथ।
व्यायोगः समवकारः भाणः प्रहसनं डिमः ॥
अंक ईहामृगो वीथी ... ... ।
नाट्यदर्पण, १।३, ४॥

डोंबी श्रीगदितं भाणो भाणीप्रस्थानरासकाः।
काव्यं च सप्त नृत्यस्य भेदाः स्युस्तेऽपि भाणवत्॥

नाट्य रसाश्रयी और नृत्य भावाश्रयी होतेहैं। रूपक में नाटक और प्रकरण का प्रधान होता है। दोनों में अंतर इतना ही है कि नाटक में आख्यात वृत्त गृहीत होता है और प्रकरण में कल्पित या उत्पाद्य। भाण, प्रहसन, डिम आदि सामान्य रूपक होते हैं। जिस नाटक में स्त्री-प्राधान्य हो उसे नाटिका कहा गया है।

नाटक का स्वरूप

संस्कृत-साहित्य के प्रमुख लक्षणग्रंथों में रूपक और उपरूपक के विविध भेद और उनके लक्षण सविस्तार बताए गए हैं। इनमें नाटक का ही स्थान प्रमुख है। प्राच्य आचार्यों द्वारा प्रतिष्ठित नाटक लक्षण का संक्षिप्त रूप में उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है। नाट्यशास्त्र के पश्चात् संस्कृत साहित्य में दशरूपक और नाट्यदर्पण ये दो प्रमुख लक्षण ग्रंथ हैं, जिनमें बड़े विशद रूप में नाट्य साहित्य पर विचार किया गया है, क्योंकि ये ग्रंथ विशुद्ध नाटक संबंधी ही हैं। साहित्यदर्पण आदि ग्रंथों में संक्षिप्त रूप में नाट्यशास्त्र का परिचय प्रस्तुत कर दिया गया है, जिसे हम काम चलाऊ कह सकते हैं, अस्तु, नाटक के प्रमुख तत्वों का उल्लेख किया जा रहा है।

नाटक या लक्षण[१]

१--ख्यात राजचरित-अतीत काल के किसी ख्यात राजा का चरित्र ग्रहण करना चाहिए। चरित या वृत्त दो होते हैं, आधिकारिक या प्रधान और प्रासंगिक या गौण।

२--फल-धर्म, कर्म और काम की प्राप्ति होनी चाहिए।

३-अंक-नाटक अंकों में विभक्त होना चाहिए। नाटक में कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस अंक होने चाहिए।[२] एक अंक में एक दिन का ही चरित आना चाहिए, उसमें एक ही प्रयोजन होना चाहिए। एक अंक में तीन या चार पात्र होने चाहिए। अंक के अंत में उन पात्रों का निर्गम अवश्य होना चाहिए। अंक के अंत में 'बिंदु' की योजना होनी चाहिए, जिससे आगे आनेवाले वृत्त से संबंध जुड़ा रहे। प्रधान नेता का अभिघात, उसका बंदी होना, उसका

१--ख्याताद्य राजचरितं, धर्मकामार्थ सत्फलम्।
सांगोपाय-दशा-सन्धि, दिव्यांगं तत्र नाटकम्॥
नाट्यदर्पण,
नाटकनिर्णय, १॥५॥
अभिगम्यगुणैर्युक्तो धीरोदात्तः प्रतापवान्!
कीर्तिकामो महोत्साहस्त्रय्यास्त्राता महीपतिः॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्दिव्यो वा यत्र नायकः।
तत्प्रख्यातं विधातव्यं वृत्तमत्राधिकारिकम्॥
यत्रानुचितं किंचिन्नायकस्य रसस्य वा।
विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत्।
आत्मन्येवं विनिश्चित्य पंचधा तद्विभजय च।
दशरूपक, ३।२२,२३,२४,२५॥

२. अवस्थाया: समाप्तिर्वा, छेदो वा कार्ययोगतः
अंकः सबिन्दुर्दृश्यार्थः चतुर्यामो मुहूर्ततः॥
आवश्यकाविरोध्यार्थः स्वल्पपात्रः सनिर्गमः।
पंच संख्या प्रकर्षेण दशसंख्यः प्रकर्षतः॥
नाट्य दर्पण, १।१९,२०

पलायित होना, आदि नहीं दिखाना चाहिए। यदि ये कार्य दिखाने ही हों, तो परिणाम के विशिष्ट फल को ध्यान में रखकर ही ऐसा करे। एक अंक का अभिनय एक घड़ी से दो घड़ी अर्थात् कम से कम २५ मिनट और अधिक से अधिक ४८ मिनट में समाप्त हो जाना चाहिए। नाट्य दर्पण कहता है--

'अंक सबिन्दुर्दृश्यार्थं, चतुर्यामो मुहूर्त्ततः ॥'

ना० द० १।१९॥

४-वृत्त या नाट्य वस्तु--नाटक का वृत्त गाय की पूँछ के बालोंवाले भाग के समान चढ़ाव-उतार वाला होना चाहिए। रामचंद्र और गुणचंद्र कहते हैं--

'गोपुच्छ-केश-कल्पानि, नाट्यवस्तूनि कल्पयेत् ॥'

--ना० द०, १।१७॥

५-रस--भारतीय नाट्यविधान में रस को सर्वोपरि मान्यता दी गई है। नीरसता को उसमें कहीं भी स्थान नहीं है। नाटक का प्रधान धर्म उसकी रंजकता है, उसका कहीं भी तिरोधान हमारे आचार्यों को दृष्टि में क्षम्य नहीं। इसलिये अंक की व्यवस्था करते हुए कहा गया--

अंको नानाप्रकारार्थसंविधानरसाश्रयः।
अनुभावविभावाभ्यां स्थायिना व्यभिचारिभिः ॥
गृहीतमुक्तैः कर्तव्यमंगिनः परिपोषणम् ॥

न चातिरसतो वस्तु दूरं विच्छिन्नतां नयेत्।
रसं वा न तिरोदध्याद्वस्त्वलंकारलक्षणैः ॥

--दशरूपक, ३।३१,३२,३३

अंक से रस को स्थान मिलना अनिवार्य है। अनुभाव, विभाव, स्थायी भाव और संचरियों द्वारा रस का परिपोषण होना ही चाहिए। अत्यंत रसवत्ता से वस्तु दूर न जाने पाए, इसका सदा ध्यान रखना चाहिए। और वस्तु, अलंकारों तथा लक्षणों के झुरमुट में रस कहीं तिरोहित न हो जाय, नाटककार को इसके लिये निरंतर सावधान रहना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह कि नाटक का प्राण रस ही है।

एक रस का प्राधान्य

नाटक में एक रस मुख्य तथा शेष सभी गौण

रूप में गृहीत होने चाहिए। नाटक में श्रृंगार और वीर इन दो रसों में किसी भी एक का ग्रहण मुख्यतया होना चाहिए। निर्वहण संधि के स्थान में अद्भुत रस की योजना होनी चाहिए।[१]

नाट्य रस के विरोधी दृश्य.

प्राच्य आचार्यों ने भारतीय संस्कृति, मर्यादा, परंपरा और सुरुचि के अनुसार कुछ दृश्यों को वर्जित कर दिया है, उन्हें रंगमंच पर उपस्थित न करने का आदेश दिया है। ये दृश्य ऐसे हैं जिनसे रसाभास उत्पन्न होता है और जिनसे सुरुचिपूर्ण सभ्यों के हृदय में विरसता का संचार होता है। ये वर्जित दृश्य ये हैं[२]—

दूर की यात्रा, युद्ध, राज्यक्रांति, देशक्रांति, नगररोध, भोजन, स्नान, रति क्रिया, अनुलेपन, वस्त्र ग्रहण आदि को रंगमंच पर नहीं दिखाना चाहिए। यदि इनका उल्लेख आवश्यक हो तो विष्कंभ, प्रवेशक, चूलिका आदि द्वारा इनका वर्णन किया जा सकता है। इन दृश्यों को वर्ज्य घोषित करने के अनेक कारण हैं, जिनमें भारतीय संस्कृति और मर्यादा के अतिरिक्त इनके प्रस्तुत करने का काठिन्य और असंभवता भी है। दूर यात्रा, हत्या, हाथ पैर काटना, नगररोध, विप्लव, स्नान आदि का विरोध इसी कारण किया गया है।

---

१. एको रसोऽङ्गीकर्तव्यो वीरः श्रृंगार एव वा।
अंगभूता रसाः सर्वे कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम्।
—द० रू०, ३।३३, ३४

२. दूराध्वानं वधो युद्धं राज्यदेशादिविप्लवम्।
संरोधं भोजनं स्नानं सुरतं चानुलेपनम्।
अम्बरग्रहणादीनि प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत्।
—द० रू०, ३,३४, ३५।

दूराध्वयानं पूरोधः, राज्यदेशादिविप्लवः।
रतं मृत्युः समीकादि, वर्ण्यं विष्कम्भकादिभिः
ना० द०, १।२२

अभिनय शीलता

भाषा विषयक विचार

हमारे प्राच्य आचार्यों ने पात्रानुकूल स्वाभाविक भाषा का विधान भी मनोयोगपूर्वक गंभीरता से विचार करके किया है। साधारण कोटि के नाटककार अपनी व्यक्तिगत भाषा का ही प्रयोग नाटक में आद्यंत करते हैं, उन्हें इस बात का ध्यान ही नहीं रहता कि किस पात्र के लिये कैसी भाषा का विधान होना चाहिए। वे विद्वान् के द्वारा जिस भाषा का प्रयोग कराते हैं वही भाषा उनके नाटक का साधारण सेवक भी बोलता दिखाई पड़ता है। इस पद्धति के अपनाने से यथार्थता या स्वाभाविकता का रक्षण नहीं होता। नाटककार को इस विषय में भी सावधान रहना चाहिए कि पात्र समाज के जिस स्तर का व्यक्ति हो, उसके मुँह से उसकी ही सहज भाषा का प्रयोग हो। जिस काल का ऐतिहासिक वृत्त गृहीत हो, उस काल का प्रत्यक्षीकरण कराने के लिये तदनुकूल भाषा ही गृहीत होनी चाहिए। जिस प्रकार ऐतिहासिक पात्रों की वेशभूषा का ध्यान कालानुसार रखा जाता है, उसी प्रकार भाषा का भी रक्षण होना चाहिए। यदि हिंदू काल का इतिवृत्त प्रस्तुत किया जाता है तो भाषा संस्कृत तत्सम शब्द प्रधान होनी चाहिए न कि फारसी, अरबी या अंग्रेजी शब्दावली से लदी हुई। नाट्याचार्य महामुनि भरत ने अपने ग्रंथ में भाषा पर विस्तृत विचार प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार एक विद्वान् व्यक्ति जब अपढ़ या कम पढ़े लिखे व्यक्ति से बातें करता है, तब वह इस बात का बराबर ध्यान रखता है कि मेरी भाषा श्रोता के लिये बोधगम्य हो, उसी प्रकार नाटक के पात्रों के कथोपकथन में भाषा के समुचित प्रयोग का

ध्यान रखना नाटककार का प्रधान कर्तव्य होना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह कि नाटककार को कृत्रिमता से दूर यथार्थता और स्वाभाविकता के निकट संपर्क में निरंतर रहना चाहिए।

एक बात और ध्यान में रखने की है। जिस प्रकार भाषा के प्रयोग में पात्र और काल का ध्यान रखना आवश्यक है उसी प्रकार दर्शक वर्ग का भी ध्यान रखना अनिवार्य है, क्योंकि नाटक उन्हीं के लिए खेला जाता है। अतः यदि दो प्रकांड विद्वानों का कथोपकथन चल रहा है तो भाषा ऐसी न हो जिसे वे दो विद्वान् और उनके जैसे ही कतिपय अन्य पंडित ही समझ सकें, वह भाषा साधारण से विशिष्ट होते हुए भी दर्शकों के लिये बोधगम्य होनी चाहिए। नाट्यदर्पण और शारदातनय के 'भाव प्रकाशन, में भाषा पर विचार प्रस्तुत किया गया है। धनंजय ने भाषा के पक्ष को छोड़ ही दिया है। हां, केशिकी, सात्वती, आरभटी, तीन अर्थवृत्तियों और भारती नामक शब्दवृत्ति का यथास्थान प्रयोग बताया है। वृत्त की भाषा पर अपना विचार व्यक्त करते हुए रामचंद्र और गुणचंद्र कहते हैं :

स्वल्पपद्यं लघुगद्य', श्लिष्टावान्तर वर्जितम् ।
सिन्धु-सूर्येन्दु-कालादि''वर्णनाधिक्य-वर्जितम् ॥
एकांगिरसमान्यांगमद्भुतान्त-रसोक्तिभिः ।
कलांकितमलंकार कथांगैरगलद्रसम् ॥

—नाट्यदर्पण, १।१५,१५

नाटक में प्रसिद्ध शब्दोंवाले परिमित (बहुसंख्यक नहीं) पद्य और परिमित एवं हृदय-ग्राही गद्य का व्यवहार होना चाहिए। इसकी निवृति में चंद्रद्वय कहते हैं कि स्फुट अर्थवाले प्रसिद्ध शब्दों में परिमित पद्य ही होने चाहिए। गद्य के द्वारा कही हुई बात सरलतापूर्वक समझ में आ जाती है, अतः वह सरल और परिमित होना चाहिए कर्कश और समासबहुल गद्य दुर्बोध होने के कारण चित्त में खेद उत्पन्न करता

है।...समुद्र, सूर्य, चंद्रमा, काल आदि का विस्तृत वर्णन काव्य की खुजली मिटाने के लिये नहीं करना चाहिए। एक या दो छंदों में ही वर्णन की सफलता होती है, अन्यथा रसांतर उत्पन्न होता है। अलंकार, अवक्षेप आदि की योजना चमत्कार के लिये नहीं अपितु रसपरिपोष की दृष्टि से होनी चाहिए।[१]

इस प्रकार भाषा की पूरी योजना इस दृष्टि से होनी चाहिए, जिससे दर्शक के हृदय में अंगी रस की निष्पत्ति सहजता से हो जाय। पात्रों के मुख से निकली भाषा दर्शक के हृदय में सद्यः अर्थबोध करा दे, इस बात का ध्यान रखना चाहिए। दर्शकों में समाज के सभी वर्गों के लोग संमिलित होते हैं, अतः भाषा लोक भाषा की सहेली ही होनी चाहिए। पात्रों के कथन छोटे हों, वे लंबे व्याख्यान न होने पाएं, अन्यथा रस-परिपोष में बाधा पड़ती है। कथोपकन छोटे छोटे और साभिप्राय होने चाहिए, जो कथाधारा के विकास में पूर्ण सहायक हों। छोटे छोटे कथोप-कथन द्वारा चमत्कारवृद्धि होती है और दर्शकों का आकर्षण एकरूप बना रहता है। आधुनिक हिंदी की प्रवृत्ति संस्कृत तत्सम शब्दों की ओर उन्मुख है, अतः तदनुकूल व्यावहारिक भाषा का प्रयोग ही स्वाभाविक होगा।

शब्दप्रयोग--

नाटक में भाषा का विधान उन ऐतिहासिक पात्रों के गौरव की अनुरूपता की दृष्टि से उतना

१--सुष्ठु प्रसन्नार्थं प्रसिद्धशब्दमल्पं परिमितं पद्यं यत्र। गद्येन ह्यर्थः कथ्यमानः। सुखावबोधो भवति। लघु ह्यद्यं परिमितं च गद्यं यत्र। कर्कशं बहुसमासं च गद्यं दुर्बोधत्वात् खेद-मुपनयति। श्लिष्टानि पारम्पर्येण प्रधान फलसम्ब-द्धान्यवान्तराणि प्रस्तुतान्तराल-वर्तिनि वस्तुयत्र...। सिन्धवादिकं हि काव्यकोड्डवशान्निष्फलं न वर्ण-नीयं। सफलमप्येकेन द्वाभ्यां वा वृत्ताभ्यां, आधिक्यन्तु रसमन्तरयतीति। त एव श्लेषोपमादयो विधेयाः, ये रसनिष्पत्तिप्रयत्नेनैव निष्पद्यन्ते। वृत्तान्ते अंगानि उपक्षेपादीनि च तथा निबन्ध-नीयानि यथा न रसमन्तरयन्ति।--नाट्यदर्पण, वृत्ति, पृ० २ : के ३०॥

नहीं होता जितना दर्शकों की सुबोध्यता की दृष्टि से होता है। रस के साधारणीकरण में भाषा ही प्रधान साधन है। इसीलिये भाषा की प्रासादिकता पर प्राच्य और पाश्चात्य सभी आचार्यों ने विशेष बल दिया है। यदि शब्दार्थबोध के लिये दर्शक को अपने बगल में बैठे किसी विशिष्ट दर्शक की सहायता की आवश्यकता पड़ा करे तो नाटक के आनंद से दोनों ही वंचित रह जाएँगे। श्रव्य या पाठ्य काव्य में तो पाठक शब्दकोष की सहायता भी ले सकता है, किंतु नाटक के अभिनय के समय दर्शक को वह सुयोग कैसे मिल सकता है? अतः यह नितांत आवश्यक है कि नाटक में भाषा का लोकप्रचलित स्वरूप ही ग्रहण किया जाय और नाटककार विद्वत्ता-प्रदर्शन के लिये दुरविगम शब्दों के प्रयोग का लोभ संवरण करें। इस दृष्टि से लेखक को प्रचलित पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से भी विरत रहना चाहिए।

वाक्य प्रयोग

कथोपकथन में सुखावबोध्य वाक्यों का प्रयोग अपेक्षित होता है। पात्रविशेष द्वारा दर्शन और तर्कशास्त्र के गंभीर विचार विमर्श नाटक में न आवें तो बहुत अच्छा। नाटक में न्यायशास्त्र की शब्दावली का व्यवहार लेखक में व्यावहारिक ज्ञान के अभाव का द्योतक है। यदि लेखक ऐसा करता है तो वह नाटक अपने लिये ही लिखता है, सामाजिकों के लिये नहीं। अतः ऐसा लेखक असफल नाटककार सिद्ध होता है। नाटक का निर्माण शास्त्रज्ञान की पिपासा को शांत करने के लिये नहीं होता, वह लोकज्ञान और सामाजिक व्यावहारिक संबंधों को मंगलमय एवं प्रशस्त बनाने के लिये होता है। इसीलिये किसी पात्र द्वारा किसी भी परिस्थिति में लंबा चौड़ा कथन नहीं आना चाहिए, क्योंकि वह कथोपकथन के प्रसंग में आए अथवा स्वगत भाषण के रूप में दर्शकों को उसे साँस रोक सुनना ही पड़ेगा और भरसक समझने का यत्न भी करना पड़ेगा। पेचीदा और लंबे वाक्यों तथा लंबे कथनों का मोह भी नाटककार को छोड़ना पड़ेगा। जब नाटक की भाषा इस आदर्श को अपना कर चलेगी तभी वह अभिनयशीलता के अनुकूल हो सकेगी, अन्यथा उसके लिये बाधक ही सिद्ध होगी।

समय सीमा

जैसा पहले कहा जा चुका है, नाटक का एक अंक इतना ही लंबा होना चाहिए जिसे अधिक से अधिक अड़तालीस मिनट में अभिनीत किया जा सके। इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिए कि अंकों का विधान भी 'गोपुच्छ-केश-कल्प' अर्थात् प्रथम अंक से आगे आनेवाले अंक क्रमशः छोटे होने चाहिए। यदि प्रथम अंक के अभिनय में पैंतालीस मिनट लगें तो आगे वाले अंकों में क्रमशः ४०, ३५, ३० और २५ मिनट लगने चाहिए। इस प्रकार पाँच अंकों का नाटक दो

घंटे पचपन मिनट में अभिनीत हो जायगा। इससे अधिक समय तक दर्शकों का मन भी नहीं लग सकता। अतः नाटक का विस्तार इतना हो कि अधिक से अधिक तीन घंटों में खेला जा सके।

गीति प्रयोग

नाटक में कतिपय स्थलों पर गीतियों का प्रयोग रसवत्ता की अभिवृद्धि की दृष्टि से होता रहा है। कभी कभी मनोरंजन (डाइवर्शन) की दृष्टि से भी इनका प्रयोग आवश्यक समझा जाता रहा है। हाँ, इसका बराबर ध्यान रखा जाता रहा है कि ये गीतियाँ प्रस्तुत प्रकरण के भावानुकूल रह कर प्रस्तुत निर्दिष्ट रस की पुष्टि करें, अन्यथा वे रसाभास की सृष्टि करेंगी। वीर रस के प्रकरण में शृंगार रस की गीति रखना हृदयहीनता होगी। संस्कृत और प्राकृत नाटकों में बराबर इसका ध्यान रखा गया है। गीतियों से काव्यत्व की श्रीवृद्धि होती है। अवश्य ही अभिनेय नाटक में इसकी संख्या अत्यंत परिमित होनी चाहिए।[1] नाट्यदर्पणकार का 'स्वल्पपद्य' कहने में यही अभिप्राय है। शृंगार-रस-प्रधान नाटक में गीतियों की संख्या वीर रस प्रधान से अपेक्षाकृत अधिक हो सकती है। छंदोबद्ध रचना में स्थायित्व भी अधिक होता है, इस दृष्टि से भी प्राचीन नाटककारों ने अपनी कृतियों में गतियों की संख्या अधिक रखी है। गीतिकाव्य की मनोहारिता के ही कारण नाटककार महाकवि कालिदास की प्रशस्ति में यह सूक्ति चल पड़ी—

काव्येषु नाटकं रम्यं, तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽकस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्॥

शाकुंतल जैसे नाटक में भी श्लोक चतुष्टय में शृंगार रस नहीं है। इन श्लोकों में प्रकृतिप्रेम और गार्हस्थ्य धर्म का पुनीत वर्णन है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय दृष्टि का विस्तार शृंगारिकता तक ही सीमित नहीं है, वह मानव प्रकृति से लेकर अछोर विस्तृत विश्व-प्रकृति तक फैला हुआ है। किसी रस वा भाव की गीति हो, जिसमें रमणीयता और अर्थ की मात्रा जितनी ही अधिक होगी, वह उतना ही श्रेष्ठ

१. नानाविधान संयुक्तो नातिप्रचुरपद्यवान्।
——साहित्यदर्पण, ६।१४।
बहुचूर्णपादवृत्तं जनयति खेदं प्रयोगस्य।
नाट्यशास्त्र

काव्य होगा। नाटक में केवल तुकबंदी का शौक पूरा करने के लिये पद्य रचना नहीं की जानी चाहिए। जिस प्रकार परिपक्व द्राक्षाफल मुँह में जाते ही रसवृष्टि कर देता है, उसके लिये विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं होती उसी प्रकार गीति ऐसी होनी चाहिए जो कानों में जाते ही रस वर्षण कर दे, उसके लिये विशेष बौद्धिक प्रयास न करना पड़े। सभी महान् गीतिकारों की गीतियों में यह गुण पाया जाता है। नाटक की गीतियों में तो प्रसादगुण का होना अनिवार्यत: आवश्यक है। अस्वाभाविक की सृष्टि करनेवाले स्थलों पर गीति नहीं ही होनी चाहिए, अन्यथा सुरुचिपूर्ण व्यक्ति के हृदय में ऐसे स्थलों पर गीतियों को देखकर खेद उत्पन्न होगा, भोंड़ी रुचिवाले दर्शकों का मनोरंजन इससे भले ही होता हो, जैसा कि पारसी कंपनियों द्वारा खेले जानेवाले नाटकों में होता था।

घात-प्रतिघात और कुतूहल

नाटक में घात प्रतिघात एक ऐसा तत्व है, जिसे उसका प्राण ही कहना चाहिए। सुख और दुःख का संघर्ष जब इतिवृत्त में निरंतर चला करता है, तब उसका आकर्षण आद्यंत बना रहता है। कथानक का यही आकर्षण दर्शक के हृदय में कुतूहलवृत्ति को बराबर जागरित बनाए रखता है। यदि वृत्त में कुतूहल की मात्रा का अभाव रहेगा तो दर्शक नाटक की समाप्ति तक बैठे नहीं रह सकेंगे, उन्हें रंगशाला में एक एक क्षण बिताना भार हो जायगा। इसी लिये प्राच्य आचार्यों ने रस का नैरंतर्य आवश्यक कहा है।[1] नाटक में रसहीन स्थल कहीं भी नहीं आना चाहिए।[2]

१. सुखदुःखसमुद्भूति—नानारसनिरंतरम्।
सा० द० ६।।८।।

२. नीरसानुचितं सूच्यं, प्रयोज्यं तद्विपर्ययः।
ग्राह्यं तदविनाभूतं, उपेक्ष्यं तु जुगुप्सितम्।
—ना० द० १।११ ।।

(शेष अगले अङ्क में)

पूर्णता के पथ पर—

नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

राष्ट्रभाषा का गौरवग्रंथ

साहित्य के माध्यम से आए शब्दों की विशाल राशि का अद्यतन प्रामाणिक संकलन। व्याकरण-निर्देश, प्रामाणिक व्युत्पत्ति, अर्थसंग्रह, अर्थच्छाया, ग्रंथ की पृष्ठसंख्या के निर्देश के साथ सोदाहरण प्रयोगों से संवलित। पूर्ण शब्दसंख्या अनुमानतः २,५०,००० के लगभग। मूल्य प्रतिखंड रु० २५-००

प्रथम आठ खंड प्रकाशित, नवाँ खंड शीघ्र प्रकाश्य।

प्रथम खंड 'अ' से 'ईहित' तक	शब्दसंख्या १८,०००
द्वितीय खंड 'उ' से 'क्वैलिया' तक	,, २०,०००
तृतीय खंड 'दातव्य' से 'छ्वाना' तक	,, २१,०००
चतुर्थ खंड 'ज' से 'दस्तंदाजी' तक	,, १६,०००
पंचम खंड 'दस्त' से 'न्हावना' तक	,, १६,०००
षष्ठ खंड 'प' से 'प्सुर' तक	,, १६,०००
सप्तम खंड 'फ' से 'मध्वृच' तक	,, १६,०००
अष्टम खंड 'मन' से 'ल्हीक' तक	,, २०,०००

★

★ सभा के नव प्रकाशित ग्रंथ ★

१. काव्य प्रभाकर—ले० जगन्नाथप्रसाद 'भानु', संपादक—सुधाकर पांडेय—५१—०० रु०

श्री जगन्नाथप्रसाद जी 'भानु' द्वारा विरचित यह ग्रंथ हिंदी के साहित्यशास्त्र का अत्यंत विस्तृत और प्रामाणिक आकर ग्रंथ है। इसमें साहित्यशास्त्र के सभी अंगों का सांगोपांग विस्तृत विवेचन किया गया है। इसका संपादन भी अत्यंत मर्मज्ञता के साथ विद्वान् संपादक ने किया है तथा एक विस्तृत भूमिका एवं ग्रंथ में आए कवियों का जीवनवृत्त देकर इसे और भी उपयोगी बना दिया है। हिंदी काव्यशास्त्र के अध्येताओं एवं शोधछात्रों के लिये यह ग्रंथ अत्यंत उपादेय एवं संग्रहणीय है।

---

२. भारतेंदु की खड़ीबोली का भाषाविश्लेषण :—

लेखिका डा० उषा माथुर मूल्य २५—०० रु०

भारतेंदु ने अपनी रचनाओं में जिस खड़ीबोली का प्रयोग किया है, विदुषी लेखिका ने उसका भाषावैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करके खड़ीबोली की विकास-परंपरा पर अत्यंत विद्वत्तापूर्ण प्रकाश डाला है। प्रत्येक स्थल पर लेखिका की भाषा संबंधी गहरी पैठ और सूझबूझ ने अत्यंत सुदृढ़ तथ्यों का आकलन किया है। पुस्तक शोधार्थियों के लिये अत्यंत उपादेय एवं पुस्तकालयों के लिये संग्रहणीय है।

---

३. जसवंतसिंह ग्रंथावली—संपादक श्री आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र—२०—०० रु०

जोधपुर नरेश महाराज जसवंतसिंह द्वारा रचित भाषाभूषण, दोवा और प्रबोध नाटक ये तीन साहित्यिक कृतियाँ तथा आनंदविलास, अनुभवप्रकाश, अपरोक्षसिद्धांत सिद्धांतबोध, सिद्धांतसार, भगवद्गीता टीका भाषा, भगवद्गीता भाषा दोहा और गीता माहात्म्य—ये आठ अध्यात्मविषयक कृतियाँ इस ग्रंथावली में संगृहीत हैं। जसवंत-सिंह पर अब तक कोई गंभीर शोध कार्य नहीं हो पाया था। अतः शोधार्थियों तथा विद्वानों के लिये समान रूप से उपयोगी यह ग्रंथावली हिंदी साहित्य के एक बड़े अभाव की पूर्ति करेगी।

स्वत्वाधिकारी—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के लिये शंभुनाथ वाजपेयी द्वारा नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी से मुद्रित और प्रकाशित।

नागरी पत्रिका

अक्टूबर-नवंबर, १९७१

नागरीप्रचारिणी सभा
वाराणसी

पूर्णता के पथ पर—

नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित
राष्ट्रभाषा का गौरवग्रंथ

साहित्य के माध्यम से आए शब्दों की विशाल राशि का अद्यतन प्रामाणिक संकलन। व्याकरण-निर्देश, प्रामाणिक व्युत्पत्ति, अर्थसंग्रह, अर्थच्छाया, ग्रंथ की पृष्ठसंख्या के निर्देश के साथ सोदाहरण प्रयोगों से संवलित। पूर्ण शब्दसंख्या अनुमानतः २,५०,००० के लगभग। मूल्य प्रतिखंड रु० २५-००

प्रथम आठ खंड प्रकाशित, नवाँ खंड शीघ्र प्रकाश्य।

प्रथम खंड 'अ' से 'ईहित' तक	शब्दसंख्या	१८,०००
द्वितीय खंड 'उ' से 'क्वैलिया' तक	,,	२०,०००
तृतीय खंड 'दातव्य' से 'छवाना' तक	,,	२१,०००
चतुर्थ खंड 'ज' से 'दस्तंदाजी' तक	,,	१६,०००
पंचम खंड 'दस्त' से 'न्हावनो' तक	,,	१६,०००
षष्ठ खंड 'प' से 'प्सुर' तक	,,	१६,०००
सप्तम खंड 'फ' से 'मध्वृच' तक	,,	१६,०००
अष्टम खंड 'मन' से 'ल्हीक' तक	,,	२०,०००

★

नागरी पत्रिका

वर्ष-५ अंक-१-२

अक्टूबर, नवंबर, १९७१

वार्षिक दो रुपए

प्रति अंक पचीस पैसे

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

संपादकमंडल

करुणापति त्रिपाठी

डा० नागेंद्रनाथ उपाध्याय

मोहकमचंद मेहरा

संपादक—सुधाकर पांडेय

सहसंपादक—श्रीनाथ सिंह

दिल्ली प्रतिनिधि—
डॉ० रत्नाकर पांडेय,
४२, अशोक रोड,
नई दिल्ली।
फोन—
३८८१७०

लखनऊ प्रतिनिधि
डा० हरेकृष्ण अवस्थी,
एम० एल० सी०,
४, बादशाह बाग,
लखनऊ।
फोन—२४५५६

वैचारिकी

शोकांजलि

पिछले अंक में 'सभा' की प्रगति का लेखा जोखा हम अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर चुके हैं। यह अंक अक्टूबर-नवंबर का संयुक्तांक है। विगत महीनों में कई ऐसी साहित्यिक विभूतियाँ हमारे बीच से सदा के लिये उठ गईं जिन्हें साहित्यजगत् कभी भूल नहीं सकता। कैसे भूला जा सकता है बँगला के सुविख्यात साहित्यकार श्री ताराशंकर वंद्योपाध्याय को। वैसे आप एक अहिंदीभाषी साहित्यकार थे, किंतु आपकी कृतियों के हिंदी में जो अनुवाद प्रकाशित हुए हैं उनसे हिंदी पाठक भी अनुप्राणित होता रहा है और आगे भी होता रहेगा। साहित्यकार के चिंतन को किसी भाषाविशेष की सीमाओं से नहीं बाँधा जा सकता, ठीक उसी प्रकार जैसे विकसित पुष्प की सुगंध को उद्यान की चहारदीवारी में कैद नहीं रखा जा सकता। बगीचा भले माली का हो, फूल भले माली का हो, किंतु उससे निकलनेवाली सुगंध, जो आस पास के वातावरण में घुल मिल जाती है, वह सर्वसाधारण की हो जाती है। श्री ताराशंकर वंद्योपाध्याय ऐसे ही साहित्यसौरभ थे जिनसे बँगला ही नहीं, अन्य भाषाएँ भी सुवासित हुई हैं।

हिंदी और भोजपुरी के विख्यात कवि श्री मनोरंजनप्रसाद भी हमारे बीच नहीं रहे। १० नवंबर को राँची में आपका निधन हो गया। राष्ट्रीय भावनाओं से भरे हुए आपके गीत आज भी बिहार में लोकगीतों की भाँति लोकरसना पर विराजमान हैं। आप हास्य व्यंग्य के भी अच्छे रचनाकार थे। सन् १९४२ में आपके द्वारा रचित 'फिरंगिया' शीर्षक गीत गा गाकर कितने ही युवक भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े थे।

आप सुलझे हुए शिक्षाविद् भी थे। पहले तो कुछ वर्षों तक काशी हिंदू विश्वविद्यालय में अध्यापन करते रहे। इसके पश्चात् राजेंद्र कालेज, छपरा के आचार्य होकर चले गए और वहाँ वर्षों तक अध्यापनकार्य करते रहे।

भूतभावन भगवान् शंकर से हम इन दिवंगत आत्माओं की सद्गति के लिये प्रार्थना करते हैं।

बधाई

इस बीच एक प्रसन्नता की भी बात हुई। साहित्यजगत् इस बात को जानता है कि विगत वर्ष में ज्ञानपीठ का एक लाख रुपए का पुरस्कार कविवर सुमित्रानंदन पंत को प्रदान किया गया था। इस वर्ष यह विख्यात पुरस्कार तेलुगु के ख्यातिलब्ध लेखक श्री विश्वनाथ सत्यनारायण को प्रदान किया गया। इस उपलक्ष्य में आयोजित एक रंगारंग समारोह में राष्ट्रपति महोदय ने उन्हें यह पुरस्कार उनके 'रामायण कल्पवृक्ष' नामक ग्रंथ पर दिया।

हम पुरस्कार देनेवाले और पानेवाले दोनों को हार्दिक बधाई देते हैं।

—सुधाकर पांडेय

आज के कवियों का दायित्व

लगभग हजार वर्ष पहले महाराज पृथ्वीराज चौहान और मुहम्मद गोरी के बीच अंतिम युद्ध में पृथ्वीराज की पराजय के बाद भारत में विदेशी शासन कायम हुआ और तब से लेकर अंतिम ब्रिटिश वायसराय लार्ड लुई माउंटबैटन के शासनकाल तक देश पर विदेशियों का ही शासन रहा। स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद भी भारत बहुत कुछ ब्रिटिश प्रभाव से ग्रस्त रहा है। अब इतनी सदियों बाद बँगला देश के प्रश्न पर स्वतंत्र निर्णय लेकर सैनिक हस्तक्षेप किया गया और विजय प्राप्त की गई है। एक तरह से कहा जाए तो भारत की स्वतंत्रता का जन्म अब हुआ है।

पृथ्वीराज के समय में महाकवि चंद बरदाई थे, जिन्होंने स्वतंत्र भारत के उपयुक्त ओजस्वितापूर्ण काव्य लिखा था। उसके बाद के हजार वर्षों के बीच जो भी साहित्यसृजन हुआ है, उसमें वह ओज देखने को नहीं मिला। भूषण जैसे कुछ कवि अवश्य हुए, जिन्होंने आंशिक रूप से ओजस्वी साहित्य लिखा। हमारे साहित्यकारों को युग के अनुसार अपने को परिवर्तित करना चाहिए। आज भारत स्वावलंबी है। यहाँ के जन जन की विचारधारा भी इस युद्ध के कारण बहुत बदल चुकी है। अब केवल काव्यविनोद से ही काम नहीं चलेगा। अब ऐसा साहित्य चाहिए, जो जन जन में प्राण फूँके। राष्ट्र का कविमानस इसे चरितार्थ करेगा, इसकी हमें सविश्वास आशा है।

सत्येंद्रकुमार गुप्त
(प्रधान संपादक, 'आज',
वाराणसी)

पंजाबी भाषी लेखक और हिंदी कहानी

श्रवणकुमार

मेरे अंदर कुछ अर्से से बड़ी शिद्दत से मानव नियति की बात घुमड़ती रही है। और मुझे लगा कि एक सही लेखक ने हमेशा इस मानव नियति के साथ खिलवाड़ का ही विरोध किया है। और शायद यही कारण है कि उसके अंदर हमेशा एक प्रकार की कशमकश होती रहती है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो एक सही लेखक हमेशा एक पजेस्ड व्यक्ति रहा है और उसके लेखन में भी कुछ ऐसी शक्ति रही है कि पढ़नेवाला उससे पराभूत हुए बिना न रह सके। दोस्तोएव्स्की का उदाहरण हमारे सामने है जिसके 'इडियट' या 'क्राइम ऐंड पनिशमेंट' या 'ब्रदर्स कारामजोव' की मानसिकता अनेक पाठकों को एक अर्से तक घेरे रही। कुछ ऐसा ही बात मुझे यशपाल के लेखन में भी लगी। यशपाल में चाहे दोस्तोएव्स्की वाली बारीकियाँ न हों, फिर भी उनकी कहानियों के रेशों की पकड़ इतनी मजबूत है कि पाठक आसानी से उनसे छूट नहीं सकता। इस बात का बराबर एहसास होता रहता है कि यह लेखक आपके दुःख दर्द का साथी है और आपसे आँख बचाकर आपको संकट में छोड़कर भाग खड़ा नहीं होता बल्कि हर क्षण में आपका साथ देता है। शायद इसीलिये आपकी नई हिंदी कहानी में जीवन के समांतर चलनेवाली कहानी की बात चली है। लेखक के नाते मैं चाहता हूँ कि यह केवल नारा ही न होकर अपने को सही अर्थों में सार्थक करे।

मैंने अभी यशपाल की बात की। मुझे उनकी कहानी 'पराया सुख' याद आ रही है। यशपाल की यह कहानी उनकी इधर हाल की कहानियों से एकदम भिन्न है। वैसे उनकी इधर हाल की कहानियों में भी मानव नियति की बात है। लेकिन यहां यह बात रूढ़ और फार्मूलाबद्ध सी हो गई लगती है, क्योंकि इन कहानियों का सत्य अनुभूत सत्य नहीं लगता, बल्कि बहुधा कृत्रिमता का एहसास दे जाता है। इसीलिये शायद मैंने उन्हें अपनी किसी पहले की टिप्पणी में 'आर्मचेयर राइटर' कहा था, किंतु, 'पराया सुख' या 'धर्मरक्षा' या 'हलाल का टुकड़ा' में यह बात नहीं। उनमें हमारा एक ऐसे लेखक से साक्षात्कार होता है जो जीवन की सचाइयों में गहरे उतरा है और उनको उसने हर तरह से परखा सहा है। यशपाल वामपंथी हैं और इसलिये वह पैसे की दूषणशक्ति के प्रति कुछ अधिक सजग रहे हैं। 'पराया सुख' उस अनुभूति का उत्कट उदाहरण है—आपको पता भी नहीं चलता और पैसे का जहर धीरे धीरे अपना पूरा असर कर जाता है। उनकी इधर की रचनाओं में यह अनुभूति उतना सूक्ष्म रूप नहीं निभा पाई और लगने लगता है कि यशपाल का वामपंथी पूर्वाग्रह अधिक मुखर हो उठा है। लेकिन एक मानी में हर सच्चा लेखक वामपंथी है, राजनितिक अर्थों में नहीं, जीवन के अर्थों में, जिनका मैंने पहले जिक्र किया है।

मानव नियति के साथ क्रूरतम खिलवाड़ का एक और उदाहरण हमारे सामने है। कोई याहया खान अपने एक ही 'फरमान' से लाखों करोड़ों लोगों को उनके मूलभूत अधिकारों से वंचित कर देता है, और जब वे लोग अपने उन अधिकारों के लिये मुँह खोलें तो उनके मुँह में आग डाल दी जाती है और फिर उन्हें निवस्त्र कर संगीनों की नोक से ठेलकर उन्हें उससे भी भयंकर आग में झोंक दिया जाता है।

एक ऐसी ही भयंकर आग आज से चौबीस पच्चीस वर्ष पूर्व प्रचंड हुई थी और उसकी लपटों की झुलस से शायद ही कोई मेरा हम उम्र पंजाब से संबद्ध लेखक बच पाया था। लेकिन उस झुलस के चिह्न कभी कभी इधर पंजाब से संबद्ध नए लेखकों में ही देखे जाते हैं। जैसे, विस्थापितों के पुनःस्थापन की बात। वास्तव में कई विस्थापित तो ऐसे हैं जो अब तक भी पूरी तरह अपनी जड़ें कहीं नहीं जमा पाए और उसी संघर्ष में अपना दम तोड़ते से दिखते हैं। कुछ ऐसा ही एहसास मुझे सुदीप और द्रोणवीर कोहली की कहानियों में हुआ। सुदीप की इधर हाल ही में 'सारिका' में छपी कहानी 'सिलसिले' की बेहद तारीफ हुई है। इसी तरह की उसकी एक अन्य कहानी 'सोये' भी थी। द्रोणवीर कोहली की एक इसी प्रकार की कहानी कोई चार एक साल पहले 'कल्पना' में 'माँ जाये' नाम से छपी थी। यशपाल का दो-जिल्दी 'झूठासच' तो इस विभीषिका पर एक मीनारी कृति है। इत्तफाक कि यद्यपि मैंने इस विभीषिका की दारुणता देखी और सही थी, तथापि अब तक प्रत्यक्ष रूप से मैं इसपर कुछ नहीं लिख पाया था। लेकिन इसको लेकर मेरे भीतर कुतरन बराबर होती रही। छोटी छोटी कई बातें थीं जो क्रूर होते हुए भी मानवीय थीं, मैंने उन दिनों यह खास तौर से देखा कि दूसरे का वध करनेवालों में भी एक क्षण ऐसा आता है जब उनकी समूची काया उन नृशंसताओं पर काँप उठती है और उन्हें पश्चा-

ताप सा कुछ दबोचने लगता है। ये ही सब अनुभूतियाँ मेरी नवीनतम कहानी 'मुर्दे' में जीवित हो उठी हैं। उसमें मैं आपके सामने मानवीय अमानवीय दोनों रूपों में उघड़ा हुआ हूँ।

देश के बँटवारे के साथ जहाँ विस्थापितों के पुनःस्थापन की समस्या आई, वहा पुनःस्थापितों में नए मूल्य भी उभरने लगे। नए मूल्य हमेशा सुखद नहीं होते। इसलिये कुछ पुनःस्थापितों में लोलुपता की मात्रा अत्यधिक बढ़ गई और वे हर मौके को कैश करने की फिक्र में रहने लगे। ऐसे ही लोगों ने एक नए वर्ग को जन्म दिया, और वह वर्ग था नवधनाढ्य वर्ग। इस वर्ग ने शायद समझ लिया था कि मेहनत और ईमानदारी किसी अनैतिक समाज के मूल्य हैं। इसलिये उसने कम से कम मेहनत करके पैसा बटोरने की कला सीखी और इसमें उसे अद्भुत सफलता मिली। 'ब्लैक' का बोलबाला हुआ। फिर उस ब्लैक के पैसे को खर्च करने की समस्या उठी और इसके लिये भी उसने कई तरीके ढूँढ़ निकाले। सुरा सुंदरी इसमें हमेशा सहायक रही हैं। उनका भरपूर उपभोग किया गया। फिर नाइट क्लब और डिस्कोथेक सामने आने लगे, फैशन की बाढ़ आई। इन सबसे पैसे का संचलन और बढ़ा, कीमतें एकदम से आसमान छूने लगीं। फिर यह पैसा राजनीति के क्षेत्र में भी बह चला, और वे लोग जिनके लिये संस्कृति संस्कार दूर की चीजें थीं, वे हमारे संस्कृति संस्कारों के नियामक बन बैठे। विडंबनाएँ विसंगतियाँ और तीव्र हुईं और सहभोक्ता के नाते लेखक की छटपटाहट और बढ़ गई। छटपटाहट ही नहीं बढ़ी बल्कि उसने अक्सर लड़ाई की मुद्रा अख्तियार कर ली। मेरी अधिकतर कहानियों की यही मानसिकता है—'मैं और वह' (सारिका), 'बच्चा' (ज्ञानोदय), 'बवंडर' (साप्ताहिक हिंदुस्तान), 'चेहरे' (मंच), इधर

'सारिका' में कथाक्रम के अंतर्गत प्रकाश्य 'मैं' और 'जुर्म' इत्यादि। इन कहानियों में आपको इस नवधनाढ्य वर्ग के कई रूप मिलेंगे—कहीं चुनाव जीतते हुए, कहीं चिटफंड कंपनियाँ चलाते हुए, कहीं एक लड़की के साथ संभोग करने के बाद उसे कार में से सड़क पर धकेलते हुए, कहीं अपने पैसे की डींग मारते हुए, कहीं ब्लैक के पैसे को पचाने के लिये कीर्तन पाठ करवाते हुए, कहीं मकान मालिक के रूप में किराएदारों की नसें तोड़ते हुए। 'मैं और वह' के छपने पर पाठकों में काफी हलचल मची थी। लेकिन अब मुझे लगता है कि जो मानसिकता अब तक नवधनाढ्य वर्ग की रही है, वह अब देशव्यापी होती जा रही है, और आदमी आदमी के बीच खाई पाटी जाने की निस्बत और चौड़ी और गहरी होती जा रही है।

भीष्म साहनी ने दिल्ली में हाल ही में हुई एक गोष्ठी में अपनी हार खुद ही मान ली थी। उनका कहना था कि भाषा के मामले में एक अहिंदीभाषी हिंदी लेखक की पकड़ उतनी मजबूत नहीं होती। संदर्भ उस समय भी हिंदी में लिखनेवाले पंजाबी लेखकों का था। मैंने यद्यपि उस समय उनका सीधा विरोध नहीं किया था, लेकिन मैंने उन्हें इस बात का संकेत दे दिया था कि यह समस्या उनकी निजी हो सकती है, अन्य लेखकों की नहीं है। इस बारे में अब दो राय नहीं कि हिंदी गद्य में इधर जो लताफत और

ताजगी का एहसास हो रहा है वह मुख्यतः पंजाबी भाषी हिंदी लेखकों के कारण ही है। इस संदर्भ में मोहन राकेश, निर्मल वर्मा और महेंद्र भल्ला के नाम सहज ही लिए जा सकते हैं। अज्ञेय ने हिंदी गद्य को अपनी तरह का सौष्ठव प्रदान किया है। इधर कृष्णा सोवती की शैली में भी अनूठा निखार देखने में आया है। जहाँ 'यारों के यार' और 'मित्रो मर जानी' की भाषा में पौरुषीय शक्ति है, वहाँ 'डार से बिछुड़ी' की भाषा में नारीसुलभ कोमलता है। किसी एक ही लेखक में दो सिरों पर भाषा के निखार का यह चमत्कार कम ही देखने में आया है। दूसरे, मुझे यह भी लगता है कि खड़ीबोली के नाते हिंदी अपने में उतना सामर्थ्य नहीं रखती जब तक कि उसे आंचलिक बोलियों की खुराक न दी जाए। इस नाते इसके अभिधासामर्थ्य को और सामयिक करने के लिये इसे देश की अन्य भाषाओं से भी अनेक शब्द और मुहावरे पचाने पड़ेंगे। इसी नाते अंगरेजी में अगर थोड़ी सी भी संकीर्णता होती तो आज वह उतनी व्यापक और अर्थगर्भित भाषा न होती। पिछले दिनों 'कहानी' में मेरी एक कहानी 'अधलेटे' छपी थी जिसकी भाषा के नए-पन और अंतर्द्वंद्वों को गहरे पकड़ने के सामर्थ्य के बारे में बाद में उसी पत्रिका में कई पत्र छपे थे।

हिंदी और अहिंदी भाषी लेखकों के बीच कोई दीवार कायम करना निहायत अहमकाना लगता है। वैसे भी पंजाबी भाषी हिंदी लेखक कई मानों में हिंदी भाषी हिंदी लेखक ही हैं। यशपाल और उपेंद्रनाथ अश्क एक मुद्दत से उत्तर प्रदेश में रह रहे हैं। महीपसिंह का जन्म, आरंभिक शिक्षण शायद कानपुर में हुआ। कृष्ण बलदेव वैद अधिकतर दिल्ली में रहे और अब अमरीका में हैं। सुधा अरोड़ा शायद कलकत्ता में ही जन्मीं पलीं। सतीश जमाली और रवींद्र कालिया भी अब इलाहाबाद निवासी बन गए हैं। सुदर्शन चोपड़ा दिल्ली और कलकत्ता के बीच रमते रहे।

सुदर्शन नारंग एक लंबे अर्से से हापुड़ में हैं। भीष्म साहनी और कृष्णा सोबती भी अब एक लंबे अर्से से दिल्ली में हैं। मोहन राकेश भी अब दिल्ली निवासी हैं। निरुपमा सेवती और जितेंद्र भाटिया बंबई निवासी हैं। इसके अलावा नए लेखकों में तो अनेक ऐसे लेखक हैं जो दिल्ली या पंजाब से बाहर किसी अन्य राज्य में ही जन्मे और वहीं वे बड़े हुए। उनके लिये तो पंजाब दूर का रिश्तेदार है जिससे जब कभी इत्तफ़ाक से भेंट हो गई तो एक क्षण के लिये 'हूँ हूँ' कर लिया। ऐसे लेखकों, लेखिकाओं में एक नाम अचला शर्मा का है जिनकी इधर काफी दमदार तीन चार कहानियाँ देखने में आई हैं। लेकिन कुछ लेखक ऐसे भी हैं जो अब भी पंजाब या हरियाणा में रह रहे हैं। उनमें राकेश वत्स, पृथ्वीराज मोंगा, कृष्ण भावुक और स्वदेश दीपक प्रमुख हैं। लेकिन ऐसा भी होता है कि कोई रहे तो पंजाब में लेकिन उसकी मौलिकता कहीं और जुड़ी रहे, और या वह रहे पंजाब से बाहर और उसकी मानसिकता पंजाब से जुड़ी रहे। पंजाब से बाहर रहकर पंजाब से जुड़ी हुई मानसिकता रखनेवाले लेखकों में मुझे कृष्णा सोबती और भीष्म साहनी ही दिखते हैं। पुराने लेखकों में यशपाल और उपेंद्रनाथ अश्क हैं। इधर हाल ही में सुदर्शन नारंग ने अपनी एक कहानी में पंजाबी 'स्यापे' का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। खुद मेरी अपनी भी दो कहानियाँ 'मैं' और 'मुर्दे' पंजाबी की गहरी गंध लिए हुए हैं।

लेकिन लेखकों या उनकी कहानियों के नाम गिनाना ही मेरा उद्देश्य नहीं है। हो सकता है, मेरी सावधानी के बावजूद इस गणना में कुछ नाम छूट भी गए हों। जैसे, मुझे हिंदी कहानी की बात शुरू करते हुए गुलेरी जी का नाम सबसे पहले लेना चाहिए था। इसी प्रकार किसी समीक्षक ने १८७७

में लिखित श्रद्धाराम फिल्लौरी के उपन्यास 'भाग्यवती' को हिंदी का पहला मौलिक उपन्यास कहा है। किंतु यह बहस इस विषय से बाहर है। हमारा विषय तो यहाँ उन लेखकों के बारे में बात करना है जिन्होंने अपनी सृजनशीलता से हिंदी कहानी के आयाम बढ़ाए हैं और इसे व्यापक संदर्भ दिए हैं। सुना है, पिछले दिनों जैनेंद्र जी ने सिम्मी हर्षिता की किसी कहानी को अंतरराष्ट्रीय स्तर की कहानी करार दिया। मैंने वह कहानी पढ़ी नहीं। लेखक जैनेंद्र जी आजकल बड़े उदार हो रहे हैं। उन्होंने इन्हीं दिनों सुनीता तथा मन्नू भंडारी की रचनाओं को भी उसी स्तर की बताया है। किंतु सुनीता और मन्नू भंडारी पंजाबी भाषी नहीं।) अंतरराष्ट्रीय स्तर पा लेना अपने आपमें एक उपलब्धि हो सकता है, लेकिन मैं समझता हूँ कि कहानी को पहले अपने संश्लिष्ट संबंधों में पूरी तरह भारतीय हो जाना चाहिए। इसीलिये अकसर मेरा निर्मल वर्मा की कहानियों से विरोध रहा है। बहुधा तो मुझे ऐसा भी लगा कि वे पश्चिमी कहानियों का रूपांतर मात्र हैं। लेकिन अक्सर ऐसा भी लगा कि यदि वे रूपांतर भी हैं तो सुंदर रूपांतर हैं जिनका अपना अलग व्यक्तित्व है। 'लंदन की एक रात' निर्मल वर्मा की एक व्यापक संदर्भों की कहानी है। निर्मल वर्मा की तरह उनके बड़े भाई रामकुमार भी विदेशों में रहे हैं। लेकिन विदेशों में रहकर भी वह भारतीय परिप्रेक्ष्य से टूटकर अलग नहीं हुए। उनकी कहानियाँ चाहे लंदन की एक रात' की तरह न भी झकझोरें, किंतु वे एक मीठा दर्द जरूर छोड़ जाती हैं। भीष्म साहनी ने इधर काफी लिखा है, उनकी रचनाओं में मानवीय स्थितियाँ भी होती हैं, लेकिन कहीं न कहीं उनमें कुछ खटकता जरूर रहता है। मुझे लगता है कि एक लेखक में मानवीय होना जहाँ परमावश्यक है, वहाँ उसी मात्रा में उसमें साहस और जीवट भी

होना चाहिए। शायद भीष्म साहनी में इसी जीवट का अभाव है कि उनका सब कुछ लिखा हुआ ढुलमुल, सुस्त सा लगता है। भीष्म साहनी के बरअक्स मोहन राकेश में भरपूर साहस है और यही कारण है कि उनकी 'मलबे का मालिक' या 'परमात्मा का कुत्ता' गहरी मार करती हैं। उनके उसी अद्भुत साहस का एक और उदाहरण उनका नाटक 'आधे-अधूरे' भी है। वैसा ही साहस, प्रचुर मात्रा में, कृष्णा सोबती में भी है। लेकिन कृष्ण बलदेव वैद का साहस अपनी सीमाएँ लाँघता हुआ किसी दूसरी दुनिया में ही पहुँच जाता है। इधर के लेखकों में राकेश वत्स, जीतेंद्र भाटिया, राम अरोड़ा, निरुपमा सेवती, सतीश जमाली, पृथ्वीराज मोंगा और अचला शर्मा में भी काफी साहस है, और लगता है ये लेखक जमकर लड़ाई लड़ सकते हैं। पिछले दिनों कुलदीप बग्गा--जो महीपसिंह की तरह सिख हैं--के कहानी संग्रह 'मेरे जैसी लड़की' की भी काफी प्रशंसा सुनी थी। लेकिन उसे मैं पढ़ नहीं पाया, और इसलिये उसके बारे में कुछ विशेष कहने की स्थिति में नहीं हूँ। पंडित सुदर्शन के सुपुत्र कुलभूषण मोहन राकेश भीष्म साहनी के समवयस्क हैं। उन्होंने पहले खूब कहानियाँ लिखीं, लेकिन इधर वह बिलकुल खामोश हैं। इसी प्रकार देवेंद्र इस्सर भी खामोश हैं लेकिन जो लेखक इस समय कुछ कह रहे हैं, वे जमकर कह रहे हैं और इनसे उम्मीद की जाती है कि ये आदमी लड़ाई में पूरे उतरेंगे। कुछ अन्य पंजाबी भाषी हिंदी लेखकों के नाम इस प्रकार हैं--ओमप्रकाश दीपक, केवल सूद, सुरेंद्र-कुमार मल्होत्रा, सुखबीर, मणिका मोहिनी, अनीता औलक, चंद्रा औलक तथा जगदीशचंद्र। पुराने लेखकों में चंद्रगुप्त विद्यालंकार का नाम काफी परिचित है। इसी प्रकार विष्णु प्रभाकर ने भी कई बार पंजाबी भाषी होने का दावा किया है लेकिन कुल मिलाकर मुझे लगता है कि यदि हिंदी कहानीकारों में से कुछ पंजाबी भाषी हिंदी कहानीकारों के नाम हटा दिए जाएं तो कहानी लुंज लगने लगेगी। ★

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की जयंती

सुप्रसिद्ध विद्वान श्री बलदेव उपाध्याय की अध्यक्षता में स्व० आचार्य रामचंद्र शुक्ल की जयंती ४ अक्टूबर को सभाकक्ष में मनाई गई। इस आयोजन में अनेक विद्वानों एवं साहित्य-प्रेमियों ने भाग लिया।

अध्यक्ष महोदय ने कहा—'आचार्य रामचंद्र शुक्ल बहुत ही महान् व्यक्ति थे। वे सैद्धांतिक नहीं बल्कि व्यावहारिक आलोचक थे। रामायण के मंगलकारी और मनोहर रूप को परखकर ही शुक्ल जी ने गोस्वामी जी के कृतित्व की जैसी उच्च कोटि की समीक्षा की है वैसी समीक्षा आज तक कोई प्रस्तुत नहीं कर सका। लोकमंगल उनका आदर्श था और अपनी इसी कसौटी पर वे साहित्यकारों तथा उनकी रचनाओं को कसते थे।'

सभा के प्रधान मंत्री संसदसदस्य श्री सुधाकर पांडेय ने आचार्य शुक्ल जी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहा—"हिंदी ही नहीं, किसी भी भाषा में आचार्य शुक्ल जी जैसा समालोचक आज तक नहीं आया। उनका जीवन ही हिंदी साहित्य के अनुष्ठान के लिये समर्पित था। अनेक समस्याओं से घिरे होते हुए भी उन्होंने हिंदी की महान् सेवा की। इसीलिये उनकी पीढ़ी के साहित्यकारों ने उन्हें पंडितराज कहा। वे साहित्य की विभूति थे, शिखर थे। उनकी ऊँचाई तक पहुँचने का प्रयास होता है, किंतु ऐसा करनेवाले फिसल जाते हैं। वे सरस्वती के पुत्र थे। वे विद्या की उपासना शक्ति के रूप में करते थे।" श्री पांडेय जी ने इस अवसर पर चेतावनी दी कि हिंदी साहित्य में केवल खड़ीबोली का साहित्य बनाने का षड्यंत्र चल रहा है, इससे हमें सावधान रहना होगा।

पंडित करुणापति त्रिपाठी ने कहा—"हिंदी के निर्माण में 'सभा' का जो महत्वपूर्ण कार्य है वह शुक्ल जी का ही कृतित्व है। शुक्ल जी जन्म से ही साहित्यकार थे।"

जिन अन्य विद्वानों ने स्व० आचार्य के प्रति अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं उनके नाम हैं—सर्वश्री लक्ष्मीशंकर व्यास, डा० मोहनलाल तिवारी, सिद्धनाथ सिंह, डा० कैलासनाथ शर्मा और खुशहालचंद्र गोरेवाला। ●

साहित्य और परंपरा

—मोतीलाल जोतवाणी

क्या इन बयाबानों में कोई चंडीगढ़ नहीं बना सकते ? गांधीधाम से आदिपुर के लिये बस लेनी थी। अचानक मैं चौंका, शापित, खड़ा रह गया। कामिनी भी घबराई खड़ी रही। केवल दो कदमों के आगे एक साँप निकल गया।—कामिनी ने आगे बढ़कर कहा, 'तुम सदा अपनी चलते हो। यहाँ सर्पप्रदेश में हम क्या करेंगे ?—मेरा मन किंचित् दुर्बल हुआ। परंतु फिर साहस कर मैंने उत्तर दिया—'कामिनी, बाजार में मच्छी सस्ती बिकती है, परंतु तुमने कभी उन लोगों के भाग्य पर सोचा है, जो कभी उसके लिये जान हथेली पर लेकर समुद्र में कूदे होंगे ?—नहीं, मैं आज की बात नहीं कर रहा—उन पहले आदमियों की बात कर रहा हूँ, जिनके लिये समुद्र एक रहस्य था, समुद्र जिसमें सहस्रों भयंकर जंतु रहते थे—

—मोहन कल्पना की कहानी 'तपस्या' से

सचमुच, समय की एक ही अखंड धारा है। वह निरंतर बहती है। विगत कल, आज और आगामी कल में समय को बाँटकर हमने केवल अपनी सुविधा का विचार किया है। नहीं तो, साहित्य, व्याकरण के भूत, वर्तमान, भविष्यत् में बँधनेवाला नहीं है। वाल्ट ह्विटमैन की तरह मैं भी पूछ रहा हूँ, आखिर यह वर्तमानकाल, भूतकाल के उद्भव और विकास के अतिरिक्त और क्या है ? कलाकार जब आनंदमग्न हो उठता है तो उसका वह पल दिव्य प्रकाश से भर उठता है। वह पल विस्तार पाता है और उस विस्तार में समय की अखंड, अविरल धारा बहती है।

उस समय कलाकार की रचना में अतीत की याद, भविष्यत् की ओर इंगित, एक ही समय में इतिहास और दर्शन के नक्शे उभरते हैं। बर्गसाँ का कथन है कि 'कल, आज और कल में अलग अलग काल, एकरूप होकर, इस प्रकार प्रभाव करते हैं, जिस प्रकार संगीतरचना के अलग अलग स्वर, एक दूसरे से अलग होते हुए भी अपना एक प्रभाव दूसरों में मिलकर करते हैं।' कलाकार की सृष्टि में अभी तक का सुंदर रूप, भविष्य के सपने और संकेत, वर्तमान सुख दुःख में समाहित होते हैं। कलाकार के लिये केवलमात्र वर्तमान क्षण है, ऐसा क्षण जो प्रकाशमान है, जिसमें सनातन सत्य उजागर होते हैं। यदि तीन कालों के व्याकरण नियम को ही सामने रखना है तो फिर इस बात को यों कहें कि कलाकार (जैनस) की तरह, अवचेतन स्थिति में, दो कालों (भूत और भविष्यत्) की ओर मुँह करता है और अपने वर्तमान समय से वफादार रहकर, अपने समय की श्रेष्ठ रचना को जन्म देता है। उस श्रेष्ठ रचना या शाहकार में अतीत के संस्कार और विचार, अतीत में की गई तपस्याएँ और उनके फल आ जाते हैं। वह रचना चली आ रही परंपरा का अंग होती है और परंपरा को आगे बढ़ाती है। मैं यहाँ परंपरा शब्द उस अर्थ में लेता हूँ, जिस अर्थ में मैथ्यू आर्नल्ड और टी० एस० ईलियट ने 'ट्रेडिशन' लिया था। आजकल 'परंपरा' शब्द के साथ बीती की याद, संकीर्ण विचार और बुरा रस्म रिवाज नत्थी हो गए हैं। कुछ शब्द और कुछ सिक्के घिस पिटकर अपना असली मूल्य खो बैठते हैं। 'परंपरा' शब्द भी ऐसा एक घिसा पिटा और खोटा सिक्का है और अपनी वास्तविक अर्थगरिमा खो बैठा है।

परंपरा क्या है? परंपरा वह सुरसरिता है, जो युगों से बह रही है, जिसे नए युग की नई

धारा, नए युग की नई तपस्या, नया बल, नया उत्साह देती है। अपने समय से एक पीढ़ी पूर्व की सफलताओं को, उस पीढ़ी के तौर तरीकों को आँख मूँदकर और सर झुकाकर अपनाने को संकीर्ण प्रकार की परंपरा या रूढ़ि कहना चाहिए। परंपरा का यह वास्तविक रूप नहीं है, ऐसे रूप को बढ़ना व बल न मिलना चाहिए। कारण, हमें पता है कि हमसे एक पीढ़ी पूर्व की जितनी प्रवृत्तिधाराएँ समय के रेगिस्तान में गुम हो गईं और जिन प्रवृत्तियों धाराओं में बहाव नहीं, वे असली परंपरा का अंग नहीं बन सकतीं। ऐसी प्रवृत्तियों धाराओं को अपनी पीढ़ी में, अपने समय में दोहराने से एक नई चीज देना, एक नया प्रयोग करना बेहतर है।

परंपरा समस्त पीढ़ियों की सूक्ष्म पूँजी है। उसके संबंध में सबसे मुख्य बात यह है कि

उस में ऐतिहासिक चेतना का समावेश है। टी० एस० इलियट ने अपनी रचना 'दि सैक्रेड वुड' में कहा है कि ऐतिहासिक चेतना से प्रेरित दृष्टि न केवल भूतकाल के भूतत्व को देखती है, अपितु भूत के 'अभी ही रहने' और 'होने' का भी अनुभव करती है। ऐतिहासिक चेतना का व्यक्ति अपने से एकदम पहले की पीढ़ी का आँख मूँदकर अनुसरण नहीं करता। और न ही वह केवल अपनी पीढ़ी को कलम की नोक पर लेकर घूमता है। वह इस एहसास से रचना करता है कि वह वाल्मीकि के साहित्य से लेकर आज तक के समूचे साहित्य के सत्व अंश को लेकर आगे चल रहा है। वह अतीत को नकारता नहीं; पर अतीत की अग्राह्य वस्तु को निर्ममता से काटकर दूर फेंकता है। वह महसूस करता है कि समूचा साहित्य (उसमें उसके अपने देश का साहित्य भी आ जाता है) मानवजाति का उत्तराधिकार है और एक ही पैटर्न बनाता है।

बर्गसाँ की 'ड्यूरी' और इलियट के 'हिस्ट्रारिकल सेन्स' के विचारों में साम्य है। काल के संबंध में दोनों के सिद्धांत समान धरातल पर खड़े हैं। आज के हमारे मानसिक विकास के पीछे वैविध्य और वैभव से पूर्ण परंपरा का विकास है। विकास का यह सुदीर्घ सिलसिला ही परंपरा है। कलाकार के सर्जनात्मक क्षण में समकालीन समाज परंपरा के आईने के सामने खड़ा होकर सोचता है, उस सर्जनात्मक क्षण में कलाकार के संस्कारों का निचोड़ आ जाता है। व्यक्तिगत प्रतिभा के साथ साथ जिस कलाकार में वाल्मीकि और होमर से लेकर आधुनिक लेखकों के साहित्य से पूरी जान पहचान है, वह कलाकार परंपरा के विकास में योग देता है। कलाकार अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा द्वारा परंपरा का परिमार्जन कर परंपरा को आगे बढ़ाता है। ★

समीक्षा

समीक्षा के लिये पुस्तक की दो प्रतियाँ भेजना आवश्यक होगा। समीक्षा यथासंभव शीघ्र प्रकाशित की जायगी। यह आवश्यक नहीं होगा कि प्रत्येक प्राप्त पुस्तक की समीक्षा की जाय। प्रत्येक पुस्तक का प्राप्तिस्वीकार पत्रिका में किया जायगा।

माँ—

लेखक—मैक्सिम गोर्की
संक्षिप्त रूपांतरकार—श्री भैरवप्रसाद गुप्त
प्रकाशक—राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
मूल्य—३.५० रु०। पृ० १२४

'माँ' गोर्की का विश्वविश्रुत उपन्यास है। माँ का ऐसा हृदयस्पर्शी प्रेरणाप्रद, लोकव्यापी और निर्मल चरित्र उपन्यासजगत् में देखने को नहीं मिलता। सोवियत रूस की जनक्रांति की पृष्ठभूमि पर लिखा गया जनजागर्ति का यह अद्वितीय आख्यान है। लेखक ने वास्तविक जीवन भोगकर रूसी जनता की तत्कालीन मनोभावना को वाणी दी है, इसीलिये इसमें विस्मयोत्पादक कल्पना के आकाशकुसुम की नहीं, ठोस धरती की संमोहक सोंधी सुगंध मन, प्राण तक को उद्वेलित करने की क्षमता रखती है। मानवता के संदेशवाहक इस उपन्यास को आज भारत के श्रमिकों तथा किसानों के घर घर में होना चाहिए। बाल, युवा और वृद्ध नर नारी सबके लिये यह प्रेरणाप्रद, पथप्रदर्शक एवं अनुरंजक है।

प्रस्तुत लघुकाय पुस्तिका उस महान् उपन्यास का संक्षिप्त संस्करण है। इसकी भाषा सबके लिये बोधगम्य है। अनुवाद के इस लघु कलेवर में भी बृहत्काय मूल की आत्मा सुरक्षित रूप में उतर आई है। भारत के ग्रामीण किसानों, फैक्टरियों के मजदूरों तथा बच्चों के लिये यह संस्करण बहुत ही उपादेय है। यह अपने आपमें सब तरह से श्लाघ्य कार्य है। अच्छा कागज, सुंदर छपाई और आकर्षक गेट अप देने के लिये प्रकाशक भी धन्यवाद का पात्र है।

चाँद, चाँननी और कैक्टस

ले०--श्री अंबाशंकर नागर

प्रकाशक--राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-३

मूल्य-६.०० । आकार डिमाई । पृ० १००

जैसे भावग्राहिता मनुष्य का स्वाभाविक गुण है, वैसे ही प्रभावग्राहिता भी। धरती से विच्छिन्न जीवनबीज जैसे कभी दीवार के कंधे पर, कभी किसी पेड़ के कंधे पर उगने बढ़ने को बाध्य होता है, वैसे ही भारत की सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक मूलभूमि से असंस्पृष्ट नई प्रतिभा से जो विदेशी सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक भूमि मिली उसपर उगकर वह तदनुसारी रस, रूप और गंध ही दे सकेगी, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। हमारा जिससे साथ होगा, जो हमारा मानसिक पोषक पालक होगा, उसके ही शील और व्यसन हमारे भीतर जन्मेंगे। संस्कृत और हिंदी के छंद अंग्रेज के लिये अनुकार्य नहीं हुए, किंतु 'सानेट' का हिंदी में लिखा जाना कुछेक द्वारा कभी बड़ी बात मानी गई। यही हाल फारसी के छंदोग्रहण में भी रहा। छायावाद काल से लेकर आज तक इन पचास वर्षों में हिंदी काव्य ने जितने वेश बदले वे सब विदेश से आनीत थे। और जब जो वेश अपनाया गया उसकी वकालत भी

भरपूर की गई। आज की अधुनातन कविता का रत्नाकवच भी कुछ ऐसा ही बन रहा है। हिंदी के पत्रों-पत्रिकाओं में ऐसी रचनाओं को देकर संपादक पुरातनपंथिता के दोष से दूर रहने का सावधान प्रयास कर रहे हैं।

मैं यह नहीं कहता कि आज की कविता कविता नहीं है। कविप्रतिभा किसी भी काव्यरूप को शृंगारित करने की सामर्थ्य रखती है। पर यह कहना कि कविता एकमात्र यही है, वचकानापन सूचित करता है। श्री अंबाशंकर नागर मूलतः गुजराती की उपज हैं, किंतु इनकी हिंदी काव्यरचना हिंदीभाषी नए काव्यसर्जकों के लिये भी स्पृहणीय है। इनकी कविता में पूर्णतया हिंदी छंदोनुवर्तिता भले नहीं, किंतु कहने का ढंग और कथ्य बहुत कुछ पुराना ही है। 'भँवरे और परवाने' कविता ले लें—

'सभी भँवरे एक से होते नहीं हैं,
कुछ हैं जो रस पी करके उड़ जाते हैं,
कुछ है जो स्वेच्छा से
कमलकोष में बँध जाते हैं,
कुछ हैं जो काँटों से बिंधते,
या कि विवश बींधे जाते हैं,
इसीलिये कहता हूँ भँवरे-
भँवरे में अंतर होता है।'

नागरजी छंदोबंध से भी मुक्त नहीं हो सके हैं। इस संग्रह की बहुतेरी कविताएँ छंद, तुक, अलंकार आदि पुराने काव्यव्यूह से घिरी हैं। 'प्यार क्या है', में कवि कहता है--

'पूछते हो, प्यार क्या है ?
प्रश्न ऐसा है तुम्हारा,
पूर्ति जिसकी है न संभव,
प्यार को वाणी कहे,
यह तो असंभव है असंभव,
प्यार रहता है हृदय के
कोश में संचित सुरक्षित,
और उसके मर्म से जब
स्वयं प्रेमी भी अपरिचित,
वह भला अनुमान से ही
कह सके सारी हकीकत,
अन्य की सामर्थ्य क्या है !
पूछते हो, प्यार क्या है ?'

अपने वक्तव्य में नागर जी ने कहा है—

'पहले जब उसे (कविता को) सामने लाया जाता था तो उसके हाथों में अलंकारों की हथकड़ियाँ और पैरों में छंदों की बेड़ियाँ बाँध दी जाती थीं इससे उसका आवेग शमित हो जाता था। अब अभिव्यक्ति के मार्ग में कोई अर्गला नहीं है---न भाषा, न छंद, न अलंकार की।'

किंतु इस संग्रह की कविताएँ कवि के इस वक्तव्य की पोषिका नहीं हैं। वैसे, कविताएँ कवि के मन की बातें सीधी सादी भाषा में कह सकी हैं।

--लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी'

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

के

नवप्रकाशित ग्रंथ

हिंदी कारकों का विकास—ले० डा० शिवनाथ मूल्य रु० ७—००
हिंदी के कारकों का पूर्ण, प्रमाणिक एवं विद्वत्तापूर्ण ऐतिहासिक गवेषण।

हितचौरासी और उसकी प्रेमदास कृत व्रजभाषा टीका—
संपादक डा० विजयपाल सिंह : डा० चंद्रभान रावत, मूल्य—रु० १६—००
वैज्ञानिक एवं विद्वत्तापूर्ण संपादन, भूमिका में हितहरिवंश जी की कृति की विस्तृत व्याख्या एवं शब्दार्थ आदि भी।

मधुस्रोत—आचार्य रामचंद्र जी शुक्ल की कविताओं का संकलन, मूल्य—रु० ६—००
आचार्य शुक्ल की काव्यमयी प्रतिभा की मनोरम झाँकियाँ।
"कविता क्या है ?" शीर्षक लेख से संवलित।

फ्रेडरिक पिंकाट—ले० पद्मधर पाठक, मूल्य—रु० ६—००
भारतीय भाषाओं और साहित्य के गंभीर चिंतक एवं अध्येता पिंकाट के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सम्यक् दिग्दर्शन।

हिंदी और फारसी सूफी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन-ले०-डा० श्रीनिवास बत्रा, मूल्य—रु० ३०—०
फारसी एवं हिंदी के सूफी काव्यों के तुलनात्मक अध्ययन के साथ ही इसमें सूफी काव्य के विकास एवं प्रगति तथा उसके रहस्यात्मक प्रतीकों की सुंदर व्याख्या।

हिंदी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक—(१८६१—१९६०)
ले० डा० प्र० रा० भुपटकर, मूल्य—रु० ३०—००
हिंदी एवं मराठी के १ शती के भीतर रचित प्रमुख ऐतिहासिक नाटकों की तुलनात्मक व्याख्या।

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास—खंड १०—सं० डा० नगेंद्र, 'अंचल' एवं 'रुद्र' मूल्य—रु० ३०—००
संवत् १९६५—१९९५ वि० तक हिंदी साहित्य की समस्त विधाओं के उत्कर्ष एवं उन्नयन की विस्तृत मीमांसा।

स्वत्वाधिकारी—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के लिये शंभुनाथ वाजपेयी द्वारा नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी से मुद्रित और प्रकाशित।